U.P. Series

इतिहास

प्रथम एवं द्वितीय प्रश्न-पत्र

पाठ्यपुस्तक का संपूर्ण हल

कक्षा-12

प्रथम प्रश्न-पत्र

इकाई-1

1

भारत में मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ– बाबर और हुमायूँ (Beginning of Mughal Empire in India: Babar and Humayun)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1526 ई० 2. 1527 ई० 3. 1530 ई० 4. 1540 ई० 5. 1556 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 24 पर 'तिथि सार' का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 24 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 24 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 24 व 25 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बाबर के समय पंजाब व गुजरात की क्या स्थिति थी?

उ०– **बाबर के समय पंजाब की स्थिति–** बाबर के आक्रमण के समय पंजाब का सूबेदार दौलत खाँ था। यद्यपि वह दिल्ली साम्राज्य के अधीन था, लेकिन अपने आपको स्वतंत्र शासक के रूप में देखना चाहता था। इसलिए दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी को समाप्त करने के लिए उसने काबुल के शासक बाबर को पत्र-व्यवहार कर भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया था।

बाबर के समय गुजरात की स्थिति– बाबर के आक्रमण के समय सुदूर पश्चिम में स्थित गुजरात का शासक मुजफ्फरशाह था। अपने शासनकाल में वह मालवा और मेवाड़ के पड़ोसी राज्यों के साथ युद्ध लड़ता रहता था।

2. बाबर के प्रारम्भिक आक्रमणों का विवरण कीजिए।

उ०– बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना से पहले भारत पर कई आक्रमण किए। इन आक्रमणों से मिली सफलताओं ने बाबर के दिल में यह विश्वास भर कि वह भारत में स्थायी तौर पर अपने राज्य की स्थापना कर सकता है। बाबर के इन प्रारम्भिक आक्रमणों का विवरण निम्न प्रकार है—

पहला आक्रमण– बाबर ने भारत पर सर्वप्रथम 1519 ई० में आक्रमण किया। उसने बाजौर और भेरा में कत्ल-ए-आम करके उन्हें अपने कब्जे में ले लिया। भेरा को हिन्दू बेग को सौंपकर उसने काबुल प्रस्थान किया। परन्तु बाद में वहाँ के निवासियों ने हिन्दू बेग को भगा दिया।

दूसरा आक्रमण– सन् 1519 ई० में ही बाबर ने पेशावर पर आक्रमण किया। परन्तु बदख्शाँ के उपद्रवों की वजह से उसे वापस लौटना पड़ा।

तीसरा आक्रमण– सन् 1520 ई० में बाबर ने भारत पर आक्रमण कर पुन: बाजौर और भेरा को अपने कब्जे में ले लिया। फिर स्यालकोट और सैयदपुर जीतने के बाद बाबर ने कन्धार पर कब्जा करके अपने पुत्र कामरान को वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

चौथा आक्रमण– बाबर के चौथे आक्रमण ने भारत पर उसके साम्राज्य स्थापित करने का रास्ता साफ कर दिया। सन् 1524 ई० में उसने भारत पर आक्रमण करके पंजाब को अपने अधिकार में ले लिया। इस युद्ध में इब्राहीम लोदी की पराजय ने बाबर के लिए दिल्ली विजय का रास्ता खोल दिया।

3. पानीपत के युद्ध का क्या परिणाम हुआ?

उ०– पानीपत के युद्ध से भारत में लोदी वंश के साम्राज्य और प्रभुत्व का अंत हुआ साथ ही भारत में एक नए वंश— मुगल वंश की स्थापना हुई, जिसका भारत के इतिहास में गौरव पूर्ण स्थान है।

4. बाबर की विजय (सन् 1526 ई०) में किन्हीं तीन कारणों का उल्लेख कीजिए।

उ०– बाबर की विजय के प्रमुख तीन कारणों का उल्लेख निम्नवत् है—

(i) इब्राहीम लोदी की सैनिक कमजोरियाँ– इब्राहीम लोदी अनुभवहीन और अयोग्य सेनापति था। उसे रणक्षेत्र में सेनाओं के

कुशल संचालन और संगठन का विशेष ज्ञान नहीं था। इब्राहीम के अन्य सेनापति और सरदार भी विलासी, दम्भी और अनुभवहीन थे। बाबर ने स्वयं अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' में लिखा है- "वह (इब्राहीम) अनुभवहीन युवक अपनी गतिविधियों में लापरवाह था, बिना किसी नियम-कायदे के वह आगे बढ़ जाता था, बिना किसी ढंग के रुक जाता अथवा पीछे मुड़ जाता और बिना सोचे-समझे शत्रु से भिड़ जाता।" इब्राहीम लोदी की सैनिक दुर्बलता बाबर जैसे सैनिक के लिए वरदान सिद्ध हुई।

(ii) **इब्राहीम लोदी की अयोग्यता–** इब्राहीम लोदी एक अयोग्य निर्दयी और जिद्दी सुल्तान था। उसमें राजनीतिज्ञता, कूटनीति और दूरदर्शिता नहीं थी। इन गुणों के अभाव के कारण वह दौलत खाँ, आलम खाँ, मुहम्मदशाह और राणा साँगा को बाबर के विरुद्ध अपने पक्ष में नहीं मिला सका।

(iii) **बाबर द्वारा तोपों का प्रयोग–** पानीपत के युद्ध में इब्राहीम के पास तोपखाना और कुशल अश्वारोही सेना नहीं थी, जबकि बाबर के पास सुदृढ़ तोपखाना था, जिसका संचालन उस्ताद अली और मुस्तफा जैसे अनुभवी सेनानायकों ने किया। इसका परिणाम यह हुआ कि आग उगलने वाली तोपों के सम्मुख साधारण शस्त्रों से युद्ध करने वाले सैनिक नहीं टिक पाए। पानीपत में बाबर की विजय में उसके कुशल अश्वारोही और भारी तोपखाना अत्यन्त सहायक हुए।

5. हुमायूँ की शेर खाँ के विरुद्ध हार के किन्हीं तीन कारणों का वर्णन कीजिए।

उ०– शेर खाँ के विरुद्ध हुमायूँ की हार के तीन कारण निम्नवत् हैं—

(i) **दोषपूर्ण युद्ध प्रणाली–** हुमायूँ की युद्ध प्रणाली दोषपूर्ण थी। वह अपने शत्रुओं को परास्त करने के उपरान्त क्षमा कर दिया करता था, जिससे उन्हें अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल जाता था। अपने महत्वाकांक्षी शत्रुओं को पूरी तरह कुचले बिना छोड़कर हुमायूँ ने अपने पतन का मार्ग स्वयं प्रशस्त किया। हुमायूँ का यह चारित्रिक दोष था कि वह अपनी विजय पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाता था।

(ii) **धन का अपव्यय–** बाबर ने युद्धों व खैरात के रूप में धन का अपव्यय करके शाही खजाने को खाली कर दिया था। इसी प्रकार हुमायूँ भी अपनी विजयों के उपलक्ष्य में बड़ी-बड़ी दावतें आयोजित करता था और अपने सरदारों तथा परिवार के सदस्यों को भेंट दिया करता था, अत: हुमायूँ को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा और अन्तत: उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा।

(iii) **चारित्रिक अयोग्यता–** हुमायूँ अपनी असफलता का कारण स्वयं ही था। वह मदिरा-प्रेमी, अयोग्य एवं सैनिक गुणों से रहित एक असफल शासक था। हुमायूँ को अफीम सेवन का भी बहुत शौक था, जिससे वह आलसी हो गया था।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए।

उ०– **बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा–** बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' अथवा 'बाबरनामा' में लिखा है कि उसके आक्रमण के समय भारत में पाँच मुस्लिम राज्य और दो काफिर (हिन्दू) राज्य थे। देहली, मालवा, बंगाल, गुजरात व बहमनी राज्य मुस्लिम शासकों के अधीन थे तथा मेवाड़ व विजयनगर हिन्दू शासकों के अधीन थे। बाबर का यह कथन सही है कि "सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत केवल ऐसे राज्यों का समूह था, जो किसी भी आक्रमणकारी का, जो उसे विजित करने की शक्ति और इच्छा रखता हो, सरलता से शिकार हो सकता था।"

(i) **पंजाब–** बाबर के आक्रमण के समय पंजाब का सूबेदार दौलत खाँ लोदी था। यद्यपि वह दिल्ली साम्राज्य के अधीन था, लेकिन अपने आपको स्वतन्त्र शासक के रूप में देखना चाहता था। इतिहासकारों के अनुसार उसने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी और इब्राहीम लोदी को समाप्त करने के लिए काबुल के शासक बाबर से पत्र-व्यवहार कर रहा था। उसने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था।

(ii) **गुजरात–** सुदूर पश्चिम में स्थित गुजरात का शासक मुजफ्फरशाह था। उसने गुजरात पर 1511 ई० से लेकर 1526 ई० तक राज्य किया। अपने शासनकाल में वह मालवा और मेवाड़ के पड़ोसी राज्यों के साथ युद्धों में व्यस्त रहा। पानीपत के युद्ध के कुछ ही दिन पूर्व उसका देहान्त हो गया और तब उसका पुत्र बहादुरशाह गुजरात का शासक बना। वह बड़ा योग्य और सफल शासक सिद्ध हुआ। आगे चलकर उसका मुगल सम्राट हुमायूँ से काफी संघर्ष हुआ।

(iii) **दिल्ली–** बाबर के आक्रमण के समय उत्तरी भारत का सबसे प्रसिद्ध राज्य दिल्ली था। इसका सम्पूर्ण वैभव समाप्त हो चुका था। कहने को तो दिल्ली का सुल्तान विशाल साम्राज्य का स्वामी था, किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से उसका प्रभाव केवल दिल्ली और उसके आसपास के कुछ प्रदेशों तक ही सीमित रह गया था। बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली का सुल्तान इब्राहीम लोदी था। उसके कठोर और मनमाने व्यवहार से उसके सूबेदार, सैनिक, अधिकारी और राज दरबारी तंग आ चुके थे। वे सब उसके पतन के आकाँक्षी थे। फलस्वरूप दिल्ली राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोह हो रहे थे। लाहौर के सूबेदार दौलत खाँ लोदी ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था। वह काबुल के शासक बाबर से भी गठजोड़ कर रहा था और उसे दिल्ली पर आक्रमण के लिए उकसा रहा था। दरिया खाँ लोदी बिहार में स्वतन्त्र शासक बन बैठा था। सारांशत: बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली राज्य पूर्णतया अव्यवस्थित था और निरन्तर दुर्बल होता जा रहा था।

(iv) **बिहार–** फिरोज तुगलक के शासनकाल में बिहार स्वतन्त्र हो गया था। बाबर के आक्रमण के समय बिहार शक्तिशाली मुस्लिम राज्य था।

(v) **मालवा–** तैमूर के आक्रमण के तुरन्त बाद मालवा के सूबेदार दिलावर खाँ ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। मालवा के शासक महमूद खिलजी द्वितीय के शासनकाल में मेदिनीराय नामक एक राजपूत सरदार का दबदबा बढ़ गया था। उससे अप्रसन्न होकर मुस्लिम सरदारों ने उसका विरोध किया। मेदिनीराय ने महाराणा सांगा की सहायता से उन्हें परास्त कर दिया। इस प्रकार मालवा के सरदारों में आपसी फूट बढ़ गई।

(vi) **उड़ीसा (ओडिशा)–** यह राज्य काफी समय से हिन्दू राजाओं के अधीन था। यह समृद्ध एवं शक्तिशाली राज्य था, किन्तु दिल्ली से अत्यधिक दूर स्थित होने के कारण उत्तर भारत की राजनीति में उसकी विशेष भूमिका न थी।

(vii) **सिन्ध–** महमूद तुगलक की मृत्यु होते ही सिन्ध राज्य स्वतन्त्र हो गया था। बाबर के भारत पर आक्रमण के समय यहाँ अरबों का अधिकार स्थापित हो गया था। सिन्ध पर अरब वालों का प्रभाव था। यहाँ की राजनैतिक व्यवस्था अत्यन्त ही असन्तोषजनक थी।

(viii) **बंगाल–** बाबर के आक्रमण के समय बंगाल एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापित था, जहाँ का प्रशासक नुसरतशाह था। वह बड़ा योग्य और गुणवान व्यक्ति था। लोग उसके शासनकाल में आर्थिक दृष्टि से समृद्ध और सन्तुष्ट थे।

(ix) **कश्मीर–** कश्मीर भी एक महत्वपूर्ण राज्य था। यहाँ सत्ता के लिए आन्तरिक संघर्ष चल रहा था। यहाँ के प्रधान वजीर ने अपने स्वामी सुल्तान मुहम्मदशाह को बाबर की सहायता से अपदस्थ कर स्वयं सत्ता हथिया ली।

(x) **मेवाड़–** मेवाड़ उत्तरी भारत का सबसे प्रसिद्ध हिन्दू राज्य था, जिस पर राणा साँगा अथवा राणा संग्रामसिंह का शासन था। **कर्नल टॉड** के अनुसार राणा साँगा का प्रभाव लगभग सम्पूर्ण राजपूताने पर था। राणा साँगा ने मालवा के अनेक भागों पर अधिकार कर लिया था। उसने गुजरात के शासक को भी हराया था। राणा साँगा का उद्देश्य भारत में फिर से हिन्दू राज्य स्थापित करना था। राणा साँगा नि:सन्देह उत्तरी भारत का ही नहीं सम्पूर्ण भारत के शक्तिशाली शासकों में से था, जिससे बाबर को टक्कर लेनी थी।

(xi) **पुर्तगाल शक्ति–** यद्यपि बाबर के आक्रमण के समय पुर्तगालियों की शक्ति अधिक नहीं थी फिर भी उन्होंने गोआ पर अधिकार जमा लिया था। अपनी गतिविधियों के कारण उन्होंने भारत के पश्चिमी समुद्र तट के राजनीतिक एवं व्यापारिक जीवन में अस्थिरता ला दी थी।

(xii) **खानदेश–** ताप्ती नदी की घाटी में बसा हुआ खानदेश छोटा-सा किन्तु एक समृद्धशाली राज्य था। मलिक राजा फारुकी, मलिक नसीर खाँ तथा आदिल खाँ फारुकी खानदेश के प्रसिद्ध शासक थे। आदिल खाँ फारुकी की मृत्यु के पश्चात् महमूद प्रथम यहाँ का शासक बना। यह बाबर का समकालीन था।

(xiii) **बहमनी राज्य–** बहमनी राज्य अपने वैभव को खोकर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। उसके स्थान पर अब बीजापुर, बरार, बीदर, अहमदनगर और गोलकुण्डा के पाँच स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो चुके थे। इन राज्यों के शासकों में भी परस्पर संघर्ष होता रहता था। इनकी आपसी फूट से उत्साहित होकर विजयनगर का शक्तिशाली हिन्दू राजा कृष्णदेवराय उन्हें अपने आक्रमण का शिकार बनाता रहता था। इस प्रकार बाबर के आक्रमण के समय दक्षिण में मुस्लिम शक्ति अपने अन्तिम दिन गिन रही थी।

(xiv) **विजयनगर–** यह हिन्दू राज्य सुदूर दक्षिण में स्थित था। बाबर के आक्रमण के समय यहाँ का राजा कृष्णदेवराय था। **के०एम० पणिक्कर** के शब्दों में ''वह अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, हर्ष और भोज की परम्परा में एक महान् सम्राट था, जिसका राज्य अपने वैभव के शिखर पर था।'' बाबर ने भी विजयनगर के बारे में लिखा है कि ''राज्य एवं सैनिक दृष्टि से काफिर राजकुमारों में विजयनगर का राजा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बाबर के आक्रमण के समय केन्द्रीय शक्ति का पतन हो चुका था तथा समस्त देश में स्वतन्त्र शासक अपनी सत्ता बढ़ाने के लिए पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता में लीन थे। उनमें एकता का अभाव था। **लेनपूल** ने उस समय की दशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि विजेता जाति (मुसलमान) अशांतकारियों की एक भीड़ में बदल गई थी। दिल्ली सल्तनत के बड़े-बड़े प्रान्तों के अपने शासक थे। छोटे-छोटे नगरों, जिलों, यहाँ तक कि दुर्गों आदि पर वहाँ के सरदारों ने अधिकार कर लिया था। इस प्रकार बाबर के लिए भारत पर आक्रमण हेतु उपयुक्त परिस्थितियाँ थीं।

2. 'हुमायूँ ने सम्पूर्ण जीवन लुढ़कते हुए ही व्यतीत किया व अन्त में लुढ़ककर ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उ०– हुमायूँ का जन्म 6 मार्च, 1508 ई० को काबुल में हुआ था। उसकी माता का नाम माहम सुल्ताना बेगम और पिता का नाम बाबर था। सन् 1520 ई० में हुमायूँ को 12 वर्ष की अवस्था में बदख्शाँ का शासक बनाया गया। बदख्शाँ में हुमायूँ ने लगभग दस वर्ष तक शासन किया। हुमायूँ ने 18 वर्ष की अवस्था में युद्धों में भाग लेना शुरू कर दिया था।

हुमायूँ जिस समय गद्दी पर बैठा उस समय वह चारों ओर से कठिनाइयों और समस्याओं से घिरा हुआ था। पानीपत और खानवाँ के युद्ध में बाबर की क्रूरता के कारण हिन्दू और मुसलमान उसके विरोधी बन गए थे। अत: जब हुमायूँ सिंहासन पर बैठा तब उसे हिन्दुओं और मुसलमानों का सहयोग न मिल सका। बाबर का अधिक समय युद्धों में व्यतीत हुआ था। इन युद्धों में उसे विशाल धनराशि प्राप्त हुई थी, किन्तु उसने यह धन राशि अपने सरदारों और सम्बन्धियों में बाँट दी थी। अत: हुमायूँ को खाली राजकोश विरासत में मिला था।

सिंहासन पर बैठते ही हुमायूँ को अपने सम्बन्धियों के षड्यंत्रों तथा अफगान सरदारों के विद्रोहों का सामना करना पड़ा था। सन् 1530 ई० से 1540 ई० तक वह इन समस्याओं में उलझा रहा तथा 1540 ई० में परिस्थितिवश उसे पराजित होकर 15 वर्षों के लिए भारत छोड़कर जाना पड़ा।

हुमायूँ में नेतृत्व का अभाव था। जहाँ तक सम्भव होता, वह कठिनाइयों को टालता रहता था। अपने दस वर्षों के शासनकाल उसने नेतृत्व शक्ति तथा अपने सैनिकों एवं अधिकारियों को नियन्त्रण में रखने की योग्यता का अभाव प्रदर्शित किया। उसे न तो सैन्य संगठन का ज्ञान था और न ही सैन्य संचालन का। उसे इस बात का भी ज्ञान नहीं था कि शत्रु पर कब और किस प्रकार आक्रमण करना चाहिए। शेर खाँ की बढ़ती शक्ति का ठीक अनुमान न लगा पाना और उसके विरुद्ध कुशल नेतृत्व के साथ संघर्ष न करना उसकी असफलता के कारण थे।

हुमायूँ का अर्थ होता है— भाग्यशाली, परन्तु वास्तव में हुमायूँ बहुत ही दुर्भाग्यशाली था। कदम-कदम पर उसके भाग्य ने उसे धोखा दिया। यदि भाग्य साथ देता तो उसे कभी पराजय का मुँह न देखना पड़ता। जिस समय हुमायूँ आगरा पहुँचा वहाँ उसे शेर खाँ के आने का समाचार मिला। कन्नौज नामक स्थान पर दोनों की सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में हुमायूँ ने एक हाथी पर चढ़कर अपनी जान बचाई। यह युद्ध अफगानों और मुगलों का अन्तिम युद्ध था, जिसमें हुमायूँ के विकास का सितारा डूब गया। कन्नौज युद्ध में पराजय के बाद हुमायूँ ने भारत में शरण मिलने की आशा छोड़कर काबुल की ओर प्रस्थान किया; किन्तु वहाँ उसके भाई कामरान ने उसकी सहायता नहीं की। इस प्रकार हुमायूँ को विदेशों में भाग्य आजमाने के लिए भटकना पड़ा इसके बाद के 15 वर्ष हुमायूँ को एक निर्वासित और भगोड़े के रूप में दर-ब-दर की ठोकर खानी पड़ी।

हुमायँ ने फारस के शाह की सहायता से अपने खोए हुए प्रदेशों को प्राप्त करने की कोशिश की। कंधार, काबुल और बदख्शाँ पर विजय प्राप्त करता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ा। उस समय दिल्ली पर अयोग्य शासक सिकन्दर सूर का शासन था। सर हिन्द नामक स्थान पर सिकन्दर सूर को हराकर हुमायूँ को पुन: सन् 1555 ई० में दिल्ली का शासन प्राप्त हो गया। हुमायूँ अपनी इस विजय का आनन्द अधिक दिनों तक न ले सका। 24 जनवरी, 1556 ई० को अजान की आवाज सुनकर वह जल्दी से अपने पुस्तकालय के जीने की सिढ़ियों से उतरने लगा और पैर फिसल जाने से लुढ़कता हुआ नीचे गिरा, जिससे उसकी खोपड़ी की हड्डी टूट गई। तीन दिन बाद 27 जनवरी, 1556 को उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार हुमायूँ ने सम्पूर्ण जीवन लुढ़कते हुए ही व्यतीत किया और अन्त में लुढ़ककर ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई।

3. हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाइयों का वर्णन कीजिए।

उ०– हुमायूँ की प्रारम्भिक कठिनाईयाँ– हुमायूँ जिस समय गद्दी पर बैठा, वह चारों ओर से कठिनाइयों और समस्याओं से घिरा हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में एक सैनिक प्रतिभा से युक्त, कूटनीतिक चातुर्य और राजनीतिक सूझबूझ से सम्पन्न शासक की आवश्यकता थी, परन्तु हुमायूँ में इन सबका अभाव था। अत: वह स्वयं अपना सबसे बड़ा शत्रु सिद्ध हुआ।

हुमायूँ के चरित्र में अनेक दुर्बलताओं का सम्मिश्रण था। अत: कुछ विद्वानों का मत है कि हुमायूँ के चरित्र में अनेक दोष थे, जिनके कारण वह असफल रहा। किन्तु यह भी सत्य है कि हुमायूँ को अनेक कठिनाइयाँ विरासत में भी मिली थी। अत: हुमायूँ की प्रमुख कठिनाइयों और समस्याओं का वर्णन करना आवश्यक है—

(i) **हिन्दुओं व मुसलमानों का विरोध–** बाबर ने पानीपत के युद्ध में मुसलमानों को अपना शत्रु बना लिया था, साथ ही खानवा के युद्ध में हिन्दुओं का क्रूरता से हत्याकाण्ड करके उसने हिन्दुओं को भी अपना विरोधी बना लिया था। अत: उसका पुत्र हुमायूँ जब सिंहासन पर बैठा तब उसे हिन्दुओं व मुसलमानों दोनों का सहयोग न मिल सका।

(ii) **आर्थिक संकट–** बाबर का अधिकतम जीवन युद्धों में व्यतीत हुआ था। हालाँकि पानीपत के युद्ध में उसे एक विशाल धनराशि प्राप्त हुई थी, किन्तु उसने वह धनराशि विजय की खुशी में अपने सरदारों, सम्बन्धियों आदि के बीच वितरित कर दी थी। इस प्रकार धन के वितरण तथा युद्धों में धन के अपव्यय के कारण उसका राजकोष खाली हो गया था। अत: जिस समय हुमायूँ सिंहासन पर बैठा, उस समय खाली राजकोष उसे विरासत में मिला था।

(iii) **उत्तराधिकार के नियमों का अभाव–** मुगल वंश में भी उत्तराधिकार के नियमों का अभाव था, अत: बाबर की मृत्यु के बाद उसके अन्य तीन लड़के- कामरान, अस्करी व हिन्दाल तथा बाबर के अन्य सम्बन्धी भी अपने को सम्राट घोषित करने का प्रयास कर रहे थे। इसके साथ-साथ स्वयं बाबर का यह उपदेश था कि मेरी अन्तिम इच्छा का सार यही है कि अपने भाइयों के विरुद्ध कभी कोई कार्य न करना, चाहे वे उसके योग्य ही क्यों न हों। इस उपदेश के कारण हुमायूँ ने अपने भाइयों के साथ उदारता का व्यवहार करके अपनी कठिनाइयों को और अधिक बढ़ा लिया।

(iv) **सम्बन्धियों की समस्या–** सम्बन्धियों की समस्या भी हुमायूँ के सम्मुख एक प्रमुख कठिनाई थी। इन सम्बन्धियों में उसकी सौतेली बहन मासूमा बेगम का पति मुहम्मद जमान मिर्जा, बाबर का बहनोई मीर मुहम्मद मेहँदी ख्वाजा तथा हुमायूँ के भाई कामरान, अस्करी और हिन्दाल मुख्य थे। अस्करी और हिन्दाल दुर्बल व अस्थिर-बुद्धि के थे और वे इसलिए खतरनाक थे कि महत्वाकांक्षी लोग इन्हें अपने हाथों की कठपुतली बना सकते थे।

(v) **असंगठित साम्राज्य–** बाबर ने हालाँकि अपने सैनिक-बल पर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, किन्तु न तो उसने उसे संगठित किया तथा न ही शासन-व्यवस्था में कोई सुधार ही किया। अत: विरासत में हुमायूँ को एक असंगठित साम्राज्य मिला था, जो अराजकता से पूर्ण था और ऐसी स्थिति में हुमायूँ के लिए कार्य करना कठिन था।

(vi) **दोषपूर्ण सैनिक संगठन–** बाबर की सेना मुगल, पठान, चगताई आदि अनेक भिन्न-भिन्न जातियों के सैनिकों का सम्मिश्रण थी, जिनमें एकता का अभाव था। अतएव सेना को संगठित रखना भी हुमायूँ के लिए बड़ी समस्या थी।

(vii) **अफगानों की समस्या–** यद्यपि बाबर ने अफगानों को पानीपत के युद्ध में परास्त कर दिया था तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना कर दी थी, परन्तु अफगान अभी भी शान्त नहीं बैठे थे। वे बदला लेने के लिए आतुर थे। जिस दौरान हुमायूँ ने सिंहासनारोहण किया, उस समय महमूद लोदी, शेर खाँ जैसे शक्तिशाली किन्तु अत्यन्त महत्वाकांक्षी अफगानों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसे उनके विरुद्ध लड़ना पड़ा। अत: अफगानों की समस्या हुमायूँ को विरासत में प्राप्त हुई थी।

4. बाबर की विजय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

उ०– भारत में बाबर की विजय के प्रमुख कारणों का विश्लेषण निम्नवत् है–

(i) **इब्राहीम लोदी की सैनिक कमजोरियाँ–** इब्राहीम लोदी अनुभवहीन और अयोग्य सेनापति था। उसे रणक्षेत्र में सेनाओं के कुशल संचालन और संगठन का विशेष ज्ञान नहीं था। इब्राहीम के अन्य सेनापति और सरदार भी विलासी, दम्भी और अनुभवहीन थे। बाबर ने स्वयं अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' में लिखा है- ''वह (इब्राहीम) अनुभवहीन युवक अपनी गतिविधियों में लापरवाह था, बिना किसी नियम-कायदे के वह आगे बढ़ जाता था, बिना किसी ढंग के रुक जाता अथवा पीछे मुड़ जाता और बिना सोचे-समझे शत्रु से भिड़ जाता।'' इब्राहीम लोदी की सैनिक दुर्बलता बाबर जैसे सैनिक के लिए वरदान सिद्ध हुई।

(ii) **इब्राहीम लोदी की अयोग्यता–** इब्राहीम लोदी एक अयोग्य निर्दयी और जिद्दी सुल्तान था। उसमें राजनीतिज्ञता, कूटनीति और दूरदर्शिता नहीं थी। इन गुणों के अभाव के कारण वह दौलत खाँ, आलम खाँ, मुहम्मदशाह और राणा साँगा को बाबर के विरुद्ध अपने पक्ष में नहीं मिला सका।

(iii) **बाबर द्वारा तोपों का प्रयोग–** पानीपत के युद्ध में इब्राहीम के पास तोपखाना और कुशल अश्वारोही सेना नहीं थी, जबकि बाबर के पास सुदृढ़ तोपखाना था, जिसका संचालन उस्ताद अली और मुस्तफा जैसे अनुभवी सेनानायकों ने किया। इसका परिणाम यह हुआ कि आग उगलने वाली तोपों के सम्मुख साधारण शस्त्रों से युद्ध करने वाले सैनिक नहीं टिक पाए। पानीपत में बाबर की विजय में उसके कुशल अश्वारोही और भारी तोपखाना अत्यन्त सहायक हुए।

(iv) **बाबर की रणकुशलता और सैन्य संचालन–** बाल्यकाल से ही निरंतर संकटों, संघर्षों और युद्ध में भाग लेते रहने से बाबर एक वीर, साहसी, कुशल योद्धा और अनुभवी सैनिक बन गया था। इस प्रकार बाबर एक जन्मजात वीर एवं महान् सेनापति था, इसीलिए उसे पानीपत और खानवा के युद्धों में निर्णायक विजय प्राप्त करने में अधिक कठिनाई नहीं हुई।

(v) **राणा साँगा की गलतियाँ–** खानवा के युद्ध में राणा साँगा की सबसे बड़ी भूल यह थी कि उन्होंने बाबर पर एकदम आक्रमण नहीं किया, अपितु उसे संगठित और तैयार होने के लिए अवसर दिया। खानवा के समीप की पहली मुठभेड़ में बाबर का सेनापति परास्त हो चुका था और बयाना से उसकी सेना पहले ही हारकर भाग चुकी थी और वह राजपूतों की वीरता व रणकौशल से आतंकित हो गई थी। यदि उसी समय राणा साँगा बाबर पर अपनी पूरी शक्ति से आक्रमण कर देते तो विजय उन्हें ही प्राप्त होती और बाबर भारत से भाग गया होता। राणा साँगा के युद्ध में हारने का एक कारण युद्ध में हाथियों का प्रयोग भी था।

(vi) **बाबर की सैनिक तैयारी तथा तुलगमा रणनीति का प्रयोग–** बाबर ने पानीपत और खानवा दोनों ही युद्धों में पूर्ण सैनिक तैयारी की थी। उसने अपनी सेना के सबसे आगे बिना बैल की बैलगाड़ियों की पंक्ति लगाई और इन गाड़ियों को परस्पर जोड़कर एक-दूसरे से लगभग 18 फुट लम्बी लोहे की जंजीरों से बाँध दिया। सेना के जिस भाग में बैलगाड़ियाँ नहीं थीं, उस ओर सुरक्षा के लिए खाइयाँ खुदवा दीं। इनके पीछे बन्दूकची और तोपखाने के गोलन्दाज खड़े किए गए। खानवा के युद्ध में निजामुद्दीन अली खलीफा ने तोपों का नेतृत्व किया। बन्दूकों की व्यवस्था मुस्तफा के अधीन थी और तोपों से गोलाबारी उस्ताद अली ने करवाई। इसके अतिरिक्त बाबर ने पानीपत और खानवा के युद्धों में तुलगमा रणनीति अपनाकर विजय प्राप्त की।

5. बाबर के चरित्र का वर्णन कीजिए।

उ०– बाबर के चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ थीं–

(i) **व्यक्ति के रूप में–** बाबर का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। वह अदम्य शारीरिक और आत्मिक शक्ति का स्वामी था। विभिन्न समकालीन एवं आधुनिक विद्वानों ने उसके विभिन्न गुणों की प्रशंसा की है।

बाबर के चरित्र की व्याख्या करते हुए एक विद्वान ने लिखा है– ''बाबर का चरित्र नारी-दोष से निष्कलंक था, इस सन्दर्भ में तो उसे एक सूफी कहा जा सकता है।'' वह एक सच्चा मुसलमान था क्योंकि अल्लाह में उसे बड़ा विश्वास था। वह उच्चकोटि का साहित्यकार भी था। उसकी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' विश्व के महान ग्रन्थों में गिनी जाती है। बाबर प्रकृति-प्रेमी भी था। मुगल साम्राज्य का संस्थापक सम्राट बाबर अपने मनोरम और सुन्दर व्यक्तित्व, कलात्मक स्वभाव तथा अद्‌भुत चरित्र के कारण इस्लाम के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

(ii) **विद्वान शासक के रूप में–** बाबर एक जन्मजात सैनिक था और उसे विजेता के रूप में याद किया जाता है, किन्तु यदि बाबर ने भारत न जीता होता तो भी विद्वान् के रूप में उसे सर्वदा याद किया जाता। उसे पर्शियन और अरबी भाषा का ज्ञान था और वह तुर्की भाषा का विद्वान था। तुर्की भाषा में लिखी हुई उसकी 'आत्मकथा' साहित्य और इतिहास दोनों ही दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ मानी गई है, इसमें सभी कुछ इतना सत्य, स्पष्ट, बुद्धिमत्तापूर्ण और रोचक है कि 'तुजुक-ए-बाबरी' (बाबरनामा) संसार की श्रेष्ठतम आत्मकथाओं में स्थान रखती है। पद्य की रचनाओं में उसके द्वारा किया गया संकलन 'दीवारन' था, जो तुर्की पद्य में श्रेष्ठ स्थान रखता है। न्याय पर भी उसने एक पुस्तक लिखी थी, जिसे सभी ने श्रेष्ठ स्वीकार किया था।

(iii) **सेनापति के रूप में–** बाबर एक साहसी और कुशल सैनिक था। वह एक प्रशंसनीय घुड़सवार, अच्छा निशानची, कुशल तलवारबाज और जबर्दस्त शिकारी था। सेनापति की योग्यता को बाबर ने अपने संघर्षमय जीवन के अनुभव से प्राप्त किया। वास्तव में बाबर में तुर्कों की शक्ति, मंगोलों की कट्टरता और ईरानियों का उद्वेग एवं साहस सम्मिलित था। उसमें नेतृत्व करने का स्वाभाविक गुण था। वह अपनी सेना से बड़ी सेनाओं का मुकाबला करने में डरता न था। अनुशासनहीनता उसे पसन्द न थी और उसकी अवहेलना होने पर वह अपने सैनिकों को कठोर दण्ड देता था। इस प्रकार बाबर एक योग्य सैनिक और सफल सेनापति था।

(iv) **राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ के रूप में–** एक राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ के रूप में बाबर पर्याप्त सफल था। अपनी दुर्बल स्थिति को देखकर उसने अपने मामाओं से समझौते के प्रस्ताव किए थे, परन्तु एक राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ की दृष्टि से उसका प्रमुख कार्य भारत में शुरू हुआ। जिस प्रकार उसने भारतीय और अफगान अमीरों में सन्तुलन बनाकर रखा और जिस प्रकार उसने बिहार और बंगाल के शासकों से व्यवहार किया उससे कूटनीतिज्ञ प्रतिभा झलकती है। कम-से-कम छः हिन्दू राजाओं ने भी स्वेच्छा से उसके आधिपत्य को स्वीकार किया था।

(v) **शासन-प्रबन्धक के रूप में–** बाबर एक अच्छा शासन-प्रबन्धक नहीं था। यह केवल इसी से स्पष्ट नहीं होता कि उसने भारत के शासन-प्रबन्ध में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए बल्कि काबुल के शासक के रूप में भी वह सफल नहीं हुआ था। बाबर ने अपने प्रदेशों में समान शासन-व्यवस्था, लगान-व्यवस्था, कर-व्यवस्था और समुचित न्याय-व्यवस्था लागू करने का प्रयत्न नहीं किया। धन सम्बन्धी मामलों में भी बाबर लापरवाह था।

6. हुमायूँ की असफलताओं के कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– हुमायूँ को शेरशाह के विरुद्ध कई पराजय झेलनी पड़ी। जब तक शेरशाह जीवित रहा, हुमायूँ को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी। विभिन्न भूलें जो हुमायूँ ने अपने शासन के आरम्भ में कीं, वे अन्त में हुमायूँ की पराजय और असफलता के लिए उत्तरदायी हुईं। जिन परिस्थितियों में हुमायूँ को सिंहासन त्यागना पड़ा, उनमें से अधिकांश उसकी मूर्खता और कमजोरियों का परिणाम था, जिसका वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(i) **असंगठित शासन-व्यवस्था–** यह सही है कि हुमायूँ को विरासत में अस्त-व्यस्त प्रशासन-व्यवस्था प्राप्त हुई थी, जिसका कारण बाबर को पर्याप्त समय नहीं मिल पाना था, लेकिन हुमायूँ को तो पर्याप्त समय मिला था। सिंहासन पर आसीन होने के बाद हुमायूँ ने शासन-व्यवस्था पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। बाबर ने अपने पुत्र हुमायूँ के लिए ऐसी शासन-व्यवस्था छोड़ी थी, जो केवल युद्धकालीन स्थिति में ही स्थिर रह सकती थी, शांति के समय वह शिथिल और निराधार थी। हुमायूँ इतना योग्य नहीं था कि असंगठित शासन-व्यवस्था को सुसंगठित कर पाता।

(ii) **बहादुरशाह के प्रति हुमायूँ की नीति–** बहादुरशाह के प्रति अपनाई गई हुमायूँ की नीति उसकी असफलता का प्रमुख कारण बनी। हुमायूँ को बहादुरशाह पर उसी समय आक्रमण कर देना चाहिए था, जब वह चित्तौड़ में राजपूतों से युद्ध कर रहा था। ऐसा करने पर उसे विजय और राजपूतों की सहानुभूति मिलने की अधिक सम्भावना थी। माण्डू में कई सप्ताह तक विलासिता में डूबे रहने के कारण वह गुजरात और मालवा विजय को स्थिर न रख सका। अवसर मिलते ही बहादुरशाह ने मालवा और गुजरात पर पुन: अधिकार कर लिया।

(iii) **हुमायूँ के चारित्रिक दोष–** हुमायूँ में संकल्प-शक्ति और चारित्रिक बल का अभाव था। डटकर प्रयत्न करना उसकी शक्ति के बाहर था। विजय प्राप्ति के थोड़े समय बाद ही वह अपने हरम में जाकर आनन्द से पड़ा रहता था और अपने समय को अफीमची के सपनों की दुनिया में नष्ट करता था। उसने गुजरात और मालवा विजयों के पश्चात् कई सप्ताह तक रंगरेलियाँ मनाईं। इसी प्रकार गौड़ पर अधिकार करने के पश्चात् वहाँ भोग-विलास में आठ माह से अधिक का समय नष्ट किया। शत्रु की शक्ति का अनुमान न लगा पाना और कठिन परिस्थितियों में तत्काल निर्णय न कर पाना उसकी अन्य कमजोरियाँ थीं। जैसा कि **एलफिंस्टन** ने लिखा है कि वह वीर अवश्य था, किन्तु स्थिति की गम्भीरता को समझने की योग्यता उसमें नहीं थी। **डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव** ने लिखा है कि ''ऐसे अवसर पर जबकि उसे सजग-सचेष्ट होकर सैन्य संचालन में संलग्न रहना चाहिए था तब अपने हरम में रंगरेलियाँ मनाना और आराम करने का हुमायूँ का यह स्वभाव उसकी असफलता का एक प्रमुख कारण बना।''

(iv) **हुमायूँ की भूलें–** जिन विषम परिस्थितियों में हुमायूँ ने राज्य सम्भाला, अपनी गलतियों से उसने उसे और कठिन बना दिया। हुमायूँ ने अपने भाइयों में साम्राज्य का बँटवारा कर पहली भूल की। काबुल, कंधार और पंजाब कामरान को दे देने

से उसकी शक्ति का आधार ही खत्म हो गया तथा अस्करी और हिन्दाल को छोटी जागीरें देने से उनमें असन्तोष बना रहा। द्वितीय, हुमायूँ ने कालिंजर का अभियान कर दूसरी भूल की, क्योंकि न तो राजा को पराजित किया जा सका और न उसे मित्र बनाकर अपनी तरफ मिलाया जा सका। चुनार का दुर्ग शेर खाँ के ही आधिपत्य में रख देना उसकी तीसरी भूल थी, इससे शेरखाँ को अपनी शक्ति बढ़ाने का मौका मिल गया। गुजरात में बहादुरशाह के विरुद्ध चित्तौड़ की मदद न करना उसकी चौथी भूल थी, जिससे उसने राजपूतों की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त करने का अवसर खो दिया। जिस प्रकार राजपूतों ने बाद में अकबर का साथ देकर मुगल साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान की, उसी प्रकार हुमायूँ भी उनका साथ लेकर अपने साम्राज्य की रक्षा कर सकता था। पाँचवाँ, गुजरात के शासक बहादुरशाह के विरुद्ध आक्रमण की योजना में अनेक भूलें रह गई थीं, जिनके कारण मालवा और गुजरात से ही उसे हाथ नहीं धोने पड़े, बल्कि इससे उसकी भावी असफलता, अवनति और प्रतिष्ठा के अन्त का संकेत भी प्राप्त हो गया। छठा, कन्नौज की लड़ाई में तो उसने भारी भूल की, जैसे कि सैनिक-शिविर के लिए नीचा स्थान चुना, डेढ़ महीने तक अकर्मण्य बने रहना, शिविर को दूसरे स्थान पर हटाते समय अच्छा प्रबन्ध न करना, तोपखाने का युद्ध में उपयोग न कर पाना आदि बातें उसकी असफलता, पराजय और अन्त में युद्ध-क्षेत्र से उसके भागने के लिए भी उत्तरदायी बनी।

(v) **भाइयों के प्रति उदारता–** यह सत्य है कि बाबर ने हुमायूँ को अपने भाइयों के प्रति उदार रहने का निर्देश दिया था। लेकिन जब उसे मालूम हो गया था कि उसके भाई उसके प्रति वफादार नहीं है, तब उसे अपने व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहिए था। लेकिन इसके बावजूद वह अपने भाइयों के प्रति उदार बना रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि हिसार-फिरोजा और पंजाब जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र उसके हाथ से निकल गए और इन क्षेत्रों पर कामरान का अधिकार स्वीकार कर लिया। फिर भी कामरान के विरोधी रुख में कोई परिवर्तन नहीं आया। अस्करी और हिन्दाल भी उसके प्रति वफादार नहीं रहे। उन्हें जब भी अवसर मिला उन्होंने हुमायूँ के विरुद्ध विद्रोह कर स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया। लेकिन हुमायूँ बार-बार अपने भाइयों को माफ करता रहा। अपने भाइयों के प्रति अत्यधिक उदारता हुमायूँ की असफलता में सहायक सिद्ध हुई।

(vi) **शेर खाँ के प्रति नीति–** हुमायूँ कभी भी शेर खाँ की शक्ति और योजना का सही आकलन नहीं कर पाया। वह उसको सदैव अक्षम एवं दुर्बल समझता रहा और शेर खाँ अपनी शक्ति को बढ़ाने में जुटा रहा। शेर खाँ की शक्ति का सही आकलन न कर पाने की हुमायूँ को भारी कीमत चुकानी पड़ी।

(vii) **हुमायूँ की अपव्ययता–** हुमायूँ को विरासत में रिक्त राजकोष मिला था, उस समय एक ऐसे अर्थ-विशेषज्ञ शासक की जरूरत थी, जो साम्राज्य की अर्थव्यवस्था को ठीक करता। लेकिन हुमायूँ ने इस पक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। बाद में हुमायूँ को कालिंजर से युद्ध-क्षति के रूप में बहुत बड़ी धनराशि और चम्पानेर में गुजरात के शासकों का विशाल कोष मिला था, लेकिन उसने इस धन को बड़ी-बड़ी दावतें देने, आनन्द उत्सव मनाने, अपने अनुयायियों को पुरस्कार बाँटने और इमारतें बनाने में खर्च कर दिया। चम्पानेर से प्राप्त कोष को तो उसने खुले हाथों से खर्च किया। इससे साम्राज्य की आर्थिक स्थिति और खराब हो गई।

(viii) **भारतीय जनता का असहयोग–** हुमायूँ को भारतीय जनता एक आक्रमणकारी मानती थी। हुमायूँ ने न तो कभी जनकल्याण की ओर ध्यान दिया और न ही जनता को अपनी ओर आकर्षित किया। रचनात्मक कार्यों के स्थान पर उसने साम्राज्यवादी नीति अपनाई जो जनता के असहयोग के कारण सफल न हो सकी।

(ix) **हुमायूँ का दुर्भाग्य–** हुमायूँ का अर्थ होता है— भाग्यशाली, लेकिन वास्तव में हुमायूँ अत्यन्त ही दुर्भाग्यशाली था। कदम-कदम पर उसके भाग्य ने उसे धोखा दिया। यदि भाग्य ने उसका साथ दिया होता तो वह कभी पराजित न होता। कन्नौज के युद्ध में उसकी पराजय के विषय में **डॉ० कानूनगो** लिखते हैं कि ''बादशाह का दुर्भाग्य था, जो असामयिक वर्षा के रूप में प्रकट हुआ और जिससे गर्मी के दिनों में उस शिविर में पानी घुस आया, यदि यह दुर्घटना न होती तो हुमायूँ अपने दुर्गम्य शिविर से नहीं हटता।''

(x) **उचित नेतृत्व की योग्यता का अभाव–** हुमायूँ में कुशल नेतृत्व का अभाव था। जहाँ तक सम्भव होता, वह कठिनाइयों को टालता जाता था। अपने दस वर्षों के राज्यकाल में उसने नेतृत्व शक्ति और अपने सैनिकों एवं अधिकारियों को नियन्त्रण में रखने की योग्यता का नितान्त अभाव प्रदर्शित किया। उसे न तो सैन्य संगठन का ज्ञान था और न ही सैन्य संचालन का। चौसा और कन्नौज के युद्ध में वह अपनी सेना पर कुशल नियन्त्रण न रख सका। उसे इस बात का भी ज्ञान नहीं था कि शत्रु पर कब और किस प्रकार आक्रमण करना चाहिए। शेर खाँ की दिन-प्रतिदिन बढ़ती शक्ति का ठीक अनुमान न लगा पाना और उसके खिलाफ कुशल नेतृत्व के साथ संघर्ष न करना उसकी असफलता के कारण थे।

इस प्रकार हुमायूँ की असफलता के विभिन्न कारण बताए जाते हैं। इनसे स्पष्ट होता है कि हुमायूँ की विभिन्न दुर्बलताएँ और भूलें तथा इनके विपरीत शेर खाँ की योग्यता और उसका व्यक्तित्व हुमायूँ की असफलता के मुख्य कारण थे।

2

शेरशाह सूरी– शासन एवं उपलब्धियाँ
(Shershah Suri : Rule and Achievements)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1540 ई० **2. 1542 ई०** **3. 1543 ई० से मई 1544 ई०**
4. 1545 ई० **5. 1556 ई०**

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 36 पर 'तिथि सार' का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 36 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 37 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 37 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शेरशाह की प्रमुख विजयों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– शेरशाह सूरी की प्रमुख विजयों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् हैं—

(i) **गक्खर प्रदेश की विजय–** सन् 1541 ई० में शेरशाह ने गक्खर सरदारों पर चढ़ाई कर उनके प्रदेश को बुरी तरक से रोंद डाला।

(ii) **बंगाल का विद्रोह और नई व्यवस्था–** सन् 1541 ई० में शेरशाह ने खिज्र खाँ को कैद करके बंगाल को जिलों में बाँटकर प्रत्येक को एक छोटी सेना के साथ शिकदारों के नियंत्रण में दे दिया।

(iii) **मालवा की विजय–** सन् 1542 ई० में शेरशाह ने मालवा के शासक कादिरशाह को हराकर वहाँ अपना अधिकार जमा लिया।

(iv) **रायसीना की विजय–** सन् 1542 ई० में शेरशाह ने रायसीना के शासक पूरनमल को हराया।

(v) **मुल्तान व सिंध की विजय–** सन् 1543 ई० में शेरशाह के सूबेदार हैबत खाँ ने फतह खाँ जाट को परास्त कर मुल्तान एवं सिंध पर अधिकार कर लिया।

(vi) **मारवाड़ पर विजय–** सन् 1544 ई० में शेरशाह ने मालदेव के सेनापति नैता और कूँपा को हराया।

(vii) **मेवाड विजय–** सन् 1544 ई० में मारवाड़ पर विजय प्राप्त करके वापस लौटते समय शेरशाह ने मेवाड़ को अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया।

(viii) **कालिंजर की विजय–** सन् 1544 ई० में शेरशाह ने शासक कीरत सिंह को हराकर कालिंजर पर विजय प्राप्त की।

2. शेरशाह की सफलता के चार कारण लिखिए।

उ०– शेरशाह की सफलता के चार प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं—

(i) **दृढ़-संकल्पी–** शेरशाह दृढ-संकल्पी व्यक्ति था। हुमायूँ को भारत की सीमा से बाहर निकालकर ही उसने चैन की साँस ली।

(ii) **हुमायूँ की चारित्रिक दुर्बलताएँ–** हुमायूँ की चारित्रिक दुर्बलताओं का लाभ उठाकर, शेरशाह दिल्ली का सिंहासन अपनी योग्यता के द्वारा छीनने में सफल रहा।

(iii) **सैनिक प्रतिभा–** शेरशाह ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया, जिसमें उसकी सैनिक योग्यता की प्रमुख भूमिका थी।

(iv) **कूटनीतिज्ञ–** चौसा और बिलग्राम के युद्धों में सैनिक प्रतिभा से अधिक शेरशाह ने अपनी कूटनीति से विजय प्राप्त की।

3. शेरशाह के शासन-प्रबन्ध की दो प्रमुख विशेषाएँ लिखिए।

उ०– शेरशाह के शासन-प्रबन्ध की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **न्यायप्रियता–** शेरशाह न्याय प्रिय सुल्तान था। उसके राज्य में न्याय निष्पक्ष था तथा नियम भंग करने वाले अपराधी को कठोर दण्ड मिलता था, चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो।

(ii) **प्रजा का भौतिक एवं नैतिक विकास–** शेरशाह हालाँकि निरकुंश सुल्तान था तदापि उसने अपने सम्मुख प्रजाहित का आदर्श रखा। उसका विश्वास था कि सुल्तान को भगवान ने प्रजा का प्रधान बनाकर भेजा है तथा प्रजा का सर्वांगीण विकास करने का भार सुल्तान पर है।

4. शेरशाह के द्वारा भू-राजस्व के क्षेत्र में किए गए सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– शेरशाह राज्य के किसानों की भलाई में ही राज्य की भलाई मानता था। उसकी लगान-व्यवस्था अच्छी मानी जाती थी। शेरशाह की लगान-व्यवस्था मुख्यतया रैवतवाडी थी, जिसमें किसानों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित किया जाता था। उत्पादन के आधार पर ही भूमि को तीन श्रेणियों— उत्तम, मध्यम और निम्न में बाँटा गया। लगान निश्चित करने की प्रणालियाँ निर्धारित की गई थीं। किसान लगान नकद या जिन्स के रूप में दे सकते थे। यदि युद्ध के अवसर पर कृषि की कोई हानि हो जाती थी तो उसकी पूर्ति कर दी जाती थी।

5. शेरशाह के चरित्र पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उ०– शेरशाह को भारत के इतिहास में उच्चतम् सम्राटों में स्थान दिया जाता है और चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त तथा अकबर महान् के साथ तुलना की जाती है। शेरशाह एक प्रजावत्सल सम्राट था। प्रजा के साथ वह उदारता एवं दयालुता पूर्ण व्यवहार करता था। उसके राज्य में प्रतिदिन भिखारियों का दान दिया जाता था। शेरशाह में उच्चकोटि की धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी। शेरशाह मुस्लिम सम्राट था तदापि उसने हिन्दू व मुसलमानों के साथ समानता का व्यवहार किया। शेरशाह कर्त्तव्यपरायण सुल्तान था। वह अपने कर्त्तव्य को भली-भाँति जानता था तथा समुचित रूप से उनका पालन करता था। शेरशाह कठोर परिश्रमी था। वह शासन के समस्त विभागों पर नियत्रंण रखता था। शेरशाह विद्यानुरागी था। सुल्तान बनने के बाद उसने विद्या प्रसार के लिए अनेक पाठशालाएँ एवं मकतब निर्मित करवाए। वह एक कुशल सेनापति एवं कूटनीतिज्ञ था। हुमायूँ के साथ उसने उच्चकोटि के सेनापति की तरह युद्ध लड़े। चुनार, रोहतास तथा रायसीन पर उसने कूटनीति द्वारा विजय प्राप्त की। शेरशाह न्यायप्रिय सुल्तान था। न्याय के सम्मुख वह सबको समान समझता था तथा अपने पुत्र तक को साधारण व्यक्ति के समान दण्ड देता था। शेरशाह एक महत्वकांक्षी सुल्तान था, मुगलों को भारत से निकालकर ही उसने चैन की साँस ली।

6. शेरशाह को राष्ट्रीय सम्राट कहना कहाँ तक उचित है?

उ०– शेरशाह को धार्मिक सहिष्णुता का सिद्धान्त अपनाया था। वह ऐसा प्रथम मुस्लिम शासक था, जिसकी दृष्टि में सम्पूर्ण प्रजा एक समान थी, चाहे वह किसी भी धर्म की अनुयायी क्यों न हो। एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ होने के नाते वह इस बात को भली-भाँति समझ चुका था कि हिन्दुओं के देश भारत में, जहाँ की अधिकांश जनता हिन्दू है, धार्मिक अत्याचारों के आधार पर राज्य को स्थायी नहीं किया जा सकता इस नीति के आधार पर शेरशाह को राष्ट्रीय सम्राट कहना उचित है।

7. अकबर के अग्रगामी के रूप में शेरशाह का स्थान निर्धारित कीजिए।

उ०– शेरशाह एक प्रजावत्सल सम्राट था। वह प्रजा के साथ उदारता एवं दयालुतापूर्ण व्यवहार करता था। यद्यपि दण्ड देने में वह कठोर एवं अनुदार था। अपनी दरिद्र जनता एवं कृषकों के प्रति वह अत्यन्त उदार था। शेरशाह में उच्चकोटि की धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी। यद्यपि कुरान की आयतों का पाठ करता था तथा नमाज अदा करता था, तदापि भारत में हिन्दुओं व मुसलमानों के साथ उसने समानता का व्यवहार किया और उच्च पदों पर हिन्दुओं को भी आसीन किया तथा उनके बच्चों के पढ़ने की व्यवस्था की और एक सीमा तक उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। इस दृष्टिकोण से हम उसे अकबर का अग्रगामी मान सकते हैं।

8. सूर-साम्राज्य के पतन के चार कारणों का उल्लेख कीजिए।

उ०– भारत में दिल्ली पर प्रथम सूर (अफगान) साम्राज्य को लोदी वंश ने स्थापित किया था, किन्तु बाबर ने 1526 ई० में इब्राहीम लोदी को हराकर दिल्ली में मुगल साम्राज्य की स्थापना की। शेरशाह सूरी ने 1540 ई० में हुमायूँ को परास्त कर पुन: सूर साम्राज्य स्थापित किया। अफगानों का यह द्वितीय साम्राज्य लगभग 15 वर्षों तक रहा। सन् 1555 ई० में हुमायूँ ने मच्छीवाड़ा और सरहिन्द के युद्धों को जीतकर द्वितीय सूर साम्राज्य का पतन कर दिया। इस प्रकार सूर-साम्राज्य के पतन के चार प्रमुख कारण निम्नवत् हैं—

(i) इस्लामशाह के उत्तराधिकारियों का अयोग्य होना।
(ii) अफगानों का एक केन्द्रीय शासन-व्यवस्था को स्वीकार न करना।
(iii) इस्लामशाह की मृत्यु के पश्चात शासन-व्यवस्था का नष्ट होना।
(iv) अफगान सरदारों की महत्वकाक्षाएँ एवं स्वतन्त्र प्रवृत्ति।

9. शेरशाह सूरी द्वारा बनवाए गए दो प्रमुख राजमार्गों का वर्णन कीजिए।

उ०– शेरशाह सूरी का नाम सड़कों और सरायों के निर्माण के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने व्यापार की सुविधा के लिए लम्बी-लम्बी सड़कों का निर्माण कराया तथा देश के प्रमुख नगरों को सड़कों के द्वारा जोड़ दिया। शेरशाह सूरी द्वारा बनवाए गए दो प्रमुख राजमार्ग अग्रलिखित हैं—

(i) ग्रांड-ट्रंक रोड़ जो बंगाल के सोनारगाँव से आगरा, दिल्ली और लाहौर होती हुई सिंध प्रांत तक जाती है।

(ii) आगरा से बुरहानपुर तक।

10. शेरशाह और हुमायूँ के बीच हुए दो प्रमुख युद्धों का उल्लेख कीजिए।

उ०– शेरशाह और हुमायूँ के बीच हुए दो प्रमुख युद्ध निम्न प्रकार हैं—

(i) चौसा का युद्ध– सन् 1539 ई० में शेरशाह ने हुमायूँ को तोपखाने का प्रयोग करने का अवसर दिए बिना ही रणक्षेत्र से भागने को विवश कर दिया।

(ii) कन्नौज (बिलग्राम) का युद्ध– सन् 1540 ई० में शेरशाह ने कन्नौज के युद्ध में हुमायूँ को पराजित कर उसे भारत से बाहर खदेड़ दिया।

11. शेरशाह ने जन-साधारण के लिए क्या-क्या कार्य किए?

उ०– शेरशाह ने जन-साधारण के लिए निम्नलिखित कार्य किए—

(i) उत्तम न्याय व्यवस्था

(ii) भूमिकर अथवा लगान में सुधार

(iii) जन साधारण के जीवन एवं सम्मान की रक्षा के लिए पुलिस प्रशासन की व्यवस्था

(iv) शिक्षा के लिए पाठशालाओं एवं मकतबों का निर्माण

(v) जन साधारण को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करना

(vi) सड़क एवं सरायों को निर्माण।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. 'शेरशाह की गणना मध्यकाल के महान् शासकों में की जाती है' इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

उ०– शेरशाह महान् विजेता था। जूलियस सीजर, आगस्टस, हेनरी द्वितीय, एडवर्ड प्रथम, लुई चतुर्दश, अकबर महान् तथा चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ उसकी तुलना की जा सकती है। वह एक महान् साम्राज्य का निर्माता था जिसे उसने अपनी योग्यता से प्राप्त किया था तथा जिसकी सुव्यवस्था के लिए उसने उच्च कोटि की शासन-व्यवस्था स्थापित की थी। पाँच वर्ष के अल्पकाल में उसने अराजकतापूर्ण एवं अव्यवस्थित देश को सुव्यवस्था एवं सुरक्षा प्रदान की थी।

मध्यकाल भारत के इतिहास में शेरशाह का अपना एक स्थान है। वह एक वीर सैनिक, चतुर सेनानायक और कुशल कूटनीतिज्ञ था। वह केवल विजय प्राप्त करने में विश्वास करता था और उसका मानना था कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भले-बुरे सभी साधनों का व्यवहार में लाना उचित है। वह एक सफल शासक था। उसे प्रजा के सुख का पूरा ध्यान था और उसकी भलाई के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करता था। शासन-व्यवस्था के पुनर्गठन, भूमि का बन्दोबस्त, लगान, मुद्रा और व्यापार वाणिज्य में उसके द्वारा किए गये सुधारों के कारण मध्यकाल के महान् शासन-प्रबन्धकों में उसकी गणना की जाती है। शेरशाह 68 वर्ष की आयु में राजा बना था किन्तु यह वृद्धावस्था भी उसके उत्साह और आकाँक्षाओं को ठण्डा नहीं कर सकी। इस राय पर सभी इतिहासकार एकमत हैं कि शेरशाह सोलह घण्टे प्रतिदिन राजकाज में लगाता था। अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य अथवा अकबर की भाँति उसकी भी यही आदर्श वाक्य था कि महान् व्यक्ति को सदैव चैतन्य रहना आवश्यक है। शेरशाह में एक सैनिक और सेनापति के गुणों का अभाव न था। वह सभी युद्धों में शौर्य के साथ चालाकी का प्रयोग भी करता था। एक धार्मिक मुसलमान की दृष्टि से वह अपने धार्मिक कृत्यों को विषमपूर्वक करता था। **डॉ० आर०पी० त्रिपाठी** ने ठीक ही लिखा है ''कोई भी इतिहासकार अकबर के पहले के मुस्लिम शासकों के मध्य महानता, बुद्धिमानी और कार्यक्षमता के नाते शेरशाह को सर्वोच्च पद से वंचित नही रख सकता।''

2. शेरशाह के प्रशासन की विवेचना कीजिए।

उ०– **शेरशाह का शासन-प्रबन्ध–** इतिहासकारों ने शेरशाह को अकबर से भी श्रेष्ठ रचनात्मक बुद्धि वाला और राष्ट्र-निर्माता बताया है। सैनिक और असैनिक दोनों ही मामलो में शेरशाह ने संगठनकर्ता की दृष्टि से शानदार योग्यता का परिचय दिया। नि:सन्देह शेरशाह मध्य युग के महान् शासन-प्रबन्धकों में से एक था। उसने किसी नई शासन-व्यवस्था को जन्म नहीं दिया बल्कि उसने पुराने सिद्धान्तों और संस्थाओं को ऐसी कुशलता से लागू किया कि उनका स्वरूप नया दिखाई दिया। इस प्रकार योग्य शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से इतिहास में शेरशाह का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है। शेरशाह का शासन-प्रबन्ध निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

(i) प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध–

(क) इक्ता या सूबा– शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए शेरशाह ने साम्राज्य को अनेक भागों में बाँट रखा था। उस समय राज्य में 'सरकार' सबसे बड़ा खण्ड कहलाता था। सरकार ऐसे प्रशासकीय खण्ड थे जो कि प्रान्तों से मिलते-जुलते थे और जो इक्ता कहलाते थे और प्रमुख अधिकारियों के अधीन थे। शेरशाह के समय फौजी गवर्नरों की नियुक्तियाँ भी होती थीं। जिन राज्यों को शासन करने की स्वतन्त्रता दे दी गई थी, उन्हें सूबा या इक्ता कहा जाता था। सूबे का प्रमुख हाकिम अथवा फौजदार होता था। फिर भी शेरशाह के प्रान्तीय प्रशासन का विवरण स्पष्ट नहीं है।

(ख) सरकारें (जिले)– प्रत्येक इक्ता या सूबा सरकारों में बँटा होता था। शेरशाह की सल्तनत में 66 सरकारें थीं। प्रत्येक सरकार में दो प्रमुख अधिकारी होते थे— 'शिकदार-ए-शिकदारान' और 'मुन्सिफ-ए-मुनसिफान'। शिकदार-ए-शिकदारान सरकार के प्रशासन का अध्यक्ष होता था तथा विभिन्न परगनों के शिकदारों पर प्रशासनिक

अधिकारी होता था। अपनी सरकार में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करना तथा विद्रोही जमींदारों का दमन करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान मुख्यतया न्याय-अधिकारी था। दीवानी मुकदमों का फैसला करना और अपने अधीन मुन्सिफों के कार्यों की देखभाल करना उसका दायित्व था।

(ग) परगने– प्रत्येक सरकार में कई परगने होते थे। शेरशाह ने प्रत्येक परगने में एक शिकदार, एक अमीन (मुन्सिफ), एक फोतदार (खजांची) और दो कारकून (लिपिक) नियुक्त किए गए थे। शिकदार के साथ एक सैनिक दस्ता होता था और उसका कर्त्तव्य परगने में शान्ति स्थापित करना था। मुन्सिफ का कार्य दीवानी मुकदमों का निर्णय करना और भूमि की नाप एवं लगान-व्यवस्था की देखभाल करना था। फोतदार परगने का खजांची था और कारकूनों का कार्य हिसाब-किताब लिखना था।

(घ) गाँव– शासन की सबसे छोटी इकाई गाँव थी। प्रत्येक गाँव में मुखिया, पंचायतें और पटवारी होते थे, जो स्थानीय प्रशासन की व्यवस्था करते थे। गाँव की अपनी पंचायत होती थी, जो गाँव में सुरक्षा, शिक्षा, सफाई आदि का प्रबन्ध करती थी। शेरशाह ने गाँव की परम्परागत व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया था परन्तु गाँव के इन अधिकारियों को अपने कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता था। अन्यथा इन्हें दण्ड दिया जाता था।

(ii) भू-राजस्व व्यवस्था– राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर अथवा लगान था। इसके अतिरिक्त लावारिस सम्पत्ति, व्यापारिक कर, टकसाल, नमक-कर, अधीनस्थ राजाओं, सरदारों एवं व्यापारियों द्वारा दिए गए उपहार, युद्ध में लूटे गए माल का 1/5 भाग, जजिया इत्यादि आय के साधन थे। शेरशाह किसानों की भलाई में ही राज्य की भलाई मानता था। उसकी लगान-व्यवस्था बहुत अच्छी मानी जाती है, उसकी लगान-व्यवस्था निम्न प्रकार थी—

(क) शेरशाह की लगान-व्यवस्था मुख्यतया रैयतवाड़ी थी, जिसमें किसानों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित किया जाता था। इस कार्य में शेरशाह को पूर्ण सफलता नहीं मिली और जागीरदारी प्रथा भी चलती रही। मालवा और राजस्थान में यह व्यवस्था लागू नहीं की जा सकी।

(ख) उत्पादन के आधार पर ही भूमि को तीन श्रेणियों में बाँटा गया था— उत्तम, मध्यम और निम्न।

(ग) खेती योग्य सभी भूमि की नाप की जाती थी और पता लगाया जाता था कि किस किसान के पास कितनी और किस श्रेणी की भूमि है। उस आधार पर पैदावार का औसत निकाला जाता था।

(घ) लगान निश्चित करने की उस समय तीन प्रणालियाँ थीं— (अ) गल्ला बक्सी अथवा बँटाई (खेत बँटाई, लँक बँटाई और रास बँटाई), (ब) नश्क या कनकूत तथा (स) नकद अथवा जब्ती। सामान्यत: किसान बँटाई प्रणाली को ही पसन्द करता था।

(ङ) किसानों को सरकार की ओर से 'पट्टे' दिए जाते थे, जिनमें स्पष्ट किया गया होता था कि उस वर्ष उन्हें कितना लगान देना है। किसान 'कबूलियत-पत्र' के द्वारा इन्हें स्वीकार करते थे।

(च) लगान के अलावा किसानों को जमीन की पैमाइश और लगान वसूल करने में संलग्न अधिकारियों के वेतन आदि के लिए सरकार को 'जरीबाना' और 'महासीलाना' नामक कर देने पड़ते थे जो पैदावार का 2.5% से 5% तक होता था। किसान को 2.5% अन्य कर भी देना पड़ता था, जिससे अकाल अथवा बाढ़ की दशा में जनता को सहायता मिलती थी।

(छ) शेरशाह का स्पष्ट आदेश था कि लगान लगाते समय किसानों के साथ सहानुभूति का बर्ताव किया जाए लेकिन लगान वसूल करते समय कोई नरमी न बरती जाए।

(ज) किसानों को यह सुविधा थी कि वे लगान नकद या जिन्स के रूप में दे सकते थे, लकिन सरकार नकद के रूप में लेना ज्यादा पसन्द करती थी।

(झ) शेरशाह यह ध्यान रखता था कि युद्ध के अवसर पर कृषि की कोई हानि न हो और जो हानि हो जाती थी, उसकी पूर्ति कर दी जाती थी।

(iii) केन्द्रीय शासन-प्रबन्ध– सुल्तान— दिल्ली सल्तनत के शासकों की भाँति शेरशाह भी एक निरंकुश शासक था और उसकी शक्ति एवं सत्ता अपरिमित थी। शासन नीति और दीवानी तथा फौजदारी मामलों के संचालन की शक्तियाँ उसी के हाथों में केन्द्रित थीं। उसके मन्त्री स्वयं निर्णय नहीं लेते थे बल्कि केवल उसकी आज्ञा का पालन और उसके द्वारा दिए गए कार्यों की पूर्ति करते थे।

इस कारण शासन की सुविधा की दृष्टि से शेरशाह को सल्तनतकाल की व्यवस्था के आधार पर चार मन्त्री विभाग बनाने पड़े थे। ये निम्नलिखित थे—

(क) दीवाने वजारत– यह लगान और अर्थव्यवस्था का प्रधान था। राज्य की आय और व्यय की देखभाल करना इसका दायित्व था। इसे मन्त्रियों के कार्यों की देखभाल का भी अधिकार था।

(ख) दीवाने-आरिज– यह सेना के संगठन, भर्ती, रसद, शिक्षा और नियन्त्रण की देखभाल करता था, परन्तु यह सेना का सेनापति न था। शेरशाह स्वयं ही सेना का सेनापति था और स्वयं सेना के संगठन और सैनिकों की भर्ती आदि में रुचि रखता था।

(ग) **दीवाने-रसालत–** यह विदेश-मन्त्री की भाँति कार्य करता था। अन्य राज्यों से पत्र-व्यवहार करना और उनसे सम्पर्क रखना इसका दायित्व था। कूटनीतिक पत्र-व्यवहार भी इसे ही सम्भालना होता था।

(घ) **दीवाने-इंशा–** इसका कार्य सुल्तान के आदेशों को लिखना, उनका लेखा रखना, राज्य के विभिन्न भागों में उनकी सूचना पहुँचाना और उनसे पत्र-व्यवहार करना था।

इनके अतिरिक्त दो अन्य मन्त्रालय भी थे, 'दीवाने-काजी' और 'दीवाने-बरीद'। दीवाने-काजी सुल्तान के पश्चात् राज्य के मुख्य न्यायाधीश की भाँति कार्य करता था और दीवाने-बरीद राज्य की गुप्तचर व्यवस्था और डाक-व्यवस्था की देखभाल करता था। इसके अतिरिक्त बादशाह के महलों तथा नौकर-चाकरों की व्यवस्था के लिए एक अलग अधिकारी होता था।

(iv) **सड़कें और सरायें–** शेरशाह ने अपने समय में कई सड़कों का निर्माण कराया और पुरानी सड़कों की मरम्मत कराईं। शेरशाह ने मुख्यतया चार प्राचीन सड़कों की मरम्मत और निर्माण कराया। ये सड़कें निम्नलिखित थीं—

(क) एक सड़क बंगाल के सोनारगाँव, आगरा, दिल्ली, लाहौर होती हुई पंजाब में अटक तक जाती थी अर्थात् (ग्रांड ट्रंक रोड), जिसे 'सड़के-आजम' के नाम से पुकारा जाता था।

(ख) दूसरी, आगरा से बुरहानपुर तक।

(ग) तीसरी, आगरा से जोधपुर और चित्तौड़ तक और

(घ) चौथी, लाहौर से मुल्तान तक जाती थी।

शेरशाह ने इन सड़कों के दोनों ओर छायादार और फलों के वृक्ष लगवाए थे। उसने इन सभी सड़कों पर प्राय: दो-दो कोस की दूरी पर सरायें बनवाई थीं। उसने अपने समय में करीब 1,700 सरायों का निर्माण कराया। इन सभी सरायों में हिन्दू और मुसलमानों के ठहरने के लिए अलग-अलग प्रबन्ध था। व्यापारी, यात्री, डाक-कर्मचारी आदि सभी यहाँ संरक्षण और भोजन प्राप्त करते थे।

(v) **मुद्रा व्यवस्था–** शेरशाह ने पुराने और घिसे हुए, पूर्व शासकों के प्रचलित सिक्के बन्द करके उनके स्थान पर सोने, चाँदी और ताँबे के नये सिक्के चलाए और उनका अनुपात निश्चित किया। उसके चाँदी के रुपए का वजन 180 ग्रेन था, जिसमें 175 ग्रेन शुद्ध चाँदी होती थी। सोने के सिक्के 166.4 ग्रेन और 168.5 ग्रेन के ढाले गए थे। ताँबे का सिक्का दाम कहलाता था। सिक्कों पर शेरशाह का नाम, उसकी पदवी और टकसाल का स्थान अरबी या देवनागरी लिपि में अंकित रहता था। शेरशाह के रुपए के बारे में इतिहासकार **स्मिथ** ने लिखा है "यह रुपया वर्तमान ब्रिटिश मुद्रा-प्रणाली का आधार है।"

(vi) **पुलिस प्रशासन–** शेरशाह के शासनकाल में सेना ही पुलिस का कार्य करती थी। इस विषय में शेरशाह ने स्थानीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य किया था। जिस क्षेत्र में जो अधिकारी था, उसी का उत्तरदायित्व उस क्षेत्र में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित रखना था। विभिन्न सैनिक अपने-अपने क्षेत्रों में शान्ति स्थापित करते थे, चोरों एवं लुटेरों को पकड़ते थे तथा जनसाधारण के जीवन और सम्मान की रक्षा करते थे।

(vii) **व्यापार-वाणिज्य–** शेरशाह ने स्थान-स्थान पर दिए जाने वाले करों को समाप्त कर दिया। उसने केवल 'आयात कर' और 'बिक्री कर' लेने के आदेश दिए थे। उसके सभी अधिकारियों को यह भी आदेश था कि व्यापारियों की सुरक्षा की जाए और उनके साथ सद्व्यवहार किया जाए।

(viii) **न्याय व्यवस्था–** शेरशाह स्वयं राज्य का बड़ा न्यायाधीश था और प्रत्येक बुधवार की शाम को स्वयं न्याय के लिए बैठता था। वह न्यायप्रिय शासक था। शेरशाह कहा करता था कि "न्याय करना सभी धार्मिक क्रियाओं में सर्वोत्तम है। इस बात को मुसलमान और काफिर दोनों के बादशाह मानते हैं।" उसने अत्याचारियों का कभी पक्ष नहीं लिया, चाहे वे उसके रिश्तेदार हों, प्रिय पुत्र हों या उसके प्रमुख सरदार हों। अपराध की गम्भीरता के अनुसार कैद, कोड़े, हाथ-पैर काटना, जुर्माना, फाँसी आदि दण्ड दिए जाते थे। शेरशाह के न्याय का आदर्श था— इंसान से इंसान का बर्ताव। शेरशाह के नीचे काजी होता था, जो न्याय विभाग का प्रमुख होता था। प्रत्येक सरकार में मुख्य शिकदार फौजदारी मुकदमे तथा मुख्य मुन्सिफ दीवानी मुकदमों की सुनवाई करते थे। परगनों में यह कार्य अमीन करते थे।

(ix) **शेरशाह की इमारतें–** इमारतें बनवाने का शेरशाह को बहुत शौक था। उसने अपनी उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा के लिए 'रोहतासगढ़' नाम का एक दुर्ग बनवाया। दिल्ली का पुराना किला शेरशाह का बनवाया हुआ ही माना जाता है। इसी किले में उसने एक ऊँची मस्जिद का निर्माण करवाया, जो भारतीय और इस्लामी कला का मिला-जुला एक अच्छा उदाहरण है। परन्तु शेरशाह की सर्वश्रेष्ठ कृति सासाराम (बिहार) में स्थित उसका स्वयं का मकबरा है। सहसराम (सासाराम) में झील के बीचोंबीच एक चबूतरे पर बना हुआ शेरशाह का यह मकबरा नि:सन्देह भारत की श्रेष्ठतम इमारतों में से एक है।

(x) **गुप्तचर और सूचना विभाग–** शेरशाह का गुप्तचर और सूचना विभाग बहुत श्रेष्ठ था। प्रजा की रक्षा के लिए वह अपने अमीरों की प्रत्येक टुकड़ी के साथ विश्वासपात्र गुप्तचर भेजता था। प्रत्येक नगर और राज्य के दूर-दूर भागों में भी गुप्तचर एवं समाचार भेजने वालों की नियुक्ति की गई थी। यह विभाग ऐसी कुशलता से कार्य करता था कि उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों को घटना का पता लगने से पहले ही शेरशाह को उसका पता चल जाता था। शेरशाह अपने गुप्तचरों और तेज चलने

वाले सन्देशवाहकों के माध्यम से अपने सम्पूर्ण राज्य के शासन पर नियन्त्रण रखता था और यह काफी हद तक उनकी शासन-व्यवस्था की सफलता का आधार था।

(xi) **शेरशाह का सैनिक-प्रबन्ध–** शेरशाह ने एक शक्तिशाली सेना का गठन किया था। अलाउद्दीन की भाँति उसने केन्द्र पर एक शक्तिशाली सेना रखी, जो सुल्तान की सेना थी। केन्द्र की सेना में 1,50,000 घुड़सवार, 25,000 पैदल और 5,000 हाथी थे। उसकी घुड़सवार सेना में मुख्यतया अफगान थे। बाकी अन्य वर्गों के मुसलमान और हिन्दू भी उसकी सेना में थे। सैनिकों को वेतन नकद दिया जाता था यद्यपि सरदारों को जागीरें दी जाती थी। बेईमानी रोकने के लिए उसने घोड़ों को दागने और सैनिकों का हुलिया लिखे जाने की प्रथाओं को अपनाया। शेरशाह के पास एक अच्छा तोपखाना भी था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शेरशाह ने कम समय में एक अच्छी व्यवस्था की स्थापना की। जो इतिहासकार बाबर की प्रशासकीय अयोग्यता को समय की कमी कहकर माफ कर देते हैं, शेरशाह उनके लिए एक श्रेष्ठ उदाहरण है। इस प्रकार शेरशाह ने अकबर के कार्य को भी सरल कर दिया क्योंकि अपने थोड़े समय में ही शेरशाह ने एक श्रेष्ठ शासन की पृष्ठभूमि का निर्माण किया, जिससे अकबर के लिए एक स्पष्ट रास्ता बन गया।

3. शेरशाह के प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख कीजिए। वह भारत का शासक कैसे बना?

उ०– शेरशाह का जन्म सासाराम शहर में हुआ था, जो अब बिहार के रोहतास जिले में है। शेरशाह सूरी के बचपन का नाम फरीद था उसे शेर खाँ के नाम से जाना जाता था क्योंकि उन्होंने कथित तौर पर कम उम्र में अकेले ही एक शेर को मारा था। उनका कुलनाम 'सूरी' उनके गृहनगर 'सुर' से लिया गया था। कन्नौज युद्ध में विजय के बाद शेर खाँ ने आगरा पर अधिकार किया ओर तभी से वह शेरशाह सूरी के नाम से भारत का सम्राट बना। शेरशाह सूरी के दादा इब्राहीम खान सूरी नारनौल क्षेत्र में एक जागीरदार थे, जो उस समय के दिल्ली के शासकों का प्रतिनिधित्व करते थे। उनके पिता हसन पंजाब में एक अफगान रईस जमाल खान की सेवा में थे। शेरशाह के पिता की चार पत्नियाँ और आठ बच्चे थे। हसन अपनी चौथी पत्नी से अधिक प्रभावित था। शेरशाह को बचपन के दिनों में उसकी सौतेली माँ बहुत सताती थी, जिससे अप्रसन्न होकर उन्होंने घर छोड़ दिया और जौनपुर आकर अपनी पढ़ाई की। पढ़ाई पूरी कर शेरशाह 1522 ई० में जमाल खान की सेवा में चले गए, पर उनकी विमाता को यह पसंद नहीं आया। इसलिए उन्होंने जमाल खान की सेवा छोड़ दी और बिहार के स्वघोषित स्वतन्त्र शासक बहार खान लोहानी के दरबार में चले गए। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त उनकी जागीर का उत्तराधिकारी बनकर वे पुन: सासाराम वापस आ गए। परन्तु अपने सौतेले भाई के षड्यन्त्र के कारण उन्हें अपनी जागीर पुन: त्यागनी पड़ी।

शेर खाँ ने पहले बाबर के लिए एक सैनिक के रूप में काम किया था तथा पूर्व में उसने अफगानों के विरुद्ध बाबर की सहायता भी की थी, जिस कारण से अफगान शेर खाँ से अप्रसन्न हो गए थे। किन्तु इसी समय बहार खाँ की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र जलाल खाँ अभी अल्पव्यस्क था। जलाल खाँ की माता ने शेर खाँ को जलाल खाँ का संरक्षक नियुक्त कर दिया।

(i) **जलाल खाँ के विरुद्ध विजय–** शेर खाँ ने बिहार की इतनी अच्छी व्यवस्था की कि वहाँ की दरिद्र जनता पूर्ण रूप से शेर खाँ की समर्थक बन गई थी, परन्तु उसकी इस प्रसिद्धि से चिढ़कर कुछ सरदारों ने युवक जलाल खाँ के कान शेर खाँ के विरुद्ध भरने आरम्भ कर दिए, अत: जलाल खाँ ने शेर खाँ से सत्ता वापस लेने का निश्चय किया, परन्तु शेर खाँ वास्तविक शासक था और उसको सरलतापूर्वक दबाया नहीं जा सकता था। जलाल खाँ ने शेर खाँ से बिहार का राज्य प्राप्त करने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया, परन्तु सूरजगढ़ के युद्ध (1534 ई०) में शेर खाँ ने जलाल खाँ को पराजित करके बिहार को पूर्णतया अपने अधिकार में ले लिया।

(ii) **बंगाल पर आक्रमण–** सूरजगढ़ की विजय से उत्साहित होकर शेर खाँ ने 1535 ई० में बंगाल के सुल्तान महमूद खाँ पर आक्रमण कर दिया। इस बार महमूद खाँ ने शेर खाँ को धन देकर अपनी प्राण रक्षा की। परन्तु दो वर्ष के उपरान्त 1537 ई० में शेर खाँ ने पुन: बंगाल की राजधानी गौड़ पर घेरा डाल दिया तथा गौड़ पर विजय प्राप्त कर उसने सुल्तान महमूद को हुमायूँ की शरण में जाने के लिए बाध्य कर दिया।

(iii) **रोहतास के दुर्ग पर अधिकार–** गौड़ को अधिकार में लेने के उपरान्त शेर खाँ ने रोहतास दुर्ग पर अधिकार किया। रोहतास दुर्ग उसने विश्वासघात के द्वारा प्राप्त किया। रोहतास दुर्ग के शासक हिन्दू राजा के साथ शेर खाँ के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे, परन्तु रोहतास का राजनीतिक महत्व होने के कारण शेर खाँ उस पर अधिकार करना चाहता था। जब हुमायूँ ने गौड़ का घेरा डाला तब शेर खाँ ने राजा से रोहतास का दुर्ग उधार देने की प्रार्थना की। राजा ने शेर खाँ की शक्ति से भयभीत होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। शेर खाँ ने दुर्ग में पहुँचकर किले के सरंक्षकों की हत्या करवा दी और सम्पूर्ण राजकोष पर अधिकार कर लिया

(iv) **हुमायूँ के साथ संघर्ष–** शेर खाँ तथा हुमायूँ का संघर्ष 1531 ई० से प्रारम्भ हुआ। 1531 ई० में दक्षिण बिहार पर शेर खाँ ने अधिकार करके सुप्रसिद्ध दुर्ग चुनार पर भी अधिकार कर लिया। जब हुमायूँ को यह सूचना मिली तो उसने शेर खाँ से चुनार त्यागने को कहा। लेकिन शेर खाँ ने चुनार दुर्ग का परित्याग नहीं किया, अत: अवज्ञा के कारण उसे दण्ड देने के लिए हुमायूँ स्वयं सेना लेकर बिहार पहुँचा। शेर खाँ ने खुशामद के द्वारा हुमायूँ को राजी कर लिया और हुमायूँ ने चुनार उसी को सौंप दिया। ऐसा करने का कारण यह था कि हुमायूँ इस समय बहादुरशाह के साथ संघर्ष में संलग्न था। जब शेर खाँ ने सूरजगढ़ के युद्ध के द्वारा बिहार को पूर्णतया जीत लिया तथा 1537 ई० तक बंगाल पर भी उसका अधिकार हो गया तब

हुमायूँ को उससे संघर्ष करना अनिवार्य हो गया। हुमायूँ ने चुनार पर घेरा डालकर उसे जीत लिया, किन्तु इसी बीच शेर खाँ ने गौड़ तथा रोहतास के दुर्गों को अपने अधिकार में ले लिया तथा वह दुर्ग में सुरक्षित पहुँच गया।

(v) **चौसा और कन्नौज के युद्धों में विजय–** अन्त में चौसा के युद्ध (1539 ई०) में शेर खाँ ने हुमायूँ को तोपखाने का प्रयोग करने का अवसर दिए बिना ही रणक्षेत्र से भागने को विवश कर दिया। चौसा का युद्ध शेर खाँ की शक्ति तथा प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए पर्याप्त था। इस युद्ध में विजय प्राप्त करके उसने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की तथा अगले वर्ष 1540 ई० में कन्नौज के युद्ध में हुमायूँ को पराजित कर उसे भारत से बाहर खदेड़ दिया।

(vi) **सूर वंश की स्थापना–** 1540 ई० में हुमायूँ को देश निकाला देकर शेरशाह भारत का सम्राट बन गया और भारत में मुगल वंश के स्थान पर उसने सूर वंश की स्थापना की।

4. शेरशाह के चरित्र और उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए तथा सूर-साम्राज्य के पतन के जिम्मेदार महत्वपूर्ण कारणों का भी उल्लेख कीजिए।

उ०– शेरशाह को भारत के इतिहास में उच्चतम सम्राटों में स्थान दिया जाता है और चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त तथा अकबर महान् के साथ उसकी तुलना की जाती है। शेरशाह के चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **उदारता एवं दयालुता–** शेरशाह एक प्रजावत्सल सम्राट था। वह प्रजा के साथ उदारता एवं दयालुतापूर्ण व्यवहार करता था। वह दण्ड देने में यद्यपि कठोर एवं अनुदार था, किन्तु उस युग में कठोरता के बिना अपराध समाप्त नहीं किए जा सकते थे। अपनी दरिद्र जनता के लिए उसका व्यवहार बड़ा ही दयापूर्ण था। कृषकों के प्रति वह अत्यन्त उदार था तथा उसके राज्य में प्रतिदिन भिखारियों को दान दिया जाता था।

(ii) **धार्मिक सहिष्णुता–** शेरशाह प्रथम मुस्लिम सम्राट था, जिसमें उच्चकोटि की धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी। यद्यपि वह प्रतिदिन कुरान की आयतों का पाठ करता था तथा नमाज अदा करता था, तथापि उसने भारत में हिन्दुओं व मुसलमानों के साथ समानता का व्यवहार किया और उच्च पदों पर हिन्दुओं को भी आसीन किया तथा उनके बच्चों के पढ़ने की व्यवस्था की और एक सीमा तक उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की। इस दृष्टिकोण से हम उसे अकबर महान् का अग्रज मान सकते हैं।

(iii) **कर्त्तव्यपरायण–** शेरशाह कर्त्तव्यपरायण सुल्तान था। वह अपने कर्त्तव्यों को भली-भाँति जानता था तथा समुचित रूप से उनका पालन भी करता था। बाल्यकाल से ही उसमें यह गुण विद्यमान था। सुल्तान बनने के उपरान्त भी वह अपने कर्त्तव्यों के प्रति हमेशा सजग रहता था। वह दिन में 16 घण्टे कठोर परिश्रम करता था तथा अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहता था।

(iv) **कठोर परिश्रमी–** शेरशाह कठोर परिश्रमी था। वह दिन-रात परिश्रम करता था। इसी कारण वह अपने विलासी शत्रु हुमायूँ को पराजित कर सका। जिस समय को हुमायूँ ने उत्सव और विलासिता में व्यतीत किया, उसी समय का सदुपयोग करके शेरशाह अपनी शक्ति बढ़ाने में सफल हुआ। वह छोटे-से-छोटे राज-काज की स्वयं देखभाल करता था। शासन के समस्त विभागों पर नियन्त्रण रखता था। इसी कारण वह अपने राज्य में सुव्यवस्था बनाए रखने में सफल रहा।

(v) **विद्यानुरागी–** शेरशाह को अधिक समय विद्याध्ययन के लिए नहीं मिल सका था तथापि उसे अध्ययन का बड़ा शौक था। जौनपुर में रहकर उसने स्वयं अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया तथा अनेक ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पुस्तकों के विषय में उसे पर्याप्त ज्ञान था। सुल्तान बनने के उपरान्त उसने विद्या प्रसार के लिए अनेक पाठशालाएँ एवं मकतब निर्मित करवाए। उसके दरबार में अनेक विद्वानों को भी आश्रय प्राप्त था।

(vi) **कुशल सेनापति एवं कूटनीतिज्ञ–** वह एक कुशल सेनापति था। हुमायूँ के साथ लड़े गए युद्धों में हमें उसके उच्चकोटि के सेनापति होने के गुण दृष्टिगोचर होते हैं। अपनी कूटनीति के कारण चौसा के युद्ध में कौशल प्रदर्शित किए बिना ही वह विजयी बना। बंगाल एवं बिहार के युद्धों में भी उसने अपने रण-कौशल का परिचय दिया। दिल्ली का सुल्तान बनने के उपरान्त भी वह निरन्तर युद्धों में संलग्न रहा तथा अनेक छोटे-छोटे राज्यों पर उसने विजय प्राप्त की। युद्ध में वह छल एवं बल दोनों का उचित प्रयोग जानता था। चुनार, रोहतास तथा रायसीन पर उसने कूटनीति द्वारा ही विजय प्राप्त की थी।

(vii) **न्यायप्रिय–** शेरशाह न्यायप्रिय सुल्तान था। उसके राज्य में न्याय की समुचित व्यवस्था थी। न्याय के सम्मुख वह सबको समान समझता था तथा अपने पुत्र तक को साधारण व्यक्ति के समान दण्ड देता था। वह कठोर दण्ड में विश्वास करता था, जिससे अपराध सदा के लिए समाप्त हो जाएँ।

सूर साम्राज्य के पतन के कारण– भारत में दिल्ली पर प्रथम अफगान सत्ता को लोदी वंश ने स्थापित किया था, किन्तु बाबर ने 1526 ई० में इब्राहीम लोदी को परास्त करके दिल्ली में मुगल वंश की स्थापना की। शेरशाह सूरी ने 1540 ई० में बाबर के उत्तराधिकारी बादशाह हुमायूँ को दो युद्धों में परास्त करके दिल्ली में पुन: द्वितीय अफगान सत्ता स्थापित की। परन्तु अफगानों का यह द्वितीय साम्राज्य लगभग 15 वर्षों तक ही रहा। 1555 ई० में हुमायूँ ने क्रमश: 'मच्छीवाड़ा' और 'सरहिन्द' के युद्धों को जीतकर द्वितीय अफगान सत्ता को समाप्त कर दिया। इस प्रकार द्वितीय अफगान (सूर) साम्राज्य के पतन के निम्नलिखित कारण हैं—

(i) **इस्लामशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी–** इस्लामशाह का उत्तराधिकारी उसका अल्पायु पुत्र फीरोज था, जिसको तीन दिन पश्चात् ही उसके मामा मुबारिज खाँ ने मरवा डाला और आदिलशाह के नाम से स्वयं सुल्तान बन गया। परन्तु वह अयोग्य सिद्ध हुआ। इसी प्रकार इब्राहीम शाह और सिकन्दरशाह भी अयोग्य सिद्ध हुए। इनमें से कोई भी सूर साम्राज्य के विघटन को रोकने में सफल नहीं हुआ और सूर साम्राज्य खण्डित हो गया।

(ii) अफगानों की स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति– सूर साम्राज्य की असफलता का मूल कारण अफगानों का एक केन्द्रीय शासन-व्यवस्था को स्वीकार न करना था। अफगान आवश्यकता से अधिक अपने अधिकारों की स्वतन्त्रता पर बल देते थे, जिसके कारण वे एक सुल्तान के शासन के अधीन रहना पसन्द नहीं करते थे। इस कारण सुल्तान के दुर्बल या अयोग्य होते ही उनकी स्वतन्त्रता की महत्वाकाँक्षाएँ सम्मुख आ जाती थीं और वे पारस्परिक संघर्ष में फँस जाते थे। इससे साम्राज्य की एकता को क्षति पहुँचती थी, जो किसी भी साम्राज्य के पतन के लिए जिम्मेदार होती हैं।

(iii) प्रशासकीय कठिनाइयाँ– शेरशाह ने अपने शासनकाल में ही अपने विशाल साम्राज्य में श्रेष्ठ शासन-व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त की थी। किन्तु उसकी और उसके उत्तराधिकारी इस्लामशाह की मृत्यु के पश्चात् अफगानों में सिंहासन को प्राप्त करने के लिए पारस्परिक संघर्ष आरम्भ हुआ, जिससे यह व्यवस्था नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त आर्थिक कठिनाइयाँ भी उत्पन्न हो गई थीं। अफगान साम्राज्य के विभाजित हो जाने के कारण दिल्ली के शासक सिकन्दर लोदी के पास पर्याप्त सैनिक साधन भी उलपब्ध नहीं हो सके। फलत: मुगल सेना अफगान सेना से श्रेष्ठ सिद्ध हुई तथा हुमायूँ ने सिकन्दर लोदी को सरलता से परास्त करके दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

(iv) इस्लामशाह का उत्तरदायित्व– इस्लामशाह नि:सन्देह शेरशाह का योग्य उत्तराधिकारी था, परन्तु उसी के शासनकाल में अफगानों में आपस में तीव्र विभाजन हो गया। वह अपने सरदारों के प्रति शंकालु हो गया था और उसने अपने कई सरदारों को मरवा भी दिया। इसी कारण उसके विरुद्ध विद्रोह हो गया। वह विद्रोह को दबाने में तो सफल रहा किन्तु अफगान सरदारों की वफादारी पाने में असफल रहा। उसकी मृत्यु होते ही अफगान सरदारों की व्यक्तिगत महत्वाकाँक्षाएँ और स्वतन्त्र प्रवृत्ति स्पष्ट रूप में सामने आ गई, जिनकी परिणति सूर साम्राज्य के पतन के रूप में हुई।

5. शेरशाह एक कुशल विजेता एवं प्रशासक था। प्रस्तुत कथन के आलोक में उसकी उपलब्धियों की समीक्षा कीजिए।

उ०– कुशल विजेता एवं प्रशासक के रूप में शेरशाह की उपलब्धियाँ निम्नलिखित थीं—

(i) गक्खर प्रदेश की विजय (1541 ई०)– शेरशाह का उद्देश्य बोलन दर्रे और पेशावर से आने वाले मार्गों को मुगलों के आक्रमण से सुरक्षित करना था। अत: झेलम और सिन्धु नदी के उत्तर में स्थित गक्खर प्रदेश पर अधिकार करना आवश्यक था क्योंकि इसकी स्थिति बड़ी ही महत्वपूर्ण थी। शेरशाह ने गक्खर सरदारों पर चढ़ाई की और उनके प्रदेश को बुरी तरह रौंद डाला, परन्तु उनकी शक्ति को समाप्त न कर सका। अनेक गक्खर सरदार इसके बाद भी शेरशाह का विरोध करते रहे। शेरशाह ने वहाँ रोहतासगढ़ नामक एक विशाल दुर्ग बनाया, जिससे उत्तरी सीमा की रक्षा और गक्खरों की रोकथाम कर सके। शेरशाह ने वहाँ हैबत खाँ और खवास खाँ के नेतृत्व में 50,000 अफगान सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना तैनात की।

(ii) बंगाल का विद्रोह और नई व्यवस्था (1541 ई०)– शेरशाह की एक वर्ष से अधिक की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर बंगाल का गवर्नर खिज्र खाँ स्वतन्त्र शासक बनने के स्वप्न देखने लगा। उसने बंगाल के मृत सुल्तान महमूद की लड़की से शादी कर ली और एक स्वतन्त्र शासक की तरह व्यवहार करने लगा। शेरशाह शीघ्रता से बंगाल आया और गौड़ पहुँचकर उसने खिज्र खाँ को कैद कर लिया। बंगाल जैसे दूरस्थ और धनवान सूबे में विद्रोह की आशंकाओं को समाप्त करने के लिए शेरशाह ने वहाँ एक अन्य प्रकार की शासन-व्यवस्था स्थापित की। उसने बंगाल को सरकारों (जिलों) में बाँटकर उनमें से प्रत्येक को एक छोटी सेना के साथ शिकदारों के नियन्त्रण में दे दिया। इन शिकदारों की नियुक्ति बादशाह ही करता था। इन शिकदारों की देखभाल के लिए फजीलत नामक व्यक्ति को प्रान्त के प्रमुख के रूप में नियुक्त किया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत बंगाल में किसी भी अधिकारी के पास एक बड़ी सेना न रही, जिससे उनमें से कोई भी विद्रोह की स्थिति में न रहा।

(iii) मालवा की विजय (1542 ई०)– बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् मालवा के सूबेदार मल्लू खाँ ने 1537 ई० में स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया और मालवा पर अधिकार करके कादिरशाह की उपाधि प्राप्त की। सारंगपुर, माण्डू, उज्जैन और रणथम्भौर के मजबूत किले उसके अधिकार में थे। उसने शेरशाह के आधिपत्य को मानने से इन्कार कर दिया। शेरशाह ने अपने राज्य की सुरक्षा और एकता के लिए मालवा पर आक्रमण कर दिया। 1542 ई० में कादिरशाह ने डरकर सारंगपुर में आत्मसमर्पण कर दिया। शेरशाह ने मालवा पर अधिकार करके शुजात खाँ को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया और कादिरशाह को लखनौती व कालपी की जागीरें दीं। परन्तु कादिरशाह अपनी जान बचाकर गुजरात भाग गया। वापस आते समय शेरशाह ने रणथम्भौर पर आक्रमण कर उसे अपनी अधीनता में ले लिया। अत: ग्वालियर, माण्डू, उज्जैन, सारंगपुर, रणथम्भौर आदि शेरशाह के अधिकार में आ गए।

(iv) रायसीन की विजय (1543 ई०)– 1542 ई० में रायसीन के शासक पूरनमल ने शेरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी किन्तु शेरशाह को सूचना मिली कि पूरनमल मुस्लिम लोगों से अच्छा व्यवहार नहीं करता। अत: 1543 ई० में शेरशाह ने रायसीन को घेरे में ले लिया। कई माह तक रायसीन के किले का घेरा पड़ा रहा परन्तु शेरशाह को सफलता न मिली। अन्त में शेरशाह ने चालाकी से काम लिया। उसने कुरान पर हाथ रखकर शपथ ली कि यदि किला उसे सौंप दिया जाए तो वह पूरनमल, उसके आत्मसम्मान एवं जीवन को हानि नहीं पहुँचाएगा। इस पर पूरनमल ने आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु मुस्लिम जनता के आग्रह पर शेरशाह ने राजपूतों के खेमों को चारों ओर से घेर लिया। राजपूत जी-जान से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। अनेक राजपूत स्त्रियों ने जौहर (आत्मदाह) कर लिया किन्तु दुर्भाग्य से थोड़ी-सी राजपूत स्त्रियाँ और बच्चे जीवित रह गए, उन्हें गुलाम बना लिया गया। **डा० ए०एल० श्रीवास्तव** के अनुसार— पूरनमल के साथ शेरशाह का यह विश्वासघात उसके नाम पर बहुत बड़ा कलंक है।

(v) **मुल्तान व सिन्ध विजय (1543 ई०)–** शेरशाह ने खवास खाँ को पंजाब से वापस बुलाकर वहाँ हैबत खाँ को सूबेदार के रूप में नियुक्त किया। हैबत खाँ ने फतह खाँ जाट को परास्त कर मुल्तान पर अधिकार कर लिया। शेरशाह ने हुमायूँ का पीछा करने के दौरान (1541ई०) ही सिन्ध पर अधिकार कर लिया था। इस प्रकार उत्तर-पश्चिम में शेरशाह के राज्य के अन्तर्गत पंजाब प्रान्त के अतिरिक्त मुल्तान और सिन्ध भी सम्मिलित हो गए।

(vi) **मारवाड़ विजय (नवम्बर (1543 से मई 1544 ई०)–** मारवाड़ का शासक इस समय राजा मालदेव था। ईर्ष्यावश कुछ राजपूतों ने शेरशाह को मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भड़काया तथा इस युद्ध में उसकी सहायता करने का भी वचन दिया। शेरशाह ने तुरंत ही एक सेना लेकर मारवाड़ की ओर कूच किया तथा 1544 ई० में मारवाड़ की राजधानी जोधपुर को घेर लिया। दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ, किन्तु मालदेव के वीर सैनिकों के सम्मुख शेरशाह की एक न चली।
अन्त में बल से विजय प्राप्त करने में असमर्थ शेरशाह ने छल-कपट का आश्रय लिया। शेरशाह अन्त में विजयी रहा। लेकिन इस युद्ध के बाद शेरशाह को यह कहना पड़ा कि मैंने केवल दो मुट्ठी बाजरे के लिए अपना सम्पूर्ण साम्राज्य ही दाँव पर लगा दिया था।

(vii) **मेवाड़ विजय (1544 ई०)–** मेवाड़ के वीर सम्राट राणा साँगा इस समय मर चुके थे और उनके अल्पव्यस्क पुत्र उदयसिहं मेवाड़ के राजा थे, जिनकी अल्पायु से लाभ उठाकर बनबीर मेवाड़ का सर्वेसर्वा बन बैठा था। ऐसे समय में शेरशाह ने मेवाड़ पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

(viii) **कालिंजर विजय (1545 ई०)–** शेरशाह की अन्तिम विजय कालिंजर पर हुई। कालिंजर का दुर्ग बड़ा सुदृढ़ एवं अभेद्य माना जाता है। नवम्बर 1544 ई० में उसने दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल दिया, लेकिन एक वर्ष तक घेरा डाले रखने पर भी शेरशाह उस पर अधिकार न कर सका। तब उसने दुर्ग की दीवारों को गोला-बारूद से उड़ाने का निश्चय किया तथा दुर्ग के चारों ओर मिट्टी एवं बालू के ऊँचे-ऊँचे ढेर लगवा दिए। जब ढेर दुर्ग की दीवारों से भी ऊँचे हो गए तब शेरशाह सूरी की आज्ञानुसार 22 मई, 1545 ई० को अफगान सैनिकों ने इन पर चढ़कर दुर्ग में स्थित राजपूतों का संहार करना आरम्भ कर दिया। इसी समय शेरशाह नीचे से तोपखाने का निरीक्षण कर रहा था, तभी एक गोला फटने से उसे बहुत चोट आई; तथापि उसने आक्रमण को निरन्तर जारी रखने की आज्ञा दी तथा शाम तक दुर्ग पर उसका अधिकार हो गया।

(ix) **साम्राज्य का विस्तार–** शेरशाह ने अपनी मृत्यु के समय तक असोम, कश्मीर और गुजरात को छोड़कर उत्तर-भारत के प्राय: सम्पूर्ण भू-प्रदेश पर अपनी सत्ता को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। शेरशाह एक विस्तृत साम्राज्य के संस्थापक के अतिरिक्त एक महान शासन-प्रबन्धक भी था, जिसके कारण उसकी गिनती मध्य युग के श्रेष्ठ शासकों में होती है।

6. शेरशाह की शासन-व्यवस्था की रूप रेखा प्रस्तुत कीजिए। उसे अकबर का पथ-प्रदर्शक क्यों कहा गया?

उ०– शेरशाह की शासन-व्यवस्था– शेरशाह की शासन-व्यवस्था के लिए विस्तृत उत्तरी प्रश्न संख्या— 2 का अवलोकन कीजिए।

शेरशाह अकबर का पथ-प्रदर्शक– एक शासन-व्यवस्था की दृष्टि से शेरशाह को अकबर का अग्रणी (पथ-प्रदर्शक) माना गया है। शेरशाह के सैनिक प्रबन्ध, सरदारों पर उसके नियन्त्रण, उसकी न्याय की भावना, उसकी प्रजा के हित की भावना और शासन के मूल सिद्धान्त आदि सभी का अकबर ने पूर्ण लाभ उठाया। शेरशाह ने राजपूतों से अधीनता स्वीकार कराकर उनके राज्य उन्हें वापस कर दिये थे। अकबर ने इसको और विस्तार से अपनाया। शेरशाह की लगान व्यवस्था भी अकबर के लिए मार्गदर्शक बनी। शेरशाह के किसानों, व्यापारियों और जन-हित के कार्यों को अकबर ने यथावत् रूप से स्वीकार कर लिया। नि:सन्देह शेरशाह ने अकबर के शासन की आधारशिला का निर्माण किया और उसका अग्रणी अथवा पथ-प्रदर्शक बना। **डॉ० आर०पी० त्रिपाठी** ने लिखा है ''यदि शेरशाह अधिक समय तक जीवित रहता तो सम्भवतया वह अकबर से महान् हो जाता। नि:सन्देह, वह दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ सुल्तान-राजनीतिज्ञों में से एक था। निश्चय ही उसने अकबर की महान् उदार नीति के मार्ग का निर्माण किया और वह सही अर्थों में उसका अग्रणी था।''

7. शेरशाह सूरी के शासन-प्रबन्ध की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

उ०– विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 का अवलोकन कीजिए।

इकाई-2

3

अकबर महान
(Akbar : The Great)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 15 अक्टूबर, 1542 ई०
2. 5 नवम्बर, 1556 ई०,
3. 14 फरवरी, 1556 ई०,
4. 25 अक्टूबर, 1605 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 54 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 54 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 55 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 55 व 56 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ क्या थीं?

उ०– अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ निम्नलिखित थीं—

(i) साम्राज्य के प्रतिद्वन्द्वी (ii) मुगलों का विदेशीपन (iii) सम्बन्धियों का विश्वासघात

2. पानीपत के द्वितीय युद्ध के परिणामों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उ०– पानीपत का द्वितीय युद्ध सन् 1556 ई० में अकबर और हेमू के बीच हुआ। इस युद्ध में अकबर की विजय के साथ भारत में मुगलों की स्थिति सुदृढ़ हो गई तथा हिन्दुस्तान की सत्ता पर अफगानों का अधिकार सदैव के लिए समाप्त हो गया। विजयी सेनाओं ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया गया।

3. अकबर के मृत शरीर को कहाँ दफनाया गया था?

उ०– अकबर के मृत शरीर को आगरा से 5 मील दूर उसी के द्वारा बनवाए गए सिकन्दरा के मकबरे में दफनाया गया।

4. हल्दी घाटी का युद्ध किस-किस के बीच हुआ और इस युद्ध में कौन विजयी हुआ?

उ०– हल्दी घाटी का युद्ध मेवाड़ के शासक और राणा उदयसिंह के पुत्र महाराणा प्रतापसिंह तथा अकबर की सेना के मध्य सन् 1576 ई० में हुआ। इस युद्ध में मुगलों की विजय हुई।

5. अकबर की सुलह-कुल नीति क्या थी? इसका क्या परिणाम हुआ?

उ०– अकबर की सुलह-कुल नीति एक धार्मिक उदार नीति थी। जिसके द्वारा अकबर ने भारत में धर्मों एवं सम्प्रदायों में एकता, समन्वय एवं धार्मिक सहिष्णुता को स्थापित किया। इस नीति से मुगल साम्राज्य स्थायित्व एवं दृढ़ता प्राप्त कर सका।

6. अकबर की दक्षिण नीति के बारे में आप क्या समझते हैं?

उ०– अकबर ने अपने साम्राज्य के विस्तार एवं भारत को राजनीतिक इकाई में परिवर्तित करने के उद्देश्य से दक्षिण भारत के राज्यों से युद्ध करने से पूर्व राजदूतों द्वारा आज्ञा-पत्र भेजकर अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए कहा। खान देश के शासक अली खाँ ने अकबर के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, किन्तु अन्य राज्यों के शासकों ने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

7. अब्दुल फजल द्वारा लिखित दो फारसी ऐतिहासिक ग्रन्थों का उल्लेख कीजिए।

उ०– अब्दुल फजल द्वारा लिखित दो फारसी ऐतिहासिक ग्रन्थ 'अकबरनामा' एवं 'आइन-ए-अकबरी' हैं। इन ग्रंथों में अकबर के राज्यकाल की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन मिलता है। दोनों ग्रंथ अकबर की प्रशंसा से भरे हैं।

8. टोडरमल कौन था और वह क्यों प्रसिद्ध था?

उ०– टोडरमल अकबर का दीवान-ए-अशरफ अर्थात भू-विभाग का अध्यक्ष था। कुछ समय तक वह अकबर का वजीर भी रहा। टोडरमल भूमि सुधार एवं राजस्व प्रबंध में किए गए महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रसिद्ध था।

9. अकबर के 'दीन-ए-इलाही' की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– अकबर के दीन-ए-इलाही की चार प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(i) दीन-ए-इलाही के अनुसार ईश्वर एक है और अकबर उसका सबसे बड़ा पुजारी एवं पैगम्बर है।

(ii) दीन-ए-इलाही के अनुयायियों को अच्छे कार्य करने और सूर्य व अग्नि के प्रति श्रद्धा रखने के आदेश दिए गए थे।

(iii) दीन-ए-इलाही के सदस्य को मांस खाना वर्जित था।

(iv) दीन-ए-इलाही में सब धर्मों के अच्छे सिद्धान्त थे और यह दार्शनिकता, प्रकृति-पूजा और योग का सम्मिश्रण था। इसका आधार विचार पूर्ण था और इसमें कोई कट्टरपन देवी-देवता अथवा धर्मगुरु नहीं थे।

10. अकबर द्वारा निर्मित दो भवनों के बारे में लिखिए।

उ०– अकबर द्वारा निर्मित दो भवन निम्नवत हैं—

आगरा का किला– अकबर ने लाल पत्थरों से आगरा का भव्य किला बनवाया। इस किले में उसने 50 इमारतें बनवाईं जिसमें जहाँगीरी महल सबसे सुन्दर है।

बुलन्द दरवाजा– अकबर ने अपनी नई राजधानी फतेहपुर सीकरी में अनेक भवन बनवाए जिनमें बुलन्द दरवाजा विश्वविख्यात है।

11. पानीपत के द्वितीय युद्ध के महत्व का वर्णन कीजिए।

उ०– पानी के द्वितीय युद्ध के परिणामस्वरूप भारत में मुगलों की स्थिति सुदृढ़ हो गई और मुगल वंश 1887 ई० तक भारत में जमा रहा। भारत की सत्ता पर सूर वंश का अधिकार सदा के लिए समाप्त हो गया। विजयी सेना ने दिल्ली और आगरा पर शीघ्र अधिकार कर लिया।

12. अकबर की धार्मिक नीति स्पष्ट कीजिए।

उ०– अकबर ने धर्म-सहिष्णुता की नीति अपनाई। अकबर की महानता उसकी धार्मिक नीति पर आधारित है। उसने तुर्क-अफगान शासकों की धार्मिक विभेद की नीति के स्थान पर उदार नीति अपनाई तथा सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों में एकता और समन्वय स्थापित किया और धार्मिक विद्वेष, वैमनस्य एवं कटुता को समाप्त कर एक संगठित राष्ट्र के निर्माण में अमूल्य योगदान दिया।

13. ''अकबर एक राष्ट्रीय शासक था।'' विवेचना कीजिए।

उ०– अकबर ने जिन उदार और नवीन सिद्धान्तों को जन्म दिया उनका इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान हैं उसने सम्पूर्ण प्रजा के साथ शासन के सभी क्षेत्रों में समान व्यवहार किया। धर्म, जाति और वंश के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया। अकबर प्रथम मुस्लिम शासक था जिसने हिन्दू-मुसलमानों को निकट लाने का प्रयास किया। दूसरी ओर शासन-प्रणाली, न्याय-व्यवस्था, मालगुजारी बन्दोबस्त, एक राज्य भाषा, एक मुद्रा व्यवस्था की स्थापना की। इस प्रकार अकबर की नीति, भावना एवं प्रयास उसे राष्ट्रीय शासक के निकट पहुँचाते हैं।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. ''मुगल साम्राज्य की स्थापना बाबर ने की, परन्तु उसका विकास एवं सुदृढ़ीकरण अकबर ने किया।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– मुगल साम्राज्य की स्थापना काबुल के शासक एवं अकबर के दादा बाबर ने की। पानीपत तथा खानवा के युद्धों में उसने भारत की दोनों प्रमुख शक्तियों को पराजित करके उनका विनाश करने का प्रयास किया था। किन्तु बाबर द्वारा भारत की विजय केवल एक सैनिक विजय थी; अत: वह स्थायी नहीं हो सकी, इस दृष्टिकोण से बाबर मुगल वंश की स्थापना करने में सर्वथा असफल रहा। वह केवल एक वीर विजेता था, परन्तु शासक के गुणों का उसमें सर्वथा अभाव था। उसने साम्राज्य की विशृंखलता एवं अव्यवस्था को ठीक करने का कोई प्रयास नहीं किया तथा अपने पुत्र हुमायूँ के मार्ग में उसने भयंकर काँटे बो दिए, जिनके कारण हुमायूँ को जीवन भर संघर्ष करना पड़ा। हुमायूँ ने 15 वर्ष के निर्वासन के पश्चात जब भारत पर पुन: अधिकार किया तो कुछ समय बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार अकबर को अव्यवस्थित और नाममात्र का राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था, जिसे अपने चारित्रिक गुणों से उसने विशाल एवं सुदृढ़ बनाया। उसने सम्पूर्ण भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की। जीवन भर कठोर परिश्रम करके अपने उत्तराधिकारियों के लिए उसने जो राज्य छोड़ा, वह इतना दृढ़ तथा शक्तिशाली था कि भयंकर आघात सहन करके भी लगभग 200 वर्षों तक चलता रहा।

मुगल शासकों में ही नहीं सम्पूर्ण मध्ययुग के भारतीय शासकों में अकबर को श्रेष्ठ स्थान किया गया है। मुगल साम्राज्य को भारत में स्थायित्व के साथ संस्थापित करने का श्रेय निश्चय की अकबर को है। उसने राजस्व और शासन में जिन नवीन तत्त्वों एवं उदार सिद्धान्तों का भारतीय परिवेश के साथ समन्वय किया, वह निश्चय ही अतुलनीय है। उससे पूर्व कोई मुसलमान शासक इतने वृहत् स्तर पर ऐसा नहीं कर सका। उसकी सुलह-कुल की नीति ने उसे एक राष्ट्रीय शासक के निकट ला खड़ा किया। अकबर से पहले शेरशाह ने प्रजा की भलाई के लिए कार्य किया था परन्तु शेरशाह को थोड़ा समय मिला। शेरशाह के विपरित अकबर को अपनी नीति और प्रभाव को देखने के लिए एक लम्बा समय प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त, वह निश्चय ही शेरशाह की तुलना में अधिक उदार दृढ़, नीतिज्ञ और विशाल दृष्टिकोण वाला सिद्ध हुआ। उसकी उदार एवं व्यावहारिक नीति के कारण उसके वंशों को भिन्न धर्मावलम्बियों पर शासन करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इसी में अकबर की महानता थी। अकबर की मौलिक योग्यता और सफलताओं की तुलना तत्कालीन यूरोपीय शासकों से करने पर उसकी श्रेष्ठता स्थापित होती है।

अकबर के चरित्र और उसके कार्यों के बारे में मतभेद हो सकते हैं। कुछ उसे राष्ट्रीय शासक, श्रेष्ठ व्यवस्थापक एवं प्रबन्धक मानते हैं तो कुछ उसे ऐसा नहीं मानते हैं। वे अकबर की चन्द गलतियों एवं कतिपय बुराइयों की ओर ध्यान खीचतें है। तथा इस ओर ध्यान देने में असफल रहते हैं कि अकबर ने ही मध्ययुग में सम्पूर्ण प्रजा के साथ शासन के सभी क्षेत्रों में समान व्यवहार अपनाने की प्राचीन भारतीय शासकों के आदर्श का अनुसरण किया। धर्म, जाति एवं वंश के आधार पर इससे अधिक उन्मीद करना बेईमानी होगी। अकबर की शासन-व्यवस्था ऐसी थी जिसमें उसके सभी नागरिक अपने को एक राज्य का नागरिक मान सकते थे और राज्य से समान सुविधाओं और सुरक्षा की आशा कर सकते थे।

2. अकबर की राजपूत नीति की विवेचना कीजिए।

उ०– **अकबर की राजपूत नीति–** अकबर एक दूरदर्शी सम्राट था। उसने शीघ्र समझ लिया कि राजपूतों की सहायता के बिना हिन्दुस्तान में मुस्लिम साम्राज्य स्थायी नहीं रह सकता तथा उनके सक्रिय सहयोग के बिना कोई सामाजिक अथवा राजनैतिक एकता सम्भव नहीं हो सकती। अत: उसने प्रेम, सहानुभूति तथा उदारता से राजपूतों के हृदय को जीतकर उनसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए। इस नीति के परिणामस्वरूप अकबर मुगल साम्राज्य की नींव को सुदृढ़ कर सका।

अकबर की उदार राजपूत नीति अपनाने के कारण– अकबर द्वारा राजपूतों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखने के निम्नलिखित कारण थे—

(i) व्यक्तिगत कारण– राजनीतिक एवं साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के अतिरिक्त अकबर की राजपूत नीति के व्यक्तिगत कारण भी थे। अकबर ने अनुभव किया था कि उसके बड़े-से-बड़े पदाधिकारी अत्यन्त स्वार्थी हैं तथा वे समय पड़ने पर सदा विद्रोह करने को तत्पर रहते हैं। राज्यारोहण के बाद ही उसने देखा कि उसके सम्बन्धी तथा संरक्षक विश्वसनीय नहीं हैं। उसका भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम, उसका संरक्षक बैरम खाँ, उसकी धाय माँ माहम अनगा तथा उसका (माहम अनगा का) पुत्र आधम खाँ सभी शक्ति हस्तगत करने को इच्छुक थे और उन्हें अकबर की कोई चिन्ता न थी। इसी प्रकार भारतीय मुसलमानों पर भी अकबर विश्वास नहीं कर सकता था। अत: एक कुशल एवं दूरदर्शी राजनीतिज्ञ होने के नाते अकबर इस निर्णय पर पहुँचा कि राजपूत ही सबसे अधिक विश्वस्त एवं वीर जाति है, जो एक बार वचनबद्ध होकर कभी धोखा नहीं देती है और उस पर पूरा विश्वास किया जा सकता है। वीरता में भी राजपूत जाति अद्वितीय थी, जिसका उपयोग अकबर अपने हित के लिए कर सकता था। अत: अन्त में उसने राजपूतों एवं मुगलों की शत्रुता का अन्त करने का निश्चय किया, जो कि उसके पिता एवं पितामह के समय से चली आ रही थी।

अकबर का यह विश्वास था कि राजपूतों के सहयोग के बिना न तो कोई सुदृढ़ साम्राज्य भारत में स्थापित किया जा सकता है और न ही उसे स्थायी बनाया जा सकता है; अत: उसने निश्चय किया कि उसका साम्राज्य हिन्दू एवं मुसलमान दोनों जातियों के सहयोग से तथा दोनों के हित पर आधारित होगा। वह चाहता था कि राजपूत तथा हिन्दू मुगलों को विदेशी न समझकर भारतीय समझें। इस कारण उसने प्रमुख राजपूत राज्यों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए, जिससे राजपूतों तथा मुगलों के सम्बन्ध दृढ़ हो जाएँ। राजपूतों तथा हिन्दुओं के लिए उसने उच्च से उच्च पदों के द्वार खोल दिए। योग्यता के अनुसार पदों का वितरण किया गया, धर्म अथवा जाति के आधार पर नहीं। हिन्दुओं की प्रतिष्ठा, सम्पत्ति एवं जीवन की सुरक्षा का भार राज्य ने सँभालने का निश्चय किया तथा हिन्दुओं की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अकबर ने उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता भी प्रदान की। उसके हरम में उसकी हिन्दू रानियों को अपने धर्म का पालन करने की पूरी स्वतन्त्रता थी। अकबर स्वयं भी कभी-कभी तिलक लगाता एवं सूर्य की उपासना करता था। इस प्रकार उसने राजपूतों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करके उनका पूरा सहयोग प्राप्त किया।

(ii) राजनीति तथा साम्राज्यवादी दृष्टिकोण– अकबर एक दूरदर्शी तथा साम्राज्यवादी सम्राट था। वह यह भली प्रकार जानता था कि उसके पूर्व के मुस्लिम सुल्तानों के वंशों का अल्पकालीन होने का एक प्रमुख कारण राजपूतों की शत्रुता थी। वीर राजपूत जाति अभी तक मुसलमानों को अपना शत्रु समझती थी तथा उनको देश के बाहर निकालने के लिए प्रयत्नशील थी। खानवा के युद्ध में **राणा साँगा** के नेतृत्व में राजपूतों ने एक महान् किन्तु असफल प्रयास इसीलिए किया था। अकबर यह भी जानता था कि राजपूत स्वभाव के सच्चे, ईमानदार एवं स्वामिभक्त होते हैं और उनको मित्र बनाकर भारी लाभ प्राप्त किया जा सकता है, अत: एक कुशल कूटनीतिज्ञ की दृष्टि से अकबर ने राजपूतों को मुगलों का मित्र बनाने में अपने तथा अपने वंश का कल्याण समझा। इसी उद्देश्य को लेकर उसने 'राजपूत नीति' को जन्म दिया। किन्तु अकबर की राजपूत नीति का केवल यही एकमात्र कारण नहीं था जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने सिद्ध करने का प्रयास किया है। वास्तव में यदि यही एक कारण रहा होता तो अकबर के पाखण्ड का भण्डाफोड़ उसके जीवनकाल में कभी-न-कभी अवश्य हो गया होता और राजपूतों के सहयोग को प्राप्त करने में वह असफल रहता। अकबर यह जानता था कि बलबन, अलाउद्दीन खिलजी तथा मुहम्मद तुगलक जैसे वीर एवं योग्य सुल्तान भी भारत में स्थायी राज्य स्थापित नहीं कर सके थे। इसका प्रमुख कारण राजपूत थे, जिनके साथ सुल्तानों का व्यवहार हमेशा शत्रुतापूर्ण रहा था। अत: यदि इन राजपूतों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया जाए तो इनकी शक्ति का उपयोग मुगल साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिए किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से अकबर ने राजपूतों के प्रति सहृदयता एवं मैत्रीपूर्ण व्यवहार का नीति को जन्म दिया।

राजपूत नीति सम्बन्धी कार्य– अकबर ने राजपूतों से निकट का सम्बन्ध स्थापित करने तथा उन्हें प्रेमपूर्वक तथा सद्‌भावना सहित अपनी अधीनता स्वीकार करने हेतु जो ढंग अपनाए वे प्रधानतया चार प्रकार के थे—

(i) धार्मिक सहिष्णुता की नीति– अकबर ने हिन्दुओं को पूर्णत: धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की, यहाँ तक कि उसके हरम की हिन्दू स्त्रियों को मूर्ति पूजा करने की पूरी स्वतन्त्रता थी। अकबर स्वयं भी कभी-कभी हिन्दुओं के रीति-रिवाजों को मनाता था। उसने तीर्थ-यात्रा कर तथा जजिया कर हटा दिया, अत: राजपूत ऐसे सम्राट को सहयोग देने को सहर्ष प्रस्तुत हो गए, जो उनके धर्म तथा गुणों को मान्यता एवं प्रतिष्ठा प्रदान करता था।

(ii) उच्च पदों पर नियुक्ति– अकबर ने उच्च पदों के द्वार सबके लिए खोल दिए। उसने योग्यता के आधार पर, धार्मिक भेदभाव किए बिना, पदों का वितरण किया। उसके नवरत्नों में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मावलम्बी सम्मिलित थे। उसने कछवाहा-नरेश बिहारीमल को पंचहजारी मनसबदार बनाया तथा उसके पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह को भी सेना एवं प्रशासन सम्बन्धी उच्च पद प्रदान किए। अकबर के अन्य हिन्दू पदाधिकारियों में राजा टोडरमल तथा राजा बीबरल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अकबर ने 1582 ई० में राजा टोडरमल को दीवान-ए-अशरफ अर्थात भू-विभाग का अध्यक्ष बना दिया। राजा बीरबल को उसने अपने नवरत्नों में स्थान दिया और उन्हें सेनापति का भार सौंपकर अपनी

नीति को आगे बढ़ाया। जनता ने बीरबल को विनोदप्रियता का प्रतीक मानकर अकबर-बीरबल सम्बन्धी हजारों-लाखों किंवदन्तियाँ गढ़ लीं। इस प्रकार उसकी लोकप्रियता में वृद्धि हुई। यही नहीं, अकबर की सेना में भी आधे हिन्दू थे तथा उनमें से अनेक सेना में उच्च पदों पर आसीन थे। अकबर ने बाद में यह अनुभव किया कि हिन्दुओं एवं राजपूतों पर विश्वास करके उसने कोई भूल नहीं की थी।

(iii) **वैवाहिक सम्बन्ध–** अकबर ने प्रमुख राजपूत राजवंशों की राजकुमारियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए, जिससे राजपूतों के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ़ करने में अकबर को सहायता प्राप्त हुई। **नार्मन जीग्लर** तथा **डिक हर्बर्ट आरनॉल्ड कोफ** के अनुसार, राजस्थान तथा अन्य स्थानों पर राजपूत सरदारों के साथ राजनीतिक सम्बन्धों को निश्चित रूप प्रदान करने में इन वैवाहिक सम्बन्धों का विशिष्ट योगदान था। **डॉ० बेनी प्रसाद** के शब्दों में— ''इन वैवाहिक सम्बन्धों से भारत के राजनीतिक इतिहास में एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ। इससे देश को प्रसिद्ध सम्राटों की एक परम्परा प्राप्त हुई और मुगल साम्राज्य की चारों पीढ़ियों को मध्यकालीन भारत के कुछ सर्वश्रेष्ठ सेनापतियों और योग्य राजनीतिज्ञों की सेवाएँ प्राप्त होती रही।''

(iv) **अनाक्रमण तथा सामाजिक सुधार–** अकबर ने अन्य राज्यों को आत्मसात करने तथा उन पर आक्रमण करने की नीति का परित्याग कर दिया। उसने अपने धन व शक्ति को जनता के कल्याण में लगा दिया। अकबर ने मुस्लिम समाज के साथ-साथ हिन्दू समाज के दोषों के निराकरण का भी प्रयास किया, जिससे वह हिन्दुओं के और भी निकट आ गया। उसने अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन देकर देहज प्रथा, सती प्रथा, जाति की जटिलता, बाल-विवाह, शिशु हत्या आदि का विरोध किया तथा इनको सुधारने के लिए नियम भी बनाए। उसने विधवा पुनर्विवाह को भी प्रोत्साहन प्रदान किया। 1562 ई० के आरम्भ से ही उसने राजाज्ञा देकर युद्धबन्दियों को गुलाम बनाने की प्रथा पर रोक लगा दी। मथुरा के तीर्थयात्रियों पर कर लगाना उसे अनुचित लगा, अत: 1563 ई० में उसने सर्वत्र यात्री-कर समाप्त करने का आदेश दिया। फिर 1564 ई० में उसने जजिया कर को बन्द करवा दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण देश के एक विशाल बहुमत की सहानुभूति और शुभकामनाएँ उसे प्राप्त हो गई। **अबुल फजल** ने लिखा है— ''इस प्रकार सम्राट ने लोगों के आचरण को सुधारने का प्रयास किया।''

अकबर की राजपूत नीति के परिणाम– अकबर की राजपूत नीति से मुगल साम्राज्य की बहुमुखी उन्नति हुई। राज्य का विस्तार हुआ, शासन व्यवस्था सुदृढ़ हुई, व्यापार को प्रोत्साहन मिला और सैनिक सम्मान में वृद्धि हुई। इन सबके परिणामस्वरूप देश समृद्ध हुआ और सम्राट को राष्ट्र के निर्माण में राजपूतों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

(i) **मुगलों की शक्ति में वृद्धि–** अकबर की सहिष्णुतापूर्ण नीति मुगल वंश के लिए अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुई। युद्ध-कौशल में दक्ष राजपूतों से मैत्री-सम्बन्ध जोड़कर अकबर ने एक बहुत बड़ा लाभ यह उठाया कि अब उसे कुशल सैनिकों की भर्ती के लिए पश्चिमोत्तर प्रान्तों का मुँह नहीं ताकना पड़ता था। इससे मुगल साम्राज्य की नींव सुदृढ़ हो गई तथा अकबर के उत्तराधिकारी जब तक इस सहिष्णुतापूर्ण नीति का अनुसरण करते रहे तब तक मुगल साम्राज्य निर्विघ्न रूप से चलता रहा। इस नीति का परित्याग करते ही मुगल वंश का पतन आरम्भ हो गया।

(ii) **सद्‌भावना की प्राप्ति–** अकबर की राजपूत नीति का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि राजपूत, जो अभी तक मुसलमानों के शत्रु रहे थे तथा जिनसे सभी मुस्लिम सुल्तानों को युद्ध करने पड़ते थे, अब मुगल साम्राज्य के आधार स्तम्भ बन गए। अकबर ने अपनी उदार राजपूत नीति के फलस्वरूप न केवल राजस्थान पर अपना सुदृढ़ अधिकार स्थापित कर लिया, वरन् राजपूतों की सहायता से उसने भारत के विभिन्न मुस्लिम राज्यों तथा पश्चिमोत्तर सीमा के कुछ राज्यों को पराजित करने में भी अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

(iii) **विद्रोह दमन में सहायता–** इतना ही नहीं; विद्रोही राजपूत राज्यों को दबाने में भी उसने मित्र राजपूत राज्यों से पूरी-पूरी सहायता प्राप्त की। पूर्वी और दक्षिणी विजयों में भी अकबर को राजपूतों से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई।

(iv) **राज्य-विस्तार–** मेवाड़ के अतिरिक्त राजस्थान के सभी राज्य अकबर के अधीन हो गए। मेड़ता और रणथम्भौर जैसे राज्यों ने भी युद्ध के उपरान्त मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। आमेर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर आदि राज्यों ने अकबर से मित्रता कर ली, जिनको देखकर छोटे-छोटे राज्य जैसे प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, दुर्गापुर आदि बिना युद्ध के ही अकबर के अधीन हो गए। मेवाड़ के महाराणा प्रताप को इन्हीं राजपूतों की सहायता से अकबर ने 1576 ई० में पराजित किया। अन्य छोटे-छोटे राज्यों को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कराने का श्रेय भी मुख्यत: उन्हीं राजपूतों को है, जो अकबर के सेनापति के रूप में कार्य कर रहे थे, अत: यथाशीघ्र सम्पूर्ण उत्तर भारत में अकबर की वीरता की धाक जम गई और दूसरी और उसकी उदारता का भी व्यापक प्रचार हो गया।

अकबर ने राजपूतों की सहायता से केवल एक विशाल साम्राज्य ही अर्जित नहीं किया वरन् उसकी सुव्यवस्थित शासन-व्यवस्था भी राजपूतों के सहयोग का ही परिणाम थी। उसने हिन्दुओं को योग्यतानुसार उच्च पदों पर आसीन किया तथा उनकी योग्यता का पूरा लाभ उठाया। राजा टोडरमल उसकी भूमि-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी थे, जिनके द्वारा शासक तथा शासित दोनों वर्गों को भारी लाभ पहुँचा। इस प्रकार उसका जाज्वल्यमान युग राजपूतों के सहयोग से ही निर्मित हो सका।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार— ''राजपूतों के माध्यम से उत्तर भारत के लाखों हिन्दू, अकबर के शुभचिन्तक बन गए और उसकी उन्नति तथा सफलता की प्रार्थना करने लगे।''

3. अकबर की धार्मिक नीति की विवेचना कीजिए।

उ०– अकबर की धार्मिक नीति– अकबर महान् भारत में ही नहीं, वरन् विश्व के महानतम सम्राटों में प्रमुख स्थान रखता है। उसकी महानता का प्रमुख कारण है उसकी धार्मिक नीति, जिसके द्वारा वह दो परस्पर विरोधी धर्मावलम्बियों में समन्वय स्थापित करने में सफल रहा।

16वीं शताब्दी, जिस शताब्दी में अकबर भारत का शासक था, यूरोप के इतिहास में धर्मान्धता की शताब्दी मानी जाती है। उस समय धर्म के नाम पर अमानुषिक युद्ध एवं लोगों पर अमानवीय अत्याचार किए जाते थे। ऐसे समय में अकबर ने 'सुलह-कुल' की नीति को अपनाया, जिसके द्वारा एक अपूर्व धार्मिक सहिष्णुता को उसने भारत में स्थापित किया। मुस्लिम साम्राज्य के आरम्भ होने से लेकर अकबर के राज्यारोहण तक भारत में धर्म के नाम पर असंख्य अत्याचार किए गए थे किन्तु प्रकृति से ही सहिष्णु एवं उदार सम्राट अकबर ने शासितों को सुरक्षा एवं धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की। उसकी यह उदार नीति विभिन्न परिस्थितियों की उपज थी।

अकबर की धार्मिक सहिष्णुता के तत्त्व– अकबर आरम्भ से ही धर्मान्ध अथवा अनुदार नहीं था। अपने पूर्वजों से उसे धार्मिक सहिष्णुता उत्तराधिकार में मिली थी। तैमूर, बाबर तथा हुमायूँ दिल्ली के अन्य सुल्तानों के समान धर्मान्ध अथवा अत्याचारी नहीं थे। इसके अतिरिक्त अकबर का संरक्षक बैरम खाँ भी उदार स्वभाव का था। 15वीं एवं 16वीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलनों का प्रभाव भी अकबर पर पड़ा था। 1581 ई० में इबादतखाने की स्थापना के पश्चात् अकबर हिन्दू, जैन, सिक्ख, पारसी आदि अनेक धर्मावलम्बियों के सम्पर्क में आया, जिससे उसका धार्मिक दृष्टिकोण उदार होता गया तथा अन्त में उसने एक नवीन धर्म की स्थापना भी की, जिसके अनुसरण के लिए किसी भी धर्म का बन्धन आवश्यक नहीं था।

अकबर के धार्मिक विचारों में क्रमिक परिवर्तन हुआ। आरम्भ से वह उतना उदार एवं सहिष्णु नहीं वरन् इस्लाम में उसे पूरी आस्था थी तथा इस्लाम का वह सच्चा अनुयायी था, किन्तु हिन्दुओं के प्रति उसकी उदार नीति ने उसके धार्मिक दृष्टिकोण में धीरे-धीरे परिवर्तन लाना आरम्भ किया। **स्मिथ** के मत में उसके धार्मिक विचारों के विकास की तीन प्रमुख सीढ़ियाँ है— (i) 1556 से 1575 ई० तक, जिसमें वह इस्लाम का अनुयायी था। (ii) 1575 से 1581 ई० तक, जब उसने इबादतखाने में होने वाले वाद-विवादों को ध्यानपूर्वक सुनकर अन्य धर्मों की ओर आकर्षित होना एवं धर्म के विषय में चिन्तन करना आरम्भ कर दिया था। (iii) 1582 ई० के पश्चात् जब उसने 'दीन-ए-इलाही' नामक धर्म की स्थापना की तथा सभी धर्मों को समभाव देखना आरम्भ किया।

अकबर के धार्मिक विचारों में परिवर्तन–

(i) 1556 से 1575 ई० तक का काल– आरम्भिक काल में अकबर एक सच्चे मुसलमान की भाँति आचरण करता था। वह रोज नमाज पढ़ता था, मुल्ला तथा मौलवियों का आदर करता था और पीरों की दरगाहों के दर्शनार्थ जाता था। उसने कई मसजिदों का भी निर्माण कराया, वह हिन्दुओं से जजिया कर भी लेता था, इस प्रकार वह सच्चे मुसलमान सम्राट का प्रतिरूप था। तब भी हम उसे कट्टर एवं धर्मान्ध मुसलमान नहीं कर सकते, क्योंकि उसने धार्मिक अत्याचार की नीति को कभी भी नहीं अपनाया। परन्तु 15 मार्च, 1564 ई० से उसने जजिया कर लेना बन्द कर दिया था। वह आरम्भ से ही उदार हृदय था, किन्तु पहले उदार नहीं था जितना कि बाद में हो गया। इस प्रकार अपने जीवन के प्रथम काल में अकबर एक मुसलमान होने के नाते इस्लाम में पूरी आस्था रखने वाला तथा अपने धर्म का सच्चा अनुयायी सम्राट था।

(ii) सन् 1575 से 1581 ई० तक का काल– यह अकबर के जीवन का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण काल था। वास्वत में इसी काल में उसके धार्मिक विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।

(क) इबादतखाने की स्थापना– अनेक धर्मों से प्रभावित होकर अकबर ने फतेहपुर सीकरी में, 1575 ई० में एक इबादतखाना अथवा पूजागृह निर्मित करवाया जिसमें सभी धर्मों के अनुयायियों को अपने धर्म के विषय में बतलाने तथा अन्य धर्मावलम्बियों से तर्क करने की स्वतन्त्रता थी। आरम्भ में इस इबादतखाने में केवल मुसलमानों को ही भाग लेने का अधिकार था किन्तु उनकी कट्टरता, धर्मान्धता तथा असहिष्णुता से अकबर असन्तुष्ट हो उठा और सभी धर्मों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की उसकी जिज्ञासा प्रबल हो उठी। इसी समय मुसलमान मौलवियों के दो वर्ग हो गए। एक दल का नेता मखदूम-उल-मुल्क अब्दुल्ला सुल्तानपुरी था तथा दूसरे का शेख अब्दुल नबी था। इसमें परस्पर ईर्ष्या, द्वेष होने के कारण संघर्ष आरम्भ हो गया, जिससे अकबर की इस्लाम के प्रति श्रद्धा कम होने लगी और उसने हिन्दू, जैन, सिक्ख, ईसाई तथा पारसी सभी मतावलम्बियों के लिए इबादतखाने के द्वार खोल दिया। सम्राट स्वयं इबादतखाने में होने वाले वाद-विवाद में भाग लेता था। पारसी एवं पुर्तगाली पादरियों से वह काफी प्रभावित हुआ था। एक पारसी पादरी दस्तूर मेहर जी राना ने सम्राट को यह सिखाया कि दरबार में सदैव अग्नि जलती रहनी चाहिए। उसी के प्रभाव से उसने सूर्य की उपासना भी करनी आरम्भ कर दी।

(ख) एक नए धर्म का विचार– निरन्तर धार्मिक चिन्तन एवं मनन के उपरान्त सम्राट इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी धर्मों के मूल तत्त्व समान हैं तथा धर्म के नाम पर झगड़े एवं युद्ध करना व्यर्थ है। उसने यह सोचना आरम्भ किया कि वह एक ऐसा धर्म चलाएगा जिसे संसार के सभी धर्मों के अनुयायी अपना सकें तथा जो सब धर्मों का सार हो।

धर्माचार्य बनने के लिए प्रथम कदम सम्राट ने 22 जून, 1579 ई० में उठाया, जब मुहम्मद साहब के जन्मदिन पर उसने स्वयं खुतबा पढ़ा। यद्यपि यह खुतबा पढ़ने का अधिकार केवल मुहम्मद साहब एवं उनके खलीफाओं को ही

था। अकबर ने खुतबे के अन्त में 'अल्ला हो अकबर' शब्द का उच्चारण किया, जिसका अर्थ है कि अल्लाह सबसे बड़ा है और इस प्रकार उसने अपनी धार्मिक नीति को प्रचलित रखा।

दीन-ए-इलाही– अकबर ने गम्भीर धार्मिक चिन्तन के उपरान्त 'दीन-ए-इलाही' का निर्माण किया तथा 1581 ई० में उसने इस धर्म की घोषणा कर दी। इस धर्म के सिद्धान्त सरल थे तथा प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छा से इसका सदस्य बन सकता था। अकबर ने किसी भी व्यक्ति को इस धर्म के अनुसरण के लिए बाध्य नहीं किया और इसलिए उसके प्रमुख दरबारियों में से बहुत ही कम व्यक्तियों ने उसके इस धर्म को अंगीकार किया तथा अकबर की मृत्यु के साथ ही उसका धर्म 'दीन-ए-इलाही' भी लगभग समाप्त हो गया। इस धर्म का अन्तिम अनुयायी शाहजहाँ का पुत्र दारा शिकोह था, जिसके साथ ही दीन-ए-इलाही का पूर्णतया अन्त हो गया। अकबर के काल में केवल 18 व्यक्ति ही इसके सदस्य थे। राजा मानसिंह, भगवानदास, टोडरमल आदि कोई भी इसका सदस्य नहीं था। हिन्दुओं में केवल बीरबल दीन-ए-इलाही के अनुयायी थे। शेख मुबारक, अबुल फजल, फैजी, अजीज कोका आदि इसके महत्वपूर्ण सदस्य थे।

दीन-ए-इलाही के प्रमुख सिद्धान्त– दीन-ए-इलाही के सिद्धान्त अत्यन्त सरल थे—

(अ) इसका प्रथम सिद्धान्त यह था कि ईश्वर एक है और अकबर उसका सबसे बड़ा पुजारी एवं पैगम्बर है।
(ब) दीन-ए-इलाही के अनुयायी को सूर्य तथा अग्नि की पूजा करनी पड़ती थी।
(स) इसके सदस्य को अपने जन्म दिन पर दावत देनी पड़ती थी।
(द) जो दावत मनुष्य के मरने के बाद उसके परिजनों को देनी पड़ती है, वह मनुष्य को अपने जीवनकाल में ही देनी पड़ती थी।
(य) प्रत्येक सदस्य के लिए मांस-भक्षण निषिद्ध था।
(र) परस्पर मिलने पर वे 'अल्ला हो अकबर' तथा 'जल्ले-जलाल हू' कहकर अभिवादन करते थे।
(ल) निम्न श्रेणियों के व्यक्तियों के साथ उन्हें भोजन करने का निषेध था।
(व) उन्हें सम्राट को सजदा करना पड़ता था।
(श) दीन-ए-इलाही के अनुयायी चार श्रेणियों में विभक्त थे— प्रथम, जो अपनी सम्पत्ति सम्राट पर न्योछावर करने को प्रस्तुत रहते थे, द्वितीय, जो सम्पत्ति तथा जीवन समर्पित करने को उद्यत रहते थे, तृतीय, जो सम्राट के लिए सम्पत्ति, जीवन एवं सम्मान का बलिदान कर सकते थे तथा चतुर्थ जो सम्पत्ति, जीवन, सम्मान एवं धर्म समर्पित करने के लिए उद्यत रहते थे।
(ष) रविवार के दिन सम्राट धर्म की दीक्षा देता था तथा नए व्यक्तियों के धर्म परिवर्तन के लिए भी यही दिन निश्चित था।

4. अकबर की सुलह-कुल नीति की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए प्रश्न संख्या— 13 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

5. 'दीन-ए-इलाही' अकबर की बुद्धिमत्ता का नहीं, बल्कि उसकी मूर्खता का प्रतीक था। इस कथ के आलोक में अकबर की धार्मिक नीति की समीक्षा कीजिए।

उ०– दीन-ए-इलाही के बारे में **डॉ० श्रीराम शर्मा** ने लिखा है ''दीन-ए-इलाही को एक धर्म का स्तर देना कोरी अतिशयोक्ति है। यह सम्राट के राष्ट्रीय आदर्शवाद का ज्वलन्त उदाहरण है। इसका कोई धर्म-ग्रन्थ, पुरोहित, संस्कार वास्तविक रूप से कोई धार्मिक विश्वास नहीं थे। इसे धर्म न कहकर एक संस्था अथवा परिपाटी कहना अधिक उपयुक्त होगा जो किसी धार्मिक आन्दोलन के विपरित एक स्वतन्त्र विचारधारा के निकट है।'' **स्मिथ** ने दीन-ए-इलाही को अकबर की बुद्धिमता का नहीं, अपितु उसकी मूर्खता का प्रतीक बताया है। लेकिन इस सम्बन्ध में **डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव** का मत है कि दीन-ए-इलाही इस उच्च उद्देश्य से प्रेरित होकर चलाया गया था कि इससे देश की विभिन्न जातियाँ एकाकार होकर राष्ट्र का रूप धारण कर लेंगी। अकबर उत्तरी-भारत में राजनीतिक प्रशासकीय, आर्थिक और कुछ हद तक सांस्कृतिक एकता स्थापित करने में सफल हुआ।

अकबर की इस सहनशीलता की नीति की बदायूँनी और जेसुइट पादरियों ने बड़ी आलोचना की है तथा बदायूँनी ने यह आरोप लगाया कि अकबर ने इस्लाम के साथ अन्याय किया। लेकिन उसकी इस आलोचना को सत्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उस जैसे धर्मान्ध मुल्ला की दृष्टि में वह अक्षम्य अपराध था कि इस्लाम को प्रमुखता की स्थिति से गिराकर उसे अन्य धर्मों के साथ समानता की स्थिति पर ले जाया जाये। जेसुइट पादरी भी जो बादशाह को ईसाई बना देने की आशा में थे किन्तु अन्त में निराश हो गये तो अकबर की आलोचना करना इनके लिए स्वाभाविक ही नहीं अवश्यम्भावी भी था।

6. ''अकबर एक राष्ट्रीय शासक था।'' इस कथन के आलोक में उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– अकबर ने अपने शासन के दौरान ऐसे कार्य किये जिसके आधार पर उसे एक राष्ट्रीय शासक कहा गया है। राष्ट्रीय शासक वह कहलाता है जिसके शासन में उसकी सम्पूर्ण प्रजा के साथ शासन के सभी क्षेत्रों में समान व्यवहार किया जाये और राज्य की ओर से व्यक्ति-व्यक्ति में धर्म, जाति और वंश के आधार पर कोई भेदभाव न किया जाये। शासक अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझे और राष्ट्र की सारी जनता सम्राट को अपना शासक माने। अकबर ऐसा ही सम्राट था। इस दिशा में राजनीतिक एकता स्थापित करना अकबर का प्रथम कदम था। दूसरा उसने पूरे देश में एक जैसी शासन-प्रणाली, न्याय-व्यवस्था तथा मालगुजारी

बन्दोबस्त, एक राज्य भाषा, एक मुद्रा व्यवस्था की स्थापना की। अकबर का लक्ष्य सम्पूर्ण भारत को एक राज्य और एक शासन के अन्तर्गत संगठित करने का था।

जिस समय अकबर गद्दी पर बैठा उस समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति अशांत थी। केन्द्रीय सत्ता का नामोनिशान नहीं था। स्थानीय तत्त्व ही राजनीति और प्रशासन में अधिक प्रभावशाली थे। प्रशासनिक व्यवस्था ठप्प पड़ चुकी थी। सामाजिक एवं आर्थिक विभेद चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। ऐसी विषम परिस्थितियों में अकबर ने साहस नहीं खोया। उसने भारत को ही अपना देश समझा और इसके विकास के लिए अनवरत प्रयास किये। उसके ये कार्य उसे एक राष्ट्रीय शासक बनाते हैं। इस संदर्भ की पुष्टि अकबर के निम्नलिखित कार्यों से की जा सकती है—

(i) **राजनीतिक एकीकरण–** अकबर का सबसे पहला उद्देश्य भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधकर भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना जगाना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अकबर ने साम्राज्यवादी नीति अपनाई और पानीपत से लेकर असीरगढ़ के युद्ध तथा सम्पूर्ण उत्तर-पूर्वी भारत और दक्षिण के एक बड़े भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसने राजपूतों और अफगानों की शक्ति को भी नतमस्तक कर दिया। इसके लिए उसने सैनिक शक्ति के अतिरिक्त कूटनीति का भी सहारा लिया। उसके प्रयासों से लगभग सम्पूर्ण भारत एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन आ गया तथा मुगल सैनिक आक्रमणकारी से भारतीय राजवंशी बन गए।

(ii) **प्रशासनिक एकीकरण–** अकबर ने न सिर्फ सम्पूर्ण भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की, बल्कि उसने पूरे साम्राज्य के लिए समान प्रशासनिक व्यवस्था भी स्थापित की। उसके प्रशासन का उद्देश्य राजनीति को धर्म से अलग कर साम्राज्य में रहने वाले सभी लोगों का कल्याण करना एवं उन्हें न्याय तथा समान अवसर प्रदान करना था। इसलिए, उसने तुर्क अफगानयुगीन धार्मिक कट्टरता की नीति त्याग दी और अपने प्रबलतम राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों— राजपूतों को भी प्रशासन और सेना में प्रमुखता दी। राजनीतिक एकता बिना प्रशासनिक एकता के अधूरी रहती। इसलिए, उसने पूरे साम्राज्य में एक जैसी प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। यह उसकी एक महान् उपलब्धि थी।

(iii) **धार्मिक एकीकरण–** राष्ट्रीय एकता स्थापित करने की दिशा में अकबर का साहसिक और मौलिक कार्य धार्मिक क्षेत्र में था। तुर्क-अफगान शासकों के समय में धर्म एवं राजनीति का अटूट सम्बन्ध था। अकबर इस बात को अच्छी तरह समझता था कि इस्लाम धर्म का सहारा लेकर सम्पूर्ण भारत पर शासन नहीं किया जा सकता। इसलिए, उसने राजनीति और धर्म को पृथक् कर दिया। बलात् धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया बन्द कर दी गई। हिन्दुओं पर से जजिया और तीर्थ-यात्रा कर हटा लिए गए। उन्हें मंदिरों के निर्माण और मरम्मत की सुविधा एवं आवश्यक सहायता भी प्रदान की गई। अन्य धर्मावलंबियों—सिक्खों, पारसियों, ईसाइयों, मुसलमानों को भी धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इस प्रकार अकबर ने धार्मिक विद्वेष, वैमनस्य एवं कटुता की भावना को समाप्त कर आपसी सद्भाव, सहयोग, एकता एवं धर्म-सहिष्णुता की भावना जगाई और एक संगठित राष्ट्र के निर्माण में अमूल्य योगदान दिया।

(iv) **सामाजिक एकता के लिए प्रयास–** अकबर का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य था सामाजिक एकता स्थापित करने का प्रयास। उसने समाज के दो बहुसंख्यक वर्गों— हिन्दू और मुसलमानों के उत्थान के लिए समान रूप से प्रयास किए। उसने हिन्दू समाज में प्रचलित सती प्रथा एवं बाल-विवाह को प्रतिबन्धित करने की कोशिश की। इसी प्रकार मुसलमानों के दाढ़ी रखने, गो-मांस भक्षण, शराबखोरी, रमजान का व्रत रखने एवं हज की यात्रा समाप्त करने का प्रयास किया। वह इस्लाम धर्म को मानते हुए भी हिन्दुओं के पर्वों एवं त्योहारों— दशहरा, दीपावली, रक्षाबन्धन, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी आदि को पूरी श्रद्धा और उत्साह से मनाता था। अकबर की सुलह-कुल की नीति ने आपसी विभेद को मिटाने एवं एक सुसंगठित राज्य, समाज और राष्ट्र के निर्माण में अमूल्य योगदान दिया।

(v) **सांस्कृतिक एकता की दिशा में योगदान–** सांस्कृतिक उत्थान के क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किए। उसने फारसी के साथ-साथ संस्कृत भाषा और साहित्य के विकास पर भी पूरा ध्यान दिया। उसने महाभारत, गीता, रामायण, बाइबिल, कुरान, अथर्ववेद, पंचतन्त्र इत्यादि का फारसी में अनुवाद करवाया। कुछ फारसी ग्रन्थों का संस्कृत में भी अनुवाद किया गया। अकबर ने अपने दरबार में अनेक कलाकारों, कवियों, चित्रकारों, संगीतकारों को संरक्षण एवं प्रोत्साहन दिया। भवन-निर्माण के क्षेत्र में भी उसकी महान् उपलब्धियाँ हैं। उसने ऐसे भवनों का निर्माण करवाया जिनमें हिन्दू और इस्लामी शैलियों का मिश्रण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अकबर के प्रयासों से भारत की विभिन्न कला-पद्धतियों का समन्वय एवं विकास हो सका। ईरानी, इस्लामी और हिन्दू कला एक-दूसरे के निकट आ सकीं।

(vi) **आर्थिक एकता–** अकबर ने व्यवसाय और व्यापार को नियन्त्रित कर देश की आर्थिक समृद्धि का मार्ग भी खोला। अनेक प्रकार की दस्तकारियों को देश में प्रोत्साहन मिला जिसके फलस्वरूप देश विकास एवं समृद्धि की चरम सीमा पर पहुँचकर विदेशी यात्रियों और दूतों की आँखों में चकाचौंध पैदा करने लगा।

इस प्रकार सभी इतिहासकारों यह स्वीकार करते हैं कि अकबर का उद्देश्य भारत की एकता, उसकी उन्नति और उसके सभी निवासियों की समान प्रगति तथा उन्हें सुविधाएँ प्रदान करना था। इस दृष्टि से प्राय: सभी इतिहासकार उसे राष्ट्रीय शासक स्वीकार करते हैं।

7. अकबर की राजपूत नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए एवं मुगल साम्राज्य पर इसके प्रभावों का परीक्षण कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

8. अकबर के चारित्रिक गुणों पर प्रकाश डालिए।

उ०– अकबर ने विभिन्न कार्यक्षेत्रों में अपनी योग्यता एवं प्रतिभा का परिचय दिया। वह एक वीर सैनिक, महान सेनापति, बुद्धिमान शासन-प्रबन्धक, उदार शासक तथा उचित निर्णायक था। वह मनुष्यों का जन्मजात नेता था और इतिहास के शक्तिशाली सम्राटों में गणना किए जाने की क्षमता रखता था।

अकबर के व्यक्तित्व एवं चरित्र के विषय में उसके समकालीन इतिहासकारों ने प्रकाश डालने का प्रयास किया है। उसके पुत्र जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-जहाँगीरी' में उसके व्यक्तित्व को बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। जहाँगीर लिखता है कि वह वास्तव में बादशाह था। संक्षेप में अकबर के व्यक्तित्व एवं चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(i) स्वभाव और रुचियाँ– अकबर विनोदी स्वभाव का था और सदा प्रसन्नचित रहता था। मधुर वचन बोलना उसका स्वभाव था और अहंकार एवं दम्भ से उसे घृणा थी। बच्चों से उसे असीम स्नेह था। उसका क्रोध भी अत्यन्त भयंकर था और क्रोध में वह निर्दयतापूर्ण कार्य भी कर देता था, जैसे आधम खाँ को उसने किले की दीवार पर से दो बार गिराने की आज्ञा दी थी, किन्तु साधारणत: उसका स्वभाव दयालु था तथा उसका क्रोध भी शीघ्र ही शान्त हो जाता था। वह अपने सद्‌व्यवहार के कारण अपने अमीरों, दरबारियों तथा प्रजाजनों में अत्यन्त लोकप्रिय था।

सम्राट को आखेट में विशेष अभिरुचि थी। वह जंगल में भयंकर-से-भयंकर शेर, चीते तथा हाथी का शिकार करता था। हाथियों के युद्ध तथा पोलो खेलने का उसे अत्यधिक शौक था। अकबर साहसी, धैर्यवान, कठोर परिश्रमी तथा महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। पराजित शत्रु के प्रति वह मानवोचित उदार व्यवहार करने में विश्वास रखता था, किन्तु विरोधियों के प्रति वह उतना ही कठोर भी हो जाता था और उन्हें कभी क्षमा नहीं करता था।

(ii) मानसिक गुण– अकबर यद्यपि स्वयं विद्वान नहीं था (सम्भवत: वह निरक्षर था), तथापि उसका व्यवहारिक ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसकी व्यवहारिक बुद्धि का लोहा सभी लोग मानते थे। अकबर साहित्य का बड़ा प्रेमी था तथा दूर-दूर के देशों के विद्वान उसके दरबार में आश्रय प्राप्त करते थे। उसके नवरत्नों में अधिकतर विद्वान व्यक्ति ही सम्मिलित थे। अकबर ने एक विशाल पुस्तकालय का निर्माण करवाया था, जिसमें लगभग 24,000 हस्तलिखित पुस्तकें संगृहीत थीं। तर्क करने में वह इतना कुशल था कि उसको तर्क करते देखकर कोई उसके निरक्षर होने पर विश्वास ही नहीं कर सकता था।

(iii) कला प्रेमी– अकबर को केवल साहित्य से ही नहीं, वरन् ललित कलाओं से भी यथेष्ट अनुराग था। सु-लेखन कला, संगीतकला, भवननिर्माण कला, चित्रकला सभी को उसने राजाश्रय प्रदान किया था और उच्चकोटि के कलाकारों को सम्मानित किया था। वह कलपुर्जों का विशेषज्ञ भी था तथा उसने एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया था, जिससे 17 तोप के गोलों को एक साथ दागा जा सकता था।

(iv) धार्मिक उदारता– अकबर के चरित्र का सबसे महत्वपूर्ण गुण उसकी धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता थी। उसने सभी धर्मों के साथ दया, सहानुभूति एवं समानता का व्यवहार किया। वह निष्ठावान तथा ईश्वर में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था, किन्तु उसके धार्मिक विचार संकीर्ण न होकर व्यापक थे, जिनका अन्तिम परिणाम 'दीन-ए-इलाही' के रूप में प्रस्फुटित हुआ था।

(v) साहित्य का संरक्षक– अकबर गुणग्राही सम्राट था। वह विद्यानुरागी और साहित्य-प्रेमी बादशाह था। उसने विद्वानों, कवियों, लेखकों और साहित्यकारों को उदारता से आश्रय प्रदान किया। इस राज्याश्रय के परिणामस्वरूप अकबर के शासनकाल में उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना हुई। इनमें ऐतिहासिक ग्रन्थ, अनुवाद के ग्रन्थ और काव्य-ग्रन्थ हैं। ऐतिहासिक ग्रन्थों में मुल्ला दाउद की 'तारीख-ए-अल्फी', बदायूँनी का 'मुन्तखब-उत-तवारीख', निजामुद्दीन अहमद का 'तबकात-ए-अकबरी' तथा शेख अबुल फजल का 'अकबरनामा' और 'आइने-अकबरी' प्रमुख हैं। उसके काल में संस्कृत, तुर्की, अरबी में लिखे कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद भी किया गया। अकबर के दरबार के ही गिजाली, फैजी, मुहम्मद हुसैन नजीरी, सैयद जमालुद्दीन उर्फी और अब्दुर्रहीम खानखाना ने अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना की।

(vi) शारीरिक गठन, वेशभूषा एवं खानपान– अकबर मझले कद का व्यक्ति था और उसका रंग गेहुँआ था। ऊँचा ललाट, लम्बी भुजाएँ, विशाल वक्षस्थल, सीधी नाक के बाईं ओर सौभाग्य का चिह्न (मस्सा), चमकीले नेत्र, सुदृढ़ तथा निरोग शरीर आदि लक्षण उसे एक सम्राट बना देने के लिए पर्याप्त थे। उसके अंग-प्रत्यंग से उसका महान व्यक्तित्व झलकता था। वह केवल मूँछें रखता था तथा दाढ़ी उसने मुँडवा दी थी। उसकी आवाज तेज और कड़कती हुई थी। वह कठोर परिश्रमी था। एक बार वह एक रात और एक दिन में आगरा से अजमेर तक 240 मील घोड़े पर सवार होकर चला गया था। घुड़सवारी का उसे विशेष शौक था। वह बहुमूल्य वस्त्र धारण करता था और जरी के काम के सुन्दर रेशमी वस्त्र तथा रत्नाभूषणों से सुसज्जित पगड़ी पहनता था। अकबर फलों का बहुत शौकीन था। उसने अपनी हिन्दू रानियों का दिल न दुखाने के लिए गो-मांस खाना बन्द कर दिया था, परन्तु सप्ताह में दो बार वह मांस-भक्षण करता था। युवावस्था में वह मद्यपान भी करता था किन्तु बाद में उसने इसका परित्याग कर दिया था। वह पीने के लिए गंगाजल का प्रयोग करता था।

(vii) **हँसमुख एवं प्रसन्नचित्त सम्राट–** स्वस्थ मनोरंजन अकबर को प्रिय था। फतेहपुर सीकरी में अनेक ऐसे स्थल निर्मित किए गए थे, जहाँ चिन्ताओं से मुक्त होकर सम्राट आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत करता था।

(viii) **प्रजावत्सल सम्राट–** अकबर एक प्रजावत्सल सम्राट था। यद्यपि वह निरंकुशता में विश्वास रखता था तथापि उसकी निरंकुशता प्रजाहित पर आधारित थी, स्वेच्छाचारिता पर नहीं। वह दिन-रात प्रजा के हित के कार्यों में व्यस्त रहता था तथा उसके काल में उसकी प्रजा सुखी व समृद्ध थी। वह न्यायप्रिय था और न्याय के समय सबको समान समझता था। योग्यता तथा प्रतिभा का वह आदर करता था तथा उच्च पदों पर वह योग्य व्यक्तियों को ही नियुक्त करता था।

सारांश यह है कि अकबर बहुमुखी प्रतिभा वाला सम्राट था। वह कठोर परिश्रमी, उत्साही, धैर्यवान, साहसी, सहिष्णु, उदार, प्रजावत्सल, साहित्य एवं कला का पारखी, राजनीतिज्ञ, गुणग्राही, जिज्ञासु तथा दयावान सम्राट था। उसका स्वभाव नम्र एवं शिष्ट, उसकी बुद्धि कुशाग्र, स्मरण शक्ति विलक्षण तथा उसके आदर्श ऊँचे थे। इन्हीं कारणों से भारत के इतिहास में उसे अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त है।

9. 'अकबर मुगल शासकों में सर्वश्रेष्ठ भारतीय शासक था' इस कथन के आलोक में अकबर का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– अकबर मुगल शासकों में सर्वश्रेष्ठ, भारतीय शासकों में महान् और विश्व के शासकों में एक श्रेष्ठ और सम्मानित पद का अधिकारी है। **लेनपूल** ने उसे 'भारत के बादशाहों में सर्वश्रेष्ठ बादशाह' तथा उसके युग को 'मुगल साम्राज्य का स्वर्णकाल' कहा। इतिहासकार **स्मिथ** जो कई दृष्टिकोणों से अकबर की आलोचना करता है, इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि 'वह मनुष्यों का जन्मजात बादशाह था।' इतिहास के सर्वशक्तिशाली बादशाहों में से एक होने का उसका न्यायपूर्ण अधिकार है।

अकबर का व्यक्तित्व सुन्दर और प्रभावशाली था। वह एक आज्ञाकारी पुत्र, प्रिय पति और आदरणीय पिता था। वह अबुल फजल की मृत्यु पर बहुत रोया था और दो दिन तक उसने भोजन ग्रहण नहीं किया था। वह शिक्षित न था, परन्तु उसने विद्वानों को सम्मान और आश्रय दिया। उसने एक पुस्तकालय बनाया, जिसमें 24,000 ग्रन्थ थे। उसे खेलकूद और शिकार का शौक था। कठोर परिश्रम करने तथा कठिनाइयों को बर्दाश्त करना उसका स्वभाव था। उसमें साहस और धैर्य कूट-कूटकर भरा हुआ था। वह धार्मिक दृष्टि से अपने युग का प्रवर्तक था। अकबर भी शराब, अफीम आदि मादक द्रव्यों का सेवन करता था परन्तु वह उनका आदी न था। अकबर ने तत्कालीन अन्य शासकों की भाँति बहुत विवाह किए थे। उसके हरम में करीब 5000 स्त्रियाँ थीं और उनमें उसकी रखैलों की संख्या भी बहुत रही होगी परन्तु जैसा कि प्रति सप्ताह मीना बाजार लगाकर सुन्दर स्त्रियों को खोजना और बीकानेर के पृथ्वीराज राठौर की पत्नी के शील पर आक्रमण करने की चेष्टा आदि किंवदन्तियाँ ठीक प्रतीत नहीं होतीं।

अकबर एक कुशल और प्रतिभाशाली सेनापति था। उसने सेनापति के रूप में अनेक सैनिक अभियानों में सफलता प्राप्त की। गुजरात के विद्रोह को दबाने के लिए वह जिस तीव्र गति से गया था, वह एक ऐतिहासिक सैनिक अभियान माना गया है। उसके समय में मुगलई सेना अजेय बन गई। संगठन और युद्ध नीति दोनों ही इसके लिए उत्तरदायी थीं और अकबर का इसमें बहुत बड़ा हाथ था। एक शासन-प्रबन्धक की दृष्टि से अकबर में मौलिकता एवं व्यवहारिकता दोनों ही थीं। अकबर के शासन की एक मुख्य विशेषता यह थी कि उसने साम्राज्य के शासन-सूत्र को एक धागे में पिरो दिया था, जिससे मुगल साम्राज्य राजनीतिक स्थायित्व प्राप्त कर सका। एक शासक और राजनीतिज्ञ की दृष्टि से अकबर की धार्मिक उदारता की नीति और राजपूत नीति अद्वितीय थी।

निश्चय ही अकबर ने भारत की सांस्कृतिक एकता की उन्नति के लिए प्रयत्न किए। फारसी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया और विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया गया। इसी प्रकार अकबर ललित कलाओं की विभिन्न पद्धतियों में समन्वय स्थापित करने में सफल हुआ। चित्रकला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में इस समय किए गए नवीन प्रयोगों ने भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया।

अकबर ने अनेक सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के प्रयास किए। दास प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि को रोकने का प्रयत्न किया।

अकबर ने जिन उदार और नवीन सिद्धान्तों को जन्म दिया वे इतिहास में दर्ज करने योग्य हैं। उसने हिन्दू-मुसलमानों को निकट लाने का प्रयत्न किया। यद्यपि वह इस दिशा में अधिक सफल नहीं हो सका, परन्तु वह पहला मुस्लिम शासक था जिसने इस आवश्यकता को समझा और उसके लिए ठोस कदम उठाए। उसकी राजपूत एवं धार्मिक नीति हमारे कथन की पुष्टि करती हैं। उसकी न्यायिक प्रणाली भी इस सन्दर्भ में विचारणीय है। अकबर की नीति, भावना और प्रयत्न उसे एक राष्ट्रीय शासक के निकट ला खड़ा करते हैं।

इस प्रकार अकबर का चरित्र उदार और प्रभावशाली था। एक व्यक्ति, एक विजेता, एक शासक, एक राजनीतिज्ञ और एक बादशाह की दृष्टि से उसका जीवन सफल और प्रेरणा प्रदान करने वाला था। इसी कारण अकबर को 'महान' की पदवी से विभूषित किया गया है। **डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव** का मानना है कि ''अकबर मध्ययुगीन भारत का सबसे महान् सम्राट था और वास्तव में इस देश के सम्पूर्ण इतिहास में सर्वश्रेष्ठ शासकों में से एक था।''

4

मुगलकाल– जहाँगीर से औरंगजेब तक
(Mughal Period : Jahangeer to Aurangzeb)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1605 ई०   2. 1627 ई०   3. 1628 ई०   4. 1657 ई०   5. 1707 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या-87 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 87 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 88 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 88 व 89 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ''जहाँगीर में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था'' विवेचना कीजिए।

उ०– जहाँगीर का चरित्र एवं व्यक्तित्व अत्यन्त विवादास्पद था। कुछ इतिहासकार उसे लोकप्रिय तथा उदार शासक मानते हैं तो कुछ आलसी, निकम्मा, विलासी, धर्म-असहिष्णु तथा क्रूर व्यक्तित्व वाला। अनेक इतिहासकार उसे विरोधी गुणों का सम्मिश्रण मानते हैं। **स्मिथ** के अनुसार ''जहाँगीर कोमलता और क्रूरता, न्याय तथा चंचलता, शिष्टता एवं बर्बरता, बुद्धिमत्ता एवं लड़कपन का अद्वितीय सम्मिश्रण था।'' वस्तुत: व्यक्तित्व और शासक के रूप में जहाँगीर में अनेक गुण और दुर्बलताएँ थीं।

2. ''जहाँगीर की दक्षिणी नीति का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– दक्षिण अभियानों में जहाँगीर पूर्णतया असफल रहा। नए दुर्गों के जीतने की बात तो दूर रही, पिता द्वारा विजित भू-भाग भी वह अपने अधीन न रख सका। जहाँगीर के समय में दक्षिण भारत की राजनीति पर मलिक अम्बर छाया हुआ था। उसकी मृत्यु के बाद ही अहमदनगर पर मुगलों का अधिकार हो सका।

3. नूरजहाँ के विषय में आप क्या जानते हैं?

उ०– नूरजहाँ तेहरान के निवासी मिर्जा ग्यासबेग की पुत्री थी। उसका वास्तविक नाम महरुन्निसा था। महरुन्निसा का विवाह फारस के साहसी युवक अलीकुल बेग इस्तजलू के साथ हुआ। अलीकुल की हत्या के बाद महरुन्निसा ने जहाँगीर से विवाह कर लिया और उसे नूरमहल और नूरजहाँ की उपाधि मिली। नूरजहाँ ने मुगल राजनीति को प्रभावित ही नहीं किया था, अपितु स्वयं शासिका के रूप में प्रभावित हुई थी।

4. शाहजहाँ की मध्य-एशियाई नीति का परीक्षण कीजिए।

उ०– शाहजहाँ की मध्य-एशियाई नीति पूर्णत: विफल रहीं। शाहजहाँ का बल्ख व बदख्शाँ को विजित करने का सपना पूरा न हो सका अपितु मुगल साम्राज्य पर इसके प्रतिकूल प्रभाव पड़े। शाहजहाँ की मध्य-एशियाई विजय-योजना में अपार धन की हानि हुई। इन युद्धों में मुगल सेना का विनाश तथा असफलता के कारण मुगलों की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा साथ ही मुगलों तथा मध्य एशिया में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का अन्त हो गया।

5. शाहजहाँ के काल में साहित्य और कला की क्या प्रगति हुई?

उ०– शाहजहाँ के काल में साहित्य और कला उन्नति के उच्च शिखर पर थे। साहित्य और ललितकलाओं के दृष्टिकोण से शाहजहाँ का काल स्वर्णयुग कहलाने का अधिकारी है। 'गंगाधर' और 'गंगालहरी' के प्रसिद्ध लेखक जगन्नाथ पण्डित, शाहजहाँ के राजकवि थे। संस्कृत ग्रन्थों, भगवद्गीता, उपनिषद्, रामायण आदि का अनुवाद भी इसी काल में हुआ। शाहजहाँ द्वारा निर्मित दिल्ली का लालकिला, जामा मस्जिद, आगरा की मोती मस्जिद तथा आगरा की ही सर्वोत्कृष्ट कृति ताजमहल, शाहजहाँ के युग को स्वर्ण-युग प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। शाहजहाँ का 'मयूर सिंहासन' जो बहुमूल्य पत्थरों से जड़ित था तथा जिसके बीचों-बीच विश्वप्रसिद्ध हीरा कोहिनूर जगमगाता था, उसके गौरव में चार चाँद लगाने के लिए पर्याप्त था।

6. शाहजहाँ द्वारा निर्मित चार प्रमुख इमारतों के बारे में लिखिए।

उ०– शाहजहाँ द्वारा निर्मित चार प्रमुख इमारतें निम्नवत् हैं–

(i) दिल्ली का लाल किला– शाहजहाँ ने आगरा और फतेहपुर सीकरी को छोड़कर दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया और

यहाँ लाल पत्थरों से एक दुर्ग का निर्माण करवाया, जिसे लाल किला के नाम से जाना जाता है। इसके अन्दर की इमारतों में दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास प्रमुख हैं।

(ii) जामा मस्जिद– लाल किले के सामने शाहजहाँ ने भारत की सबसे बड़ी मस्जिद का निर्माण कराया। इसमें दस हजार व्यक्ति सामुहिक रूप से नमाज अदा कर सकते हैं।

(iii) मोती मस्जिद– आगरा के दुर्ग में शाहजहाँ ने शुद्ध संगमरमर से मस्जिद का निर्माण करवाया जो मोती मस्जिद के नाम से विख्यात है। यह संसार का सर्वोत्तम पूजा स्थल मानी जाती है।

(iv) ताजमहल– शाहजहाँ की अमूल्य और सुन्दरतम कृति ताजमहल है। जो आगरा से यमुना नदी के तट पर संगमरमर से निर्मित है। ताजमहल का निर्माण उसने अपनी पत्नी मुमताज महल की स्मृति में बनवाया।

7. औरंगजेब ने हिन्दुओं के विरुद्ध कौन से कार्य किए?

उ०– औरंगजेब ने हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से वंचित किया। हिन्दुओं के मंदिर और शिवालियों को तुड़वाकर मस्जिदें बनवा दी गई। सम्राट ने अनेक बार हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया। सिक्ख गुरु तेगबहादुर सिंह का इस्लाम स्वीकार न करने पर सिर कटवा दिया गया। दीपावली पर बाजारों में रोशनी करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। होली खेलने, मेलों तथा धार्मिक उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हिन्दुओं को धर्म-यात्रा पर भी कर देना पड़ता था।

8. औरंगजेब की असफलता के चार कारणों का उल्लेख कीजिए।

उ०– औरंगजेब की असफलता के चार कारण निम्नवत हैं—

(i) धर्मान्धता एवं असहिष्णुतापूर्ण नीति
(ii) पुत्रों को शिक्षित न बनाने का संकल्प
(iii) शासन का केन्द्रीकरण
(iv) राजपूत विरोधी नीति

9. मुगलों के पतन के कारणों की व्याख्या कीजिए।

उ०– मुगलों के पतन के प्रमुख कारण निम्नवत हैं—

(i) औरंगजेब का उत्तरदायित्व
(ii) औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारी
(iii) मुगलों में उत्तराधिकार के नियम का अभाव
(iv) मुगल सामन्तों का नैतिक पतन
(v) जागीरदारी संकट
(vi) मुगलों की सैन्य दुर्बलताएँ
(vii) बौद्धिक पतन
(viii) मुगल साम्राज्य का आर्थिक दिवालियापन
(ix) नौसेना का अभाव
(x) मुगल साम्राज्य की विशालता और मराठों का उत्कर्ष
(xi) दरबार में गुटबाजी
(xii) नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण
(xiii) यूरोपवासियों का आगमन

10. औरंगजेब राष्ट्रीय एकता में कहाँ तक बाधक था?

उ०– औरंगजेब के कट्टरपन, शंकालु प्रवृत्ति, गैर-मुस्लिम नीति ने देश में राजनीतिक, गैर-वफादारी और वैमनस्य को हवा दी, इससे राष्ट्रीय एकता को गहरा आघात पहुँचा। औरंगजेब ने हिन्दू मन्दिरों, मठों को तुड़वाकर हिन्दू जाति से शत्रुता मोल ली। यह नीति उसके साम्राज्य निर्माण में बाधक थी। गैर-मुस्लिम नीति से वह भारत जैसे देश में कभी भी सफल संचालनकर्त्ता नहीं बन सकता था और ऐसा हुआ भी। उसकी इन नीतियों ने राष्ट्रीय एकता को खण्डित कर दिया और सम्पूर्ण राष्ट्र में अराजकता, अव्यवस्था फैल गई।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जहाँगीर के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करते हुए उसकी प्रमुख उपलब्धियों का विवेचन कीजिए।

उ०– जहाँगीर के शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित थीं—

(i) खुसरो का विद्रोह– जहाँगीर के बादशाह बनने के उपरान्त सबसे पहली महत्वपूर्ण घटना उसके पुत्र खुसरो का विद्रोह थी। उदारतापूर्वक आरम्भ किए हुए साम्राज्य पर यह प्रथम आघात था। खुसरो दरबार में बड़ा लोकप्रिय था। वह अत्यन्त सुन्दर, शक्तिशाली, मधुर-भाषी तथा चरित्रवान राजकुमार था। अकबर का खुसरो पर विशेष प्रेम था तथा विलासी और मद्यप जहाँगीर से असन्तुष्ट उसके अनेक दरबारी भी खुसरो को ही उसका उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। खुसरो की महत्वाकांक्षा अभी समाप्त नहीं हुई थी और वह सिंहासन प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। जहाँगीर भी खुसरो से असन्तुष्ट था तथा उसे विश्वासपात्र नहीं समझता था। जहाँगीर ने खुसरो को आगरा के दुर्ग में रहने दिया किन्तु उस पर कड़ा पहरा लगा दिया। खुसरो इस अपमान को सहन नहीं कर सका और 6 अप्रैल, 1606 ई० को अकबर के मकबरे के दर्शन करने के बहाने वह दुर्ग से बाहर निकल पड़ा तथा मथुरा के आस-पास के प्रदेशों को लूटता हुआ, पानीपत जा पहुँचा। उधर शाही सेनाएँ शेख फरीद के नेतृत्व में खुसरो को पराजित करने के लिए चल पड़ी।

पानीपत में लाहौर का दीवान अब्दुर्रहीम; खुसरो से आकर मिल गया। खुसरो ने उसे अपना वजीर नियुक्त किया और लाहौर की ओर बढ़ा। मार्ग में वह अमृतसर से कुछ किलोमीटर दूर तरन-तारन में सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव की

सेवा में उपस्थित हुआ। गुरु अर्जुनदेव ने उसे दो लाख रुपये की आर्थिक सहायता दी और अपना आशीर्वाद भी दिया। खुसरो लाहौर जा पहुँचा किन्तु वहाँ के सूबेदार दिलावर खाँ ने किले के फाटक बन्द कर लिए। इस पर खुसरो ने लाहौर दुर्ग का घेरा डाल दिया, किन्तु इसी समय उसे सूचना मिली कि बादशाह स्वयं लाहौर के निकट आ पहुँचा है। इस पर भयभीत होकर खुसरो उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों की ओर भागा। भैरोवल नामक स्थान पर पिता-पुत्र की सेनाओं में संघर्ष हुआ, जिसमें खुसरो की बुरी तरह पराजय हुई। सेना ने उसे पकड़ लिया तथा बन्दी बनाकर जहाँगीर के सम्मुख उपस्थित किया। जहाँगीर ने उसे कारावास में डलवा दिया तथा उसके सभी पक्षपातियों की बर्बरतापूर्वक हत्या कर दी।

सिक्खों के गुरु अर्जुनदेव को भी सम्राट ने दरबार में बुलवाया तथा उनसे खुसरो की सहायता करने का कारण पूछा। गुरु अर्जुनदेव ने उत्तर दिया— ''सम्राट अकबर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए ही मैंने राजकुमार की सहायता की थी, इसलिए नहीं कि वह तेरा सामना कर रहा था''। किन्तु जहाँगीर ने उनकी सारी जागीर छीनकर उन्हें जेल में डाल दिया, जहाँ अनेक यातनाएँ देने के उपरान्त उसने उन्हें मरवा डाला। गुरु के इस कार्य से जहाँगीर अत्यन्त कुपित हुआ। उसने गुरु को दो लाख रुपया जुर्माना देने तथा गुरुग्रन्थसाहिब में से कुछ गीतों को निकालने की आज्ञा दी, जिसे गुरु ने ठुकरा दिया, जिसके फलस्वरूप उन्हें मृत्युदण्ड दिया गया। सम्राट का यह कार्य विवेकशून्य था। सिक्ख विचार परम्परा के अनुसार जहाँगीर ने अपने हठधर्म के आवेश में आकर ही यह दुष्कृत्य किया। सम्भवत: यह आरोप निराधार है परन्तु यह बात सत्य है कि गुरु के वध से सिक्खों और मुगलों के बीच भेदभाव उत्पन्न हो गए, जिसके परिणामस्वरूप औरंगजेब के समय में विद्रोह की आग भड़क उठी।

(ii) प्लेग का प्रकोप– 1616 ई० में जहाँगीर के काल में भयंकर प्लेग का प्रकोप हुआ और उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक फैल गया। आगरा, लाहौर तथा कश्मीर में इसका विशेष प्रकोप था। जहाँगीर ने लिखा है कि यह बीमारी चूहों के द्वारा फैली थी। रोग का इलाज न हो सकने के कारण गाँव-के-गाँव तबाह हो गए। आठ वर्ष तक यह रोग चलता रहा तथा इससे भीषण जन-क्षति हुई।

जहाँगीर के शासनकाल की प्रमुख उपलब्धियाँ– यद्यपि जहाँगीर में अकबर जैसी सैनिक प्रतिभा नहीं थी तथापि उसने कुछ सैनिक अभियान भी किए। उसके समय की सबसे प्रमुख घटना थी— मेवाड़ पर विजय एवं दक्षिण में सैनिक अभियान। जहाँगीर के समय में मुगलों को सैनिक क्षति भी उठानी पड़ी। कंधार उनके हाथों से निकल गया। जहाँगीर के प्रमुख विजय अभियान निम्नलिखित थे—

(i) मेवाड़ विजय– अकबर ने अपने समय में मेवाड़ को जीतने का निरन्तर प्रयत्न किया था, परन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। महाराणा प्रताप के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी महाराणा अमर सिंह ने भी अपने पिता की नीति को ही जारी रखा। अकबर के पश्चात् सलीम जब जहाँगीर के नाम से सम्राट बना तो वह मेवाड़ को जीतने के लिए लालायित हो उठा। 1605 ई० में ही जहाँगीर ने अपने द्वितीय पुत्र परवेज और आसफ खाँ जफरबेग के नेतृत्व में 20,000 अश्वारोहियों की एक सेना मेवाड़ विजय हेतु भेजी। देबारी की घाटी में युद्ध हुआ जो अनिर्णायक रहा। इसी बची खुसरो के विद्रोह के कारण परवेज को सेना सहित वापस बुला लिया। दो वर्ष पश्चात् 1608 ई० में महावत खाँ के नेतृत्व में एक सेना फिर मेवाड़ के लिए भेजी गई। लेकिन वह भी विशेष सफलता हासिल न कर सकी। जहाँगीर ने 1609 ई० में मेवाड़ का नेतृत्व अब्दुल्ला खाँ के सुपुर्द किया। अब्दुल्ला खाँ अभियान भी मुगलों को सफलता नहीं दिला सका। 1611 ई० में मऊ का राजा बसु भी मेवाड़ में विफल रहा। अत: 7 सितम्बर, 1613 में जहाँगीर स्वयं शत्रु पर दबाव डालने के उद्देश्य से अजमेर पहुँचा। मेवाड़ के युद्ध के संचालन का भार अजीज कोका और शाहजादा खुर्रम को सौंपा गया। इन दोनों के आपसी सम्बन्ध कटु थे। अत: अजीज कोका को वापस बुला लिया गया। अब केवल खुर्रम पर आक्रमण का पूर्ण उत्तरदायित्व था। खुर्रम ने मेवाड़ में बर्बादी मचा दी। राणा का रसद पहुँचाना भी कठिन हो गया। बाध्य होकर अमर सिंह ने संधि करने का निर्णय लिया। राणा ने अपने मामा शुभकर्ण एवं विश्वासपात्र हरदास झाला को सन्धि के लिए भेजा। जहाँगीर ने भी राजपूतों से संधि करना स्वीकार किया और 1615 ई० में निम्नलिखित शर्तों पर मुगल व मेवाड़ में संधि हो गई—

(क) राणा ने सम्राट जहाँगीर की अधीनता स्वीकार की।

(ख) बदले में जहाँगीर ने चित्तौड़ के किले सहित मेवाड़ का समस्त भू-प्रदेश राणा को लौटा दिया। शर्त यह रखी कि चित्तौड़ के किले की मरम्मत व किलेबन्दी न की जाएगी।

(ग) राणा को सम्राट के दरबार में उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया गया। यह निश्चय हुआ कि राणा का युवराज कर्ण अपनी एक हजार सेना के साथ मुगल सम्राट की सेवा में रहेगा।

(घ) अन्य राजपूत नरेशों की भाँति राणा को मुगलों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी बाध्य नहीं किया गया।

इस प्रकार मेवाड़ और मुगलों का दीर्घकालीन संघर्ष समाप्त हुआ। कुछ लेखकों ने राणा अमरसिंह को अपने वंशानुगत शत्रु के समक्ष अपनी स्वाधीनता खो देने का दोषी ठहराया है। परन्तु यह आरोप सर्वथा निराधार है। मेवाड़ जैसी एक छोटी-सी रियासत के लिए साधन-सम्पन्न मुगल साम्राज्य से टक्कर लेना कहाँ तक सम्भव होता, उसे एक-न-एक दिन तो झुकना ही था। जैसा कि **डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव** ने लिखा है कि ''मेवाड़ की

परिस्थिति में शांति अपेक्षित थी और 1615 ई० की संधि में उसे वह शांति, सम्मान और गौरव के साथ मिली....। इस प्रकार संकटग्रस्त देश के लिए इतनी अपेक्षित शांति संग्रह के इस सुवर्ण अवसर को राणा अमरसिंह यदि उपयोग में न लाते तो यह अविवेकपूर्ण कार्य होता।''

(ii) बंगाल के विद्रोह का दमन– अकबर ने यद्यपि बंगाल विजय कर लिया था किन्तु अफगान शक्ति का वह पूर्णतया दमन नहीं कर सका था। अकबर की मृत्यु के उपरान्त 1612 ई० में अपने नेता उस्मान खाँ के नेतृत्व में उन्होंने पुन: विद्रोह किया। बंगाल के सूबेदार इस्लाम खाँ ने बड़ी वीरतापूर्वक शत्रुओं का सामना किया, फलस्वरूप युद्ध-भूमि में लड़ते-लड़ते उस्मान खाँ मारा गया। जहाँगीर ने पराजित अफगानों के साथ उदारता का व्यवहार किया तथा उन्हें अपनी सेना के उच्च पदों पर आसीन किया।

(iii) काँगड़ा विजय– उत्तर-पूर्व पंजाब में काँगड़ा की सुन्दर घाटी है जिस पर एक सुदृढ़ किला बना हुआ था। अकबर के समय में पंजाब के सूबेदार हसन कुली खाँ ने इसे जीतने का प्रयास किया था परन्तु वह असफल हुआ था। 1620 ई० में शाहजादा खुर्रम के नेतृत्व में राजा विक्रमाजीत ने इस किले का घेरा डाला और लगभग चार माह के घेरे के पश्चात् इस पर अधिकार कर लिया।

(iv) किश्तवार विजय (1622 ई०)– कश्मीर में किश्तवार एक छोटी-सी रियासत थी। यद्यपि कश्मीर मुगल साम्राज्य का अंग था, किन्तु किश्तवार में स्वतन्त्र हिन्दू राजा राज्य कर रहा था। जहाँगीर ने कश्मीर के सूबेदार दिलावर खाँ को किश्तवार विजय करने का आदेश दिया। यद्यपि हिन्दू वीरतापूर्वक लड़े किन्तु अन्त में उन्हें पराजित होना पड़ा और 1622 ई० में किश्तवार मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

(v) कंधार विजय– भारत के इतिहास में उत्तर-पश्चिमी सीमा का विशेष महत्त्व रहा है, क्योंकि प्राचीन काल से ही विदेशियों के आक्रमण सदैव इसी ओर से होते रहे। साथ ही कंधार प्राचीनकाल से व्यवसाय तथा व्यापार के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मुगल सम्राट कंधार के प्रति विशेष रूप से सजग थे। बाबर ने सर्वप्रथम 1522 ई० में कंधार पर विजय प्राप्त की थी। उसकी मृत्यु तक कंधार मुगल साम्राज्य में था। हुमायूँ के समय में कंधार पर उसके भाई कामरान का अधिकार रहा, जिसके दुष्परिणाम हुमायूँ को जीवनभर भुगतने पड़े।

ईरान के शाह ने हुमायूँ की सहायता करने का वचन इस शर्त पर दिया था कि वह कंधार ईरान के हवाले कर देगा, किन्तु कंधार विजय करके हुमायूँ ने उसे ईरान के शाह को लौटाने में टालमटोल की और उसे अपने अधीन ही रखा। उसकी मृत्यु के पश्चात् 1558 ई० में कंधार पर ईरान ने अधिकार कर लिया। अकबर से भयभीत होकर 1564 ई० में कंधार अकबर को सौंप दिया गया था। अकबर की मृत्यु के उपरान्त ईरान के सम्राट शाह अब्बास ने 1606 ई० में कुछ ईरानियों को कंधार पर आक्रमण करने के लिए भेजा किन्तु मुगल सेनापति शाहबेग खाँ ने उन्हें भगा दिया। टर्की से युद्ध में फँसे रहने के कारण इस समय शाह अब्बास पूरी शक्ति के साथ मुगलों से युद्ध करने में असमर्थ था।

1622 ई० में सुअवसर देखकर शाह ने कंधार का घेरा डाल दिया। कंधार का मुगल सेनापति 45 दिन घेरे में रहने के बाद परास्त हुआ। जहाँगीर ने शहजादा परवेज को कंधार पर आक्रमण करने का आदेश दिया, किन्तु आसफ खाँ के हस्तक्षेप से यह स्थगित कर दिया गया। नूरजहाँ खुर्रम को राजधानी से दूर रखना चाहती थी इसलिए उसने जहाँगीर द्वारा खुर्रम को कंधार जाने की आज्ञा दिलवा दी। परन्तु खुर्रम इस समय राजधानी से दूर नहीं रहना चाहता था अत: उसने सम्राट की आज्ञा का पालन करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। दरबार के षड्यन्त्रों का लाभ ईरान के शाह अब्बास ने उठाया तथा कंधार पर अधिकार कर लिया। इससे मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा पर गहरा आघात पहुँचा। जहाँगीर कंधार को पुन: प्राप्त नहीं कर सका।

(vi) अहमदनगर विजय– जहाँगीर के समय में दक्षिण भारत की राजनीति पर मलिक अम्बर छाया हुआ था। मलिक अम्बर बुहत फुर्तीला, संगठनशील और सैनिक योग्यता प्राप्त सरदार था। वह अहमदनगर के उन समस्त प्रदेशों पर पुन: अधिकार करने का प्रयास कर रहा था, जिन्हें अकबर के समय में मुगलों ने अधिगृहित कर लिया था। अत: 1608 ई० में जहाँगीर ने अब्दुर्रहीम खानखाना के नेतृत्व में एक विशाल सेना भेजी, परन्तु अब्दुर्रहीम खानखाना मलिक अम्बर के विरुद्ध कोई सफलता प्राप्त न कर सका। इसके पश्चात् खान-ए-जहाँ लोदी तथा अब्दुल्ला खाँ को मलिक अम्बर के विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजा, लेकिन इन दोनों को भी मलिक अम्बर ने पराजित कर दिया। अत: निराश होकर जहाँगीर ने एक बार पुन: अब्दुर्रहीम खानखाना को भेजा। इस दूसरे अभियान में बहुत सीमा तक खानखाना ने अपने सम्मान की सफलतापूर्वक रक्षा की, लेकिन उस पर विरोधी पक्ष से घूस लेने का आरोप लगाया गया, जिसके कारण नूरजहाँ के परामर्श के अनुसार 1616 ई० के प्रारम्भ में अहमदनगर अभियान हेतु खानखाना की जगह खुर्रम को नियुक्त किया गया। खुर्रम की शक्ति से भयभीत होकर मलिक अम्बर ने सन्धि कर ली। जहाँगीर ने खुर्रम की सफलता से खुश होकर उसे 'शाहजहाँ' की उपाधि प्रदान की।

खुर्रम (शाहजहाँ) और मलिक अम्बर की सन्धि अधिक दिन तक नहीं चली। 1620 ई० में मलिक अम्बर ने सन्धि का उल्लंघन कर खोए हुए प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। जहाँगीर को जब यह समाचार मिला तो उसने पुन: शाहजहाँ को अहमदनगर भेजा। शाहजहाँ ने मलिक अम्बर को सन्धि के लिए बाध्य किया। अन्त में 1626 ई० में मलिक अम्बर की मृत्यु के पश्चात् अहमदनगर पर मुगलों का अधिकार हो गया।

2. नूरजहाँ के मुगल राजनीति पर प्रभाव की विवेचना कीजिए।

उ०– नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभाव–

(i) राजनीति में नूरजहाँ का प्रवेश– मई 1611 ई० में जहाँगीर से नूरजहाँ ने विवाह कर लिया। विवाह के बाद जहाँगीर, जो आरम्भ से ही विलासी प्रवृत्ति का था, और भी विलासिता में डूब गया तथा राज्य की सम्पूर्ण बागडोर उसने इस महत्वाकांक्षी महिला के हाथ में छोड़ दी। राज्य जहाँगीर के नाम पर चलता था किन्तु वास्तविक शासक **नूरजहाँ** थी। नूरजहाँ के शासनकाल को, **डॉ० बेनी प्रसाद** के अनुसार दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— प्रथम काल-1611 से 1622 ई० तक तथा द्वितीय काल-1622 से 1627 ई० तक।

(क) प्रथम काल (1611 से 1622 ई० तक)– नूरजहाँ के प्रभुत्व का प्रथम काल मुगल साम्राज्य के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ। इस समय नूरजहाँ के गुट में दरबार के प्रभावशाली व्यक्ति सम्मिलित थे। स्त्री स्वभाव के अनुसार नूरजहाँ पक्षपात एवं गुटबन्दी की नीति की अनुयायी थी। इस काल में उसके गुट में उसका पिता ऐतमादुद्दौला, उसका भाई आसफ खाँ तथा शहजादा खुर्रम (आसफ खाँ का दामाद) सम्मिलित थे। यह गुट दरबार में सबसे प्रभावशाली था तथा 1611 से 1622 ई० तक राज्य की सम्पूर्ण बागडोर इस गुट के हाथ में रही थी।

(ख) द्वितीय काल (1622 से 1627 ई० तक)– नूरजहाँ के प्रभुत्व के प्रथम काल के समान, उसका द्वितीय काल गौरवपूर्ण व लाभकारी सिद्ध न हो सका। इसके विपरीत, यह काल षड्यन्त्रों, विद्रोहों तथा उपद्रवों का काल बन गया। इसका प्रमुख कारण नूरजहाँ की महत्वाकांक्षा थी। खुर्रम के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर नूरजहाँ उससे ईर्ष्या करने लगी थी तथा खुर्रम के विरुद्ध जहाँगीर के कान भरने लगी, परिणामस्वरूप खुर्रम ने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। नूरजहाँ को स्वामिभक्त सेवकों के प्रति भी संदेह रहता था तथा वह उनके उत्थान को भी सहन नहीं कर सकती थी। उसकी इस प्रवृत्ति के कारण ही महावत खाँ जैसे योग्य एवं स्वामिभक्त सेनापति को भी विद्रोह करने के लिए विवश होना पड़ा। इन दोनों विद्रोहों का परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए बड़ा भयंकर तथा हानिकारक सिद्ध हुआ। अत: मुगल साम्राज्य षड्यन्त्रों, कुचक्रों तथा विद्रोहों का अड्डा बन गया। कंधार का मुगल हाथों से निकल जाना नूरजहाँ का सबसे हानिकारक परिणाम था।

(ii) राजनीतिक प्रभाव– राजनीतिक तथा शासन सम्बन्धी दृष्टिकोण से नूरजहाँ का मुगल साम्राज्य पर घातक प्रभाव पड़ा। 1611 से 1622 ई० तक वह अपने गुट का नेतृत्व करती रही। उसने अपने पक्षपातियों को उच्च-से-उच्च पद प्रदान किए तथा विरोधियों का विनाश किया। उसने योग्यता से अधिक रक्त-सम्बन्ध का ध्यान रखा तथा अपने पिता के परिवार को एक संगठित दल बना दिया। जब तक उसका पिता जीवित रहा, नूरजहाँ को सदैव उचित परामर्श देता रहता था। वह उसकी महत्वाकांक्षाओं को बढ़ने नहीं देता था, परन्तु 1622 ई० में अपने पिता एतमादुद्दौला की मृत्यु के उपरान्त नूरजहाँ पूर्णत: निरंकुश हो गई तथा उसने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना आरम्भ कर दिया।

नूरजहाँ अभी तक खुर्रम का पक्षपात करती आई थी, परन्तु जब नूरजहाँ ने शेर अफगन से उत्पन्न अपनी पुत्री लाडली बेगम का विवाह जहाँगीर के सबसे छोटे पुत्र शहरयार के साथ कर दिया तब खुर्रम के अनेक बार हिसार-फिरोजा की जागीर के लिए प्रार्थना-पत्र भेजने पर भी उसने यह जागीर शहरयार को दे दी। वास्तव में, नूरजहाँ शहरयार को जहाँगीर का उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी, जिसका परिणाम खुर्रम के विद्रोह के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

(क) खुर्रम का विद्रोह– जहाँगीर के चार पुत्र थे— खुसरो, परवेज, खुर्रम तथा शहरयार। खुसरो की मृत्यु के उपरान्त खुर्रम ही सबसे योग्य शहजादा था। शहरयार बिल्कुल अयोग्य तथा निकम्मा था तथा परवेज मद्यप एवं विलासी था। अत: सिंहासन के दो दावेदार थे- खुर्रम तथा शहरयार। खुर्रम ने अभी तक मुगल साम्राज्य की बड़ी सेवाएँ की थी। वह जहाँगीर का सबसे वीर तथा कुशल पुत्र था, किन्तु नूरजहाँ खुर्रम को अपने मार्ग का काँटा मानकर उसे मार्ग से हटाने के लिए उत्सुक थी।

इसी समय ईरान के शाह ने कंधार पर अधिकार कर लिया। नूरजहाँ ने जहाँगीर से कहा कि कंधार विजय के अभियान का दायित्व खुर्रम को सौंप देना चाहिए परन्तु खुर्रम जानता था कि नूरजहाँ कंधार विजय के बहाने उसे राजधानी से दूर हटा देना चाहती है, अत: उसने कंधार जाने से इनकार कर दिया। नूरजहाँ ने इसे सुअवसर मानकर जहाँगीर के कान भरने आरम्भ कर दिए कि खुर्रम विद्रोही है तथा उसने सम्राट की आज्ञा की अवहेलना की है। खुर्रम ने नूरजहाँ की इस नीति से कुपित होकर विद्रोह कर दिया। खुर्रम का यह सन्देह ठीक ही था कि उसकी अनुपस्थिति में शहरयार को उच्च पद दे दिए जाएँगे और उसे युद्ध-क्षेत्र में मरवा डाला जाएगा।

डॉ० बेनी प्रसाद ने स्वीकार किया है कि शहजादा खुर्रम की अनुपस्थिति में, नूरजहाँ अवश्य अपने पशुतुल्य दामाद शहरयार को उन्नति देकर राजकुमार (शाहजहाँ) की स्थिति को नीचा कर देती। इसी डर के कारण खुर्रम को फारस वालों के विरुद्ध युद्ध न करके अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करना पड़ा। इस प्रकार कंधार मुगल सम्राज्य से हमेशा के लिए निकल गया। इस हानि के लिए नूरजहाँ ही सबसे अधिक उत्तरदायी थी।

(ख) महावत खाँ का विद्रोह– खुर्रम के विद्रोह का दमन करके नूरजहाँ ने महावत खाँ की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने का प्रयास किया। खुर्रम के विद्रोह करने के पश्चात् स्वामिभक्त महावत खाँ, परवेज का पक्षपाती बन गया था।

नूरजहाँ ने महावत खाँ को काबुल का सूबेदार नियुक्त करके काबुल भिजवा दिया और उसके स्थान पर **खाने जहाँ लोदी** को परवेज का वकील नियुक्त कर दिया। यद्यपि परवेज इस आज्ञा का उल्लंघन करने को तेयार था लेकिन महावत खाँ तुरन्त काबुल की ओर रवाना हो गया।

यह पूर्णत: सत्य है कि महावत खाँ को विद्रोही बनाने के लिए नूरजहाँ उत्तरदायी थी। इस प्रकार जिस व्यक्ति को साम्राज्य के शत्रुओं के विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सकता था, वह स्वयं शत्रु बन गया। इस विद्रोह ने मुगल साम्राज्य की जड़ें हिला दीं।

(iii) जहाँगीर की मृत्यु– 1620 ई० से जहाँगीर का स्वास्थ्य निरन्तर खराब होता जा रहा था। निरन्तर कश्मीर की यात्राएँ और वहाँ की जलवायु भी उसके स्वास्थ्य को ठीक नहीं कर सकी थी। मार्च, 1627 में वह स्वास्थ्य लाभ के लिए फिर कश्मीर गया, लेकिन उसके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। अत: वह पुन: लाहौर की तरफ गया, किन्तु रास्ते में ही उसकी तबीयत खराब हो गई और 7 नवम्बर, 1627 को 58 वर्ष की आयु में भीमवार नामक स्थान पर जहाँगीर की मृत्यु हो गई। लाहौर के निकट शाहदरे के सुन्दर बाग में उसे दफना दिया गया, जहाँ नूरजहाँ ने एक सुन्दर मकबरा बनवाया।

3. शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल स्थापत्य कला पर क्या प्रभाव पड़ा?

उ०– शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल स्थापत्य कला पर प्रभाव– शाहजहाँ एक 'शानदार' सम्राट था तथा उसे भवन-निर्माण-कला से विशेष अनुराग था। यद्यपि उसके काल में सभी ललित कलाओं तथा साहित्य का पोषण हुआ किन्तु भारत में भवन-निर्माण-कला का जितना विकास उसके काल में हुआ उतना और कभी नहीं हुआ। यद्यपि अकबर के समय में भी अनेक कलाकृतियों का निर्माण हुआ किन्तु सौन्दर्य के दृष्टिकोण से शाहजहाँ के समय की कला ने उसके महान पितामह के समय की कला को भी पीछे छोड़ दिया। अकबर द्वारा परिश्रमपूर्वक स्थापित साम्राज्य का वास्तविक उपभोग शाहजहाँ ने ही किया। यद्यपि स्वर्ण-युग का आरम्भ जहाँगीर के काल में ही हो गया था किन्तु कला-क्षेत्र में जहाँगीर नहीं वरन् शाहजहाँ का काल स्वर्ण युंग माना गया है। परन्तु अनेक विद्वानों में इसमें मतभेद भी हैं। उसके काल की कलाकृतियाँ आज भी उसके समय के गौरव का गान कर रही हैं। विद्वानों के मत में शाहजहाँ यदि और कुछ निर्मित न करवाकर केवल ताजमहल ही निर्मित करवा देता तब भी उसका काल कला का स्वर्ण-युग ही माना जाता।

शाहजहाँ के शासन काल में मुगल स्थापत्य कला में योगदान निम्नलिखित है—

(i) ताजमहल– ताजमहल शाहजहाँ की अमूल्य तथा सुन्दरतम कृति है, जिसे आगरा में यमुना के तट पर सफेद संगमरमर से निर्मित किया गया। ताजमहल का निर्माण उसने अपनी प्रिय पत्नी मुमताजमहल की स्मृति में करवाया था तथा इसी सुन्दर मकबरे में मुमताजमहल को दफनाया गया था। अन्त में शाहजहाँ की कब्र भी यहीं (मुमताजमहल की कब्र के समीप) बनाई गई। तत्कालीन इतिहासकार **अब्दुल हमीद लाहौरी** के अनुसार— ''ताजमहल 50 लाख रुपये से 12 वर्ष में बनकर तैयार हुआ था। 1631 ई० में मुमताज की मृत्यु हुई तथा उसके एक वर्ष पश्चात् ही उसका निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया था।'' **ट्रेवेनियर** के अनुसार— ''इस इमारत (ताजमहल) पर तीन करोड़ रुपया व्यय हुआ तथा 1653 ई० में 22 वर्ष पश्चात यह बनकर तैयार हुई। 20,000 श्रमिकों ने प्रतिदिन इस भवन के निर्माण में योगदान दिया।'' आज भी ताजमहल संसार की आश्चर्यजनक कलाकृतियों में अपना उच्च स्थान रखता है।

(ii) मुसम्मन बुर्ज– आगरा के दुर्ग में बादशाह ने कई संगमरमर के भवन बनवाए, जो उसके हरम की स्त्रियों के लिए थे। जहाँआरा तथा रोशनआरा के निवास के लिए भी उसने भवन बनवाए। इन्हीं भवनों के पास उसने मुसम्मन बुर्ज का निर्माण कराया, जो शुद्ध संगमरमर द्वारा निर्मित है तथा बहुमूल्य पत्थरों से अलंकृत है। यहीं पर ताजमहल को देखते-देखते सम्राट ने अपने प्राण त्यागे थे।

इसके अतिरिक्त झरोखा-दर्शन, दौलतखाना-ए-खास उसकी अन्य इमारतें हैं, जो उसने आगरा के दुर्ग में निर्मित करवाई। जहाँआरा के कहने पर उसने एक बड़ा चौक तथा उसमें लाल पत्थरों की जामा मस्जिद निर्मित करवाई, जो 1648 ई० में, पाँच वर्ष में निर्मित हुई।

(iii) मोती मस्जिद– आगरा के दुर्ग में बादशाह ने एक छोटी-सी मस्जिद का निर्माण करवाया, जो शुद्ध संगमरमर की बनी है तथा मोती मस्जिद के नाम से विख्यात है, क्योंकि मोती के समान सफेद पत्थरों द्वारा इसका निर्माण हुआ था। यह मस्जिद अपनी सादगी एवं सौन्दर्य के लिए विख्यात है तथा विद्वानों के मत में यह संसार का सर्वोत्तम पूजा-स्थल मानी जाती है।

(iv) जामा मस्जिद– लाल किले के सामने शाहजहाँ ने जामा मस्जिद का निर्माण करवाया, जो भारत की सबसे बड़ी मस्जिद मानी जाती है। यह लाल पत्थर की बनी है तथा 6 वर्ष में इसका निर्माण किया गया था। मस्जिद के चारों ओर सीढ़ियाँ बनी हैं तथा इसमें दस हजार व्यक्ति सामूहिक रूप से नमाज पढ़ सकते हैं।

(v) शाहजहाँनाबाद– शाहजहाँ ने आगरा तथा फतेहपुर सीकरी को छोड़कर दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया तथा यमुना के किनारे उसने एक नवीन दिल्ली नगर का निर्माण कराया, जिसे उसने शाहजहाँनाबाद नाम दिया। यहाँ का किला लाल पत्थर द्वारा निर्मित है। इसके अन्दर की इमारतों में दीवान-ए-आम (जो लाल पत्थर द्वारा निर्मित है) तथा दीवान-ए-खास प्रमुख हैं। दीवान-ए-खास शुद्ध संगमरमर का बना है, जिसकी छतों पर सोने का बहुमूल्य तथा सुन्दर काम किया गया है।

दीवान-ए-खास को वास्तव में पृथ्वी का स्वर्ग कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें संगमरमर की बनी एक ऊँची चौकी पर 'मयूर सिंहासन' रखा रहता था, जिसे 'तख्त-ए-ताउस' कहा जाता था। यह बादशाह की एक अनुपम कृति थी। दिल्ली के लाल किले की अन्य इमारतों में रंगमहल, मुमताजमहल तथा सावन-भादों प्रमुख हैं। सावन-भादों में सम्राट सावन व भादों के महीनों में विहार करता था।

(vi) जहाँगीर का मकबरा– लाहौर से चार मील दूर शाहदरा में शाहजहाँ ने अपने पिता का छोटा किन्तु भव्य मकबरा निर्मित करवाया।

(vii) मयूर सिंहासन– सुन्दरतम कलाकृतियों में, जिनका निर्माण शाहजहाँ के काल में हुआ, मयूर सिंहासन का उच्च स्थान है। इस सिंहासन के निर्माण में 14 लाख रुपये का सोना खर्च हुआ। इसकी लम्बाई सवा-तीन गज, चौड़ाई दो गज तथा ऊँचाई 5 गज थी। इस सिंहासन में 12 स्तम्भ तथा जवाहरातों से निर्मित दो मोर थे। सात वर्ष में यह बनकर तैयार हुआ। 1739 ई० में नादिरशाह ने जब भारत पर आक्रमण किया तो वह इस बहुमूल्य सिंहासन को अपने साथ ले गया।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण भवनों के अतिरिक्त शाहजहाँ ने कुछ अन्य कलाकृतियों का भी निर्माण करवाया। दिल्ली मे उसने निजामुद्दीन औलिया का मकबरा बनवाया, जिसमें संगमरमर का भी प्रयोग किया गया है। अजमेर में उसने एक मस्जिद तथा एक सुन्दर मकबरे का निर्माण कराया, जो शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के पश्चिम की ओर स्थित है। शाहजहाँ को सुन्दर उद्यानों से भी विशेष प्रेम था। उसने अपनी सभी इमारतों में सुन्दर उद्यान बनवाए। कश्मीर के शालीमार बाग तथा चश्मेशाही और लाहौर के शालीमार बाग उसी की देन हैं।

4. ''शाहजहाँ का शासनकाल मुगल शासन का स्वर्ण-युग था, पर उसमें पतन के चिह्न भी थे।'' इस कथन की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिए।

या शाहजहाँ के शासनकाल के पक्ष व विपक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिए।

उ०– शाहजहाँ का राज्यकाल स्वर्ण-युग था अथवा नहीं, इस पर सब विद्वान एकमत नहीं हैं। बादशाह के समकालीन इतिहासकारों तथा विदेशी यात्रियों ने इस युग को स्वर्ण-युग कहकर सम्बोधित किया है। अब्दुल हमीद लाहौरी, खाफी खाँ, ट्रेवेनियर, वूल्जले हेग, हण्टर, लेनपूल तथा एलपिन्सटन आदि इतिहासकार इस युग को शान्ति, समृद्धि तथा साहित्य एवं कला का स्वर्ण-युग मानते हैं।

दूसरी ओर पीटरमण्डी, बर्नियर और स्मिथ ने शाहजहाँ के युग का दूसरा पक्ष लिया है, जो अन्धकारपूर्ण है तथा उस पक्ष को ध्यान में रखकर शाहजहाँ के काल को स्वर्ण-युग नहीं कहा जा सकता। इन इतिहासकारों का कथन है कि यद्यपि शाहजहाँ का दरबार, उसकी कलाकृतियों तथा साहित्य की उन्नति की चकाचौंध में कोई भी व्यक्ति उस काल को स्वर्ण-युग मान सकता है किन्तु यदि उस चकाचौंध से हटकर साधारण जनता की स्थिति का अध्ययन किया जाए तो यह युग स्वर्ण-युग के स्थान पर अन्धकार का युग कहलाने योग्य है।

इस प्रकार शाहजहाँ के काल के विषय में विद्वानों के दो विरोधी मत हैं—

शाहजहाँ का युग स्वर्ण-युग था– अधिकांश विद्वानों ने शाहजहाँ के युग को स्वर्ण-युग की संज्ञा दी है। इनका मत है कि अकबर द्वारा स्थापित सुदृढ़, शक्तिशाली तथा सुव्यवस्थित विशाल साम्राज्य में शान्तिकालीन समृद्धि तथा गौरव के फूल शाहजहाँ के काल में ही विकसित हुए। इस मत के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए गए हैं—

(i) शान्ति और सुव्यवस्था का युग– शाहजहाँ के काल में अन्य सभी मुगल सम्राटों की अपेक्षा शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित रही। उसके आरम्भिक काल के दो-तीन विद्रोहों के अतिरिक्त उसका सम्पूर्ण राज्यकाल शान्तिपूर्ण था। राजपूत अभी तक मुगलों की अधीनता स्वीकार करते थे तथा मुगल सम्राटों के स्वामिभक्त थे। दक्षिण के शिया राज्यों ने मुगल सम्राट का संरक्षण स्वीकार कर लिया था। शाहजहाँ का साम्राज्य काफी विशाल था। सिन्ध से असम तक तथा अफगानिस्तान से गोआ तक उसका राज्य विस्तृत था। शाहजहाँ के काल में 30 वर्ष तक भीषण युद्धों से देश सुरक्षित रहा। शाहजहाँ अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था। चोर तथा डाकुओं से सड़कें सुरक्षित थीं। यात्रियों की सुख-सुविधा का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। व्यापार उन्नत अवस्था में था तथा देश में चारों ओर सुख तथा शान्ति स्थापित थी। **लेनपूल** का मत है— ''शाहजहाँ अपनी उदारता और कृपा के लिए प्रसिद्ध था और इसी कारण वह अपनी प्रजा का बड़ा प्रिय था।''

(ii) सड़कों की व्यवस्था– मुगल राजधानी को सड़कों द्वारा प्रान्तों से जोड़ दिया गया था। एक सड़क पूर्व दिशा की ओर बंगाल को तथा पश्चिम की ओर पेशावर तक जाती थी, एक अन्य सड़क राजपूताना होकर अहमदाबाद तक और वहाँ से दक्षिण को पहुँचती थी। एक अन्य सड़क मालवा से बुरहानपुर तक और वहाँ से दक्षिण को पहुँचती थी। इन सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्षों के अतिरिक्त सरायें बनवाई गई थीं, जिससे यात्रियों को आवागमन की सुविधा प्राप्त हो गई थी। सड़कों की सुरक्षा की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया गया था, जिससे व्यापारी और यात्री निडर होकर अपना-अपना कार्य करते रहें। चोर-डाकुओं से इन सड़कों की सुरक्षा-व्यवस्था के लिए 'फौजदार' नियुक्त होते थे।

शाहजहाँ ने मार्गों को सुरक्षित करने का यथासम्भव प्रयत्न किया। इसके लिए उसने जगह-जगह सरायें बनवा दीं और यात्रियों की सुविधा के लिए उन सरायों में उचित व्यवस्था कराई गई। **मनूची** लिखता है— ''सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में प्रत्येक मार्ग पर यात्रियों के लिए बहुत-सी-सरायें बनी हुई हैं। प्रत्येक सराय एक दुर्ग मालूम होती है क्योंकि प्रत्येक सराय

के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें और बुर्ज हैं तथा बड़े-बड़े दरवाजे हैं। प्रत्येक सराय में हाकिम नियुक्त हैं, जो यात्रियों के सामान की सुरक्षा करवाते हैं और सामान सँभालने की चेतावनी देते हैं।''

(iii) समान न्याय का युग– शाहजहाँ न्यायप्रिय सम्राट था तथा न्याय के क्षेत्र में उसने अपने पूर्वजों की नीति का ही अनुसरण किया। वह अन्यायियों तथा अपराधियों को कठोर दण्ड देने में तथा निष्पक्ष न्याय करने में बिल्कुल नहीं हिचकता था। **मनूची** ने भी सम्राट की न्यायप्रियता की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। सर्वप्रधान न्यायाधीश स्वयं सम्राट होता था। सम्राट प्रारम्भिक मुकदमों तथा अपीलों दोनों को सुनता था। प्रान्तीय अदालतों के निर्णय की अपीलें भी सम्राट सुनता था। केन्द्र में न्याय हेतु सम्राट को सलाह देने के लिए 'काजी-उल-कुजात' और प्रान्तों में 'काजी' तथा 'मीरअदल' होते थे।

शाहजहाँ राजद्रोहियों को बन्दी बनाकर ग्वालियर, रणथम्भौर और रोहतास इत्यादि दुर्गों में भेज देता था।

(iv) समृद्धि का युग– समृद्धि तथा गौरव के दृष्टिकोण से शाहजहाँ का काल, मुगलकाल के चरमोत्कर्ष का काल था। देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था के कारण समृद्धि स्थापित हो चुकी थी। सूबों से केन्द्र सरकार को अत्यधिक आय होती थी। भूमि उपजाऊ होने के कारण भूमि-कर 45 करोड़ रुपये वार्षिक राजकोष में एकत्रित होता था। भूमि-कर के अतिरिक्त अन्य कर भी थे तथा आय, व्यय से कहीं अधिक होने के कारण राजकोष धन से भरा रहता था। नकद रुपयों के अतिरिक्त, बहुमूल्य पत्थर, हीरे, जवाहरात, मोती असंख्य संख्या में कोष में एकत्रित थे। मुर्शिद कुली खाँ के भूमि-सुधारों ने शाहजहाँ की भूमि-कर की आय, अकबर की आय से डेढ़ गुनी कर दी थी।

शाहजहाँ ने किसानों और कृषि की ओर ध्यान दिया था। उसने कश्मीर में बहुत-से अनुचित करों को समाप्त कर दिया। सिंचाई की समुचित व्यवस्था के लिए उसने नहरों के निर्माण-कार्य को प्रोत्साहन प्रदान किया। जागीर-प्रथा को, जो अकबर के समय में हटा दी गई थी, शाहजहाँ ने पुनः आरम्भ किया। साम्राज्य का 7/10 भाग जागीरदारों के सुपुर्द कर दिया गया था और सरकारी लगान एक-तिहाई से बढ़ाकर उपज का आधा कर दिया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकारी आय तो बढ़ गई परन्तु किसानों को बहुत कष्ट हुआ।

खाफी खाँ लिखता है- ''यद्यपि अकबर एक महान विजेता तथा नियम-निर्धारक था किन्तु राज्य की सीमाओं के सुप्रबन्ध तथा आर्थिक स्थिति और राज्य के विविध विभागों के सुशासन की दृष्टि से भारतवर्ष में शाहजहाँ के समकक्ष रखा जाने वाला अन्य कोई शासक नहीं हुआ।''

(v) व्यापार की उन्नति का युग– शाहजहाँ के काल में व्यापार की भारी उन्नति हुई। भारत तथा एशिया के विभिन्न भागों में व्यापारिक सम्पर्क स्थापित थे, जिससे भारत को अत्यधिक लाभ होता था। इस समय सुसंस्कृत अभिरुचि की वस्तुओं का निर्माण भारत में बहुतायत से होता था। कलमदान, शमादान, रेशमी वस्त्र, सूती-ऊनी वस्त्र, कालीन, अफीम, लाख आदि अनेक वस्तुएँ बाहर जाती थीं, जिनके बदले में सोना भारत में आता था। बंगाल और बिहार में सूती कपड़े बनाने का इतना अधिक कार्य होता था कि ये प्रदेश 'कपड़ों का देश' के समान दृष्टिगोचर होते थे। कपड़े की रँगाई तथा छपाई का कार्य बहुतायत से होता था तथा भारत के बने कपड़े यूरोप में विलास की सामग्री समझे जाते थे।

(vi) प्रजा के साथ पितृ तुल्य व्यवहार– तत्कालीन विदेशी यात्रियों एवं इतिहासकारों का मत है कि शाहजहाँ अपनी प्रजा का पालन इस प्रकार करता था जैसे कोई पिता अपनी सन्तान का। शाहजहाँ यद्यपि 'शानदार' सम्राट था परन्तु वह कठोर परिश्रमी भी था तथा राज्य के कार्यों की वह स्वयं देखभाल करता था, जिसके कारण उसकी प्रजा सुख, शान्ति तथा समृद्धि का अनुभव करती थी। दुर्भिक्ष पीड़ितों की रक्षा के लिए किए गए बादशाह के प्रयत्न उसकी प्रजावत्सलता के ज्वलन्त प्रमाण हैं। **अब्दुल हमीद लाहौरी** के कथनानुसार— ''उसने सत्तर लाख रुपये का लगान माफ कर दिया तथा भोजनालयों में भूखों को मुफ्त भोजन की व्यवस्था की। बादशाह ने 50,000 रुपये अहमदाबाद में दुर्भिक्ष पीड़ित जनता में बाँटने की आज्ञा प्रदान की। उसने प्रजा के हित के लिए एक नहर का निर्माण करवाया तथा सिंचाई के लिए अन्य नहरें बनवाई।''

लेनपूल ने लिखा है— ''शाहजहाँ अपनी उदारता और दया के लिए विख्यात था और इसीलिए वह अपनी प्रजा का इतना अधिक प्रिय बन गया था।''

(vii) साहित्य तथा भवन-निर्माण कला– कला तथा अन्य ललितकलाओं की उन्नति का युग— शाहजहाँ का काल साहित्य तथा ललितकलाओं के दृष्टिकोण से पूर्णतया स्वर्ण-युग कहलाने का अधिकारी है। उसके विपक्षी भी उसके काल की कलाकृतियों को देखकर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। शाहजहाँ द्वारा निर्मित दिल्ली (शाहजहानाबाद) का लाल किला तथा उसमें दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास, दिल्ली की जामा मस्जिद, आगरा की मोती मस्जिद तथा आगरा की ही सर्वोत्कृष्ट कृति ताजमहल, शाहजहाँ के युग को स्वर्ण-युग प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। दिल्ली, लाहौर और कश्मीर के बगीचे, उसके पौधों, फूलों और नहरों के प्रति प्रेम को प्रदर्शित करते हैं। इसके साथ ही अलीमर्दान खाँ 98 मील लम्बी रावी नहर काटकर लाहौर लाया और नहर-ए-शाहाब या पुरानी फिरोज नहर, जो मिट्टी से भर गई थी, को न केवल साफ किया गया, बल्कि नहर-ए-बहिश्त के नाम से इसे 60 मील से भी अधिक लम्बा कर दिया गया।

शाहजहाँ की सर्वश्रेष्ठ कृति आगरा में यमुना के तट पर बनी हुई ताजमहल नाम की इमारत है, जिसे उसने अपनी प्रिय पत्नी मुमताजमहल की स्मृति में बनवाया था, जिसकी मृत्यु 7 जून, 1631 ई० को बुरहानपुर में हुई थी। यह उसके दाम्पत्य-प्रेम कथा का अमर प्रतीक है।

ताजमहल के अतिरिक्त उसके द्वारा निर्मित आगरा की अनेक इमारतें उसके अलंकृत स्वभाव एवं श्रेष्ठ अभिरुचि का परिचय देती हैं, जिनमें मोती मस्जिद, मुसम्मन बुर्ज आदि इमारतें अपना अद्वितीय स्थान रखती हैं।

शाहजहाँ ने अपने कला-प्रेम के लिए अत्यधिक धन व्यय किया, जो उसकी समृद्धि, गौरव तथा शासन का सजीव प्रमाण है। जनता पर कर वृद्धि किए बिना ही सम्राट ने इतनी गौरवपूर्ण इमारतों का निर्माण करवाया।

(क) **लेखन-कला–** इस काल में चित्रकला की प्रगति के साथ-साथ लेखन-कला का भी काफी विकास हुआ। तत्कालीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों के अवलोकन से यह प्रमाणित होता है कि शाहजहाँ के शासनकाल में लोग लेखन कला में कितने सिद्धहस्त थे। मुहम्मद मुराद शिरीन इस समय का कुशल हस्त-लेखक था।

(ख) **चित्रकला–** शाहजहाँ को स्थापत्य-कला के साथ-साथ चित्रकला का भी शौक था। सम्राट के अतिरिक्त आसफ खाँ व शहजादे दाराशिकोह को भी चित्रकला से बहुत प्रेम था। इस काल के प्रमुख चित्रकारों में मीर हाशिम, अनूपमित्र तथा चित्रमणि विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काल के चित्रों में हस्तकौशल अधिक तथा शैली एवं भावों की विविधता कम पाई जाती है। इसके साथ ही इन चित्रों में स्वाभाविकता तथा मौलिकता का अभाव पाया जाता है।

(ग) **कला की उन्नति–** शाहजहाँ का 'मयूर सिंहासन' अथवा 'तख्त-ए-ताऊस' जो बहूमूल्य पत्थरों से जड़ित था तथा जिसके बीचों-बीच विश्वप्रसिद्ध हीरा कोहिनूर जगमगाता था उसके गौरव को चार चाँद लगा देने के लिए पर्याप्त था। मयूर सिंहासन इस काल की सुन्दर कृति थी।

(घ) **संगीत कला–** शाहजहाँ की संगीत में अत्यधिक अभिरुचि थी। वह स्वयं एक अच्छा संगीतज्ञ था और उसने अपने दरबार में अनेक संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान किया था। उसके समय में वाद्य-कला के क्षेत्र में उन्नति हुई थी। सुखसेन, एयाज और सूरसेन बीन बजाने में पारंगत थे। शाहजहाँ का ध्रुपद राग के प्रति विशेष अनुराग था। लाल खाँ नामक संगीतकार ध्रुपद राग का विशेष गायक था। हिन्दू गायकों में जगन्नाथ को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। वह एक उच्चकोटि का गायक था, जिसे सम्राट का कृपापात्र होने का सौभाग्य प्राप्त था।

(ङ) **साहित्य–** शाहजहाँ के शासन में साहित्य की भी बहुत उन्नति हुई थी। फारसी इस युग में राष्ट्रभाषा का स्थान रखती थी। इस समय फारसी दो शाखाओं में बँटी हुई थी। पहली शाखा विशुद्ध फारसी की थी और दूसरी शाखा भारतीय फारसी से सम्बन्धित थी। भारतीय फारसी भाषा के जन्मदाता अबुल फजल थे। इतिहास के अलावा काव्य-रचना भी इस काल में प्रमुख रूप से हुई। दरबारी इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी लिखता है कि गंगाधर तथा 'गंगालहरी' के प्रसिद्ध लेखक जगन्नाथ पण्डित, शाहजहाँ के राजकवि थे। कसीदों के लिखने का भी बहुत प्रचलन था। इस काल का एक महान शायर मिर्जा मुहम्मद अली था, जिसको 'साहब' का तखल्लुस प्राप्त था। गद्य साहित्य की भी उन्नति इस काल में बहुत हुई थी। अनेक सुन्दर पत्र भी इस काल में लिखे गए थे। संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद शहजादा दारा के प्रोत्साहन से हुआ था। भगवद्गीता, उपनिषद् तथा रामायण आदि का अनुवाद भी इसी काल में हुआ। औषधिशास्त्र, खगोल विद्या तथा गणित की भी बहुत प्रगति हुई थी। अताउल्ला इस काल का बहुत बड़ा गणितज्ञ था और मुल्ला फरीद विख्यात खगोल विद्या विज्ञानी था। हिन्दी काव्य एवं साहित्य के विकास के प्रति शाहजहाँ उदासीन न रहा। सुन्दर शृंगार, सिंहासन बत्तीसी, और बारहमासा के रचयिता प्रसिद्ध कवि सुन्दरदास उपनाम के महाकवि 'राय' थे। हिन्दी के सामयिक सर्वश्रेष्ठ कवि चिन्तामणि भी सम्राट के विशेष कृपापात्र थे। संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान कवीन्द्र आचार्य सरस्वती तथा उन्हीं की कोटि के अन्य संस्कृत विद्वानों से शाहजहाँ का दरबार अलंकृत था।

स्वर्ण युग के विपक्ष में तर्क– जब हम शाहजहाँ के काल के दूसरे पक्ष का अध्ययन करते हैं तो स्वर्ण की यह जगमगाहट फीकी पड़ जाती है तथा यह सन्देह होने लगता है कि क्या वास्तव में शाहजहाँ का काल स्वर्णकाल कहलाने का अधिकारी है। शाहजहाँ के काल के अन्धकारपूर्ण पक्ष का समर्थन अनेक इतिहासकारों ने किया है, जिनमें स्मिथ प्रमुख हैं। इन इतिहासकारों के मत में यह युग कदापि स्वर्ण युग कहलाने का अधिकारी नहीं है। अपने मत की पुष्टि में इन विद्वानों ने निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किए हैं—

(i) **भारी करों का भार–** शाहजहाँ को भवन निर्माण में अत्यधिक रुचि थी। उसने बहुमूल्य भवनों का निर्माण करवाया। उसका शानदार दरबार भी बहुमूल्य वस्तुओं से सुसज्जित रहता था। उसकी इन अभिरुचियों पर अपार धन व्यय हुआ। इसके अतिरिक्त उसकी विजय योजनाएँ; विशेषकर मध्य एशियाई नीति भी भारी अपव्यय का कारण बनी। इतना धन व्यय करने के लिए उसे जनता पर कर अधिक बढ़ाने पड़े तथा उसके अपव्यय का अधिकांश भार दरिद्र जनता को वहन करना पड़ा। एलफिन्स्टन तथा लेनपूल के मत में जनता को शाहजहाँ की मूल्यवान अभिरुचि की पूर्ति के लिए अपने परिश्रम से अर्जित धन का त्याग करना पड़ा होगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि शाहजहाँ का युग दरिद्र जनता के लिए स्वर्ण युग के विपरित अन्धकार युग था उसका दमन किया जाता था, सरकारी कर्मचारी उसे लूटते थे तथा जबरन कठोर परिश्रम करने पर विवश करते थे। गाढ़े खून की कमाई उन्हें राजकर के रूप में दे देनी पड़ती थी तथा गरीब व्यक्ति अधिकांशत: भूखों मरते थे। ऐसे युग को स्वर्ण युग कहना कदापि उचित प्रतीत नहीं होता है।

(ii) **शाहजहाँ की धार्मिक नीति–** यद्यपि शाहजहाँ ने औरंगजेब के समान धार्मिक अत्याचार तो नहीं किए तथापि उसके काल में धार्मिक पक्षपात का युग आरम्भ हो गया था। अनेक हिन्दुओं को लालच देकर बलात् मुसलमान बनाया गया था। हिन्दुओं के अतिरिक्त ईसाई भी उसकी असहिष्णुता के शिकार बन गए थे। कट्टर सुन्नी होने के कारण शियाओं के साथ उसका व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण न था। विधर्मियों के प्रति उसकी असहिष्णुता इस बात से प्रकट होती है कि शियाओं को उसके दरबार में उच्च स्थान प्राप्त न था।

(iii) **शिया राज्यों का विरोध–** बीजापुर तथा गोलकुण्डा के राज्यों को वह इसलिए नष्ट कर देना चाहता था कि वे शिया राज्य थे। यदि शाहजहाँ तथा औरंगजेब ने इन राज्यों को जीतने का प्रयास न किया होता तो ये राज्य मराठों के विरुद्ध मुगल सम्राटों के सहायक होते तथा मराठों का उत्कर्ष असम्भव हो गया होता। इस प्रकार शिया राज्यों के पतन तथा मराठों के उत्कर्ष में भी शाहजहाँ का योगदान रहा और कालान्तर में यह कारक मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बना।

(iv) **शासन-व्यवस्था में शिथिलता–** यद्यपि शाहजहाँ के काल में अधिकांशत: शान्ति विद्यमान थी किन्तु कुछ सूबों में सूबेदारों के अत्याचारों के कारण जनता की स्थिति शोचनीय थी। कर्मचारी रिश्वत लेते थे तथा प्रजा पर अत्याचार करके अधिक धन वसूल करते थे क्योंकि उन्हें अपने अधिकारियों को उपहार और भेंट देने के लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी और वह धन जनता से ही प्राप्त किया जा सकता था। सम्राट शाहजहाँ स्वयं प्रजावत्सल तथा न्यायी सम्राट था। परन्तु उसके काल में केन्द्र का अनुशासन ढीला पड़ने लगा था और प्रजा पर उसके कर्मचारियों द्वारा अत्याचार होते थे। शाहजहाँ के समय में बड़े-बड़े अमीरों का नैतिक एवं चारित्रिक पतन आरम्भ हो गया था जिससे उसकी सैन्य व्यवस्था का पतन हो गया था। उसके पास एक विशाल किन्तु अनुशासनहीन सेना थी जिसके कारण सेना पर अत्यधिक धन व्यय करके भी बादशाह अपनी विजय नीति में सर्वथा असफल रहा। उसके विलासी सैनिक तथा सेनापति मध्य एशिया एवं कंधार के दुर्गम प्रदेशों में रहने को प्रस्तुत नहीं थे। इसलिए सम्राट की मध्य एशियायी नीति असफल रही।

(v) **सामाजिक भेद-भाव–** शाहजहाँ के काल में समाज के दो वर्गों— धनी वर्ग तथा निर्धन वर्ग— के मध्य एक भयंकर खाई उत्पन्न हो चुकी थी। कुछ लोग इतने धनी थे कि अपनी विलासिता पर वे मनमना धन व्यय कर सकते थे। दूसरी ओर, अधिकांश जनता भूख से व्याकुल थी। उनके पास न शरीर ढ़कने के लिए वस्त्र थे और न खाने के लिए अनाज। मिट्टी अथवा घास-फूस के झोंपड़े में निवास करने वाले ये दु:खी जन अथक परिश्रम करके भी अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ रहते थे। अमीरों की विलासिता को पूरा करने के लिए उन्हें अपनी आय का अधिकांश भाग कर के रूप में देना पड़ता था। सम्राट तथा उसके कर्मचारियों के अत्याचारों के कारण उनमें असन्तोष जाग्रत होने लगा था जिसका परिणाम औरंगजेब के काल में अनेक विद्रोहों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। शाहजहाँ के काल में समाज का पतन आरम्भ हो चुका था तथा सामाजिक दशा को ध्यान में रखते हुए इस युग को स्वर्ण युग कदापि नहीं कहा जा सकता।

(vi) **आर्थिक पतन–** शाहजहाँ के युग में बाह्य जगमगाहट तथा वैभव ही देखने को मिलता है। इस काल मे यद्यपि बाह्य देशों से (विशेषकर मध्य एशिया, पश्चिम तथा यूरोप) व्यापारिक सम्पर्क स्थापित थे जिनसे भारत को आर्थिक लाभ होता था तथा राजकोष धन से भरा हुआ था तथापित मुगलकाल की आर्थिक दशा का पतन शाहजहाँ के काल में आरम्भ हो जाता है।

(vii) **शाहजहाँ का दुर्बल चरित्र–** शाहजहाँ के चरित्र पर अनेक शंकाएँ प्रकट की गई हैं। **बर्नियर** तथा **मनूची** इत्यादि विद्वानों ने उसे अत्यन्त कामातुर, विलासी और पाशविक वृत्ति का मनुष्य सिद्ध किया है। शाहजहाँ के चरित्र में निम्नलिखित दोष थे—

(क) **अपव्ययी–** शाहजहाँ ने अपने दाम्पत्य प्रेम की स्मृति में ताजमहल बनवाया था। विद्वानों का मत है कि इतना धन दूसरों की भलाई के कार्यों में भी खर्च किया जा सकता था। इसी प्रकार मयूर सिंहासन के निर्माण में भी बहुत-सा धन व्यय हुआ था। **लेनपूल** का विचार है कि उसके शौक पूरे करने के लिए बहुत अधिक धन असहाय जनता से वसूल किया गया था।

(ख) **अत्याचारी–** शाहजहाँ के चरित्र पर अत्याचारी होने का आरोप भी लगाया जाता है। उसने अपने सिंहासनारोहण हेतु अपने भाइयों का निर्ममतापूर्ण वध भी कराया था। शाहजहाँ ने ईसाइयों तथा सिक्खों पर भी अत्याचार किए थे।

(ग) **व्यभिचारी–** शाहजहाँ के चरित्र का यह भी एक गम्भीर दोष था, जिसके कारण उस युग को स्वर्णयुग मानने में संशय होता है। उस पर परनारी गमन का दोष लगाया गया है। यद्यपि यह दोष तत्कालीन समाज के राजवंशों के अधिकांश पुरुषों में दृष्टिगोचर होता है।

शाहजहाँ के अपव्ययी स्वभाव, उसकी महत्त्वाकांक्षी विजय-योजनाएँ, ऐश्वर्याशाली भवन तथा गौरवपूर्ण दरबार ने उसके पूर्वजों द्वारा संचित धन का सफाया कर दिया तथा निम्न एवं मध्यम वर्ग को करों के भार से लाद दिया। **बर्नियर** लिखता है— "गरीबों को इतने अधिक कर देने पड़ते थे कि उनके पास बहुधा जीवन की अनिवार्य आवश्यताएँ पूरी करने योग्य भी धन नहीं बच पाता था।" इस आर्थिक पतन का आरम्भ शाहजहाँ के काल में हुआ तथा औरंगजेब के काल में पूर्ण आर्थिक पतन के कारण मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया।

उपर्युक्त दो विरोधी विचारधाराएँ शाहजहाँ के युग के दो विरोधी पक्षों का प्रदर्शन करती हैं। कुछ विद्वानों के मत में शाहजहाँ का युग स्वर्णयुग था तथा कुछ विद्वान उसकी शासन-व्यवस्था के दोषों की ओर संकेत करते हैं। वास्तव

में शाहजहाँ का काल मुगलकाल का स्वर्ण युग था। परन्तु चरमोत्कर्ष के उपरान्त पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है; अत: उत्थान की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचकर शाहजहाँ के काल में ही मुगलकाल के पतन का बीजारोपण हो गया।

5. शाहजहाँ की मध्य-एशियाई नीति के परिणामों की विवेचना कीजिए।

उ०– शाहजहाँ की मध्य-एशियाई नीति की सभी विद्वानों ने कटु आलोचना की है। कुछ के विचार में यह शाहजहाँ की महान भूल थी तथा कुछ इसे उसकी महत्त्वाकांक्षा का स्वप्नमात्र समझते हैं। यह नीति निरर्थक तथा असफल रही तथा मुगल साम्राज्य पर इसके घातक प्रभाव पड़े। शाहजहाँ की मध्य-एशियाई नीति के परिणाम निम्नलिखित हैं—

(i) **अपार धन और जन की क्षति–** शाहजहाँ की मध्य-एशियाई विजय-योजना में अपार धन की क्षति हुई। केवल 2 वर्ष में 12 करोड़ रुपया व्यय हुआ, जिसका कारण राजकोष पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त 500 सैनिक युद्धभूमि में खेत रहे तथा इसके दस गुने सैनिक बर्फ से ढके हुए कठिन मार्गों में खप गए। बल्ख के दुर्ग में एकत्रित पाँच लाख रुपये का अनाज तथा रसद का अन्य सामान शत्रुओं के हाथ चला गया। 50,000 रुपये नकद नजर मुहम्मद को तथा साढ़े बाईस हजार रुपये उसके राजदूत को भेंट में प्रदान किए गए। इसके बदले में एक इंच भूमि भी मुगलों को प्राप्त न हो सकी और न बल्ख की गद्दी पर शत्रु के स्थान पर कोई मित्र ही बिठाया जा सका।

(ii) **मुगल प्रतिष्ठा को आघात–** मध्य-एशियाई नीति की असफलता से मुगलों की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का पहुँचा। मुगलों का विजेता के रूप में डींग मारना बन्द हो गया और ईरानी वीरता, साहस तथा सैनिक शक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ गई। परिणामस्वरूप उत्तर-पश्चिमी भागों में वर्षों तक ईरानियों का भय बना रहा तथा 18वीं शताब्दी में नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने मुगल साम्राज्य के पतन को और भी अधिक निकट ला दिया।

(iii) **मुगल सेना का विनाश तथा पतन–** इन युद्धों में मुगलों की सर्वोत्तम सेनाओं का विनाश हो गया। सैनिक दृष्टिकोण से इस नीति द्वारा मुगलों को अपार क्षति पहुँची। उनकी सैनिक दुर्बलता का लाभ उठाकर भारत में नई-नई शक्तियों का उत्थान तथा उपद्रव आरम्भ हुए, जिनके दमन में औरंगजेब को आजीवन संलग्न रहना पड़ा। शाहजहाँ को उत्तर-पश्चिम में व्यस्त देखकर दक्षिण में मराठों ने अपनी शक्ति का विकास आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उनकी शक्ति बढ़ गई कि वह मुगल साम्राज्य का पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण बनी।

(iv) **मुगलों तथा मध्य-एशिया के सम्राटों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का अन्त–** शाहजहाँ की मध्य-एशिया सम्बन्धी नीति से उजबेग मुगलों से नाराज हो गए तथा सदैव के लिए उनके शत्रु बन गए। मुगलों ने आक्सस नदी के तटीय प्रदेशों को अपने अधीन बनाना चाहा किन्तु उजबेगों में उत्पन्न राष्ट्रीय भावना के कारण मुगल अपने प्रयत्नों में सर्वथा असफल रहे। फलस्वरूप शाहजहाँ के जीवनकाल के बचे हुए दिनों में भारत और फारस के सम्बन्ध सदैव कटु बने रहे और मुगलों के आत्मबल को अपार क्षति पहुँची।

6. शाहजहाँ के काल में हुए उत्तराधिकार के युद्ध पर प्रकाश डालिए। इस युद्ध में औरंगजेब की सफलता के कारणों की भी विवेचना कीजिए।

उ०– **उत्तराधिकार के लिए युद्ध–** शाहजहाँ के जीवनकाल में ही उत्तराधिकार के लिए उसके पुत्रों में युद्ध आरम्भ हो गए थे। शाहजहाँ भयंकर बीमारी से ग्रस्त हो गया। अत: दारा ने शाहजहाँ के बीमार पड़ने के उपरान्त राज्य-कार्य का भार संभाला तथा वह चाहता था कि बादशाह की बीमारी का समाचार भाइयों को ज्ञात न हो। परन्तु बादशाह की बीमारी का समाचार छुप न सका तथा सर्वप्रथम बंगाल में स्थित शाहशुजा ने अपने को सम्राट घोषित किया, क्योंकि सभी को बादशाह की मृत्यु का विश्वास हो चुका था। इसी प्रकार गुजरात में मुराद ने अपने नाम से खुतबा पढ़वाया तथा अपने नाम के सिक्के ढलवाए। दारा को इन दोनों भाइयों का इतना भय नहीं था जितना कि औरंगजेब का। औरंगजेब को दरबार में घटित होने वाली घटनाओं की सम्पूर्ण सूचना रोशनआरा से मिलती रहती थी। उसने आगरा जाने वाले मार्ग को बन्द कर दिया, जिससे उसकी तैयारियों की सूचना किसी को प्राप्त न हो सके तथा मीर जुमला के साथ मिलकर उसने सैनिक शक्ति बढ़ानी आरम्भ कर दी। उसने सम्पूर्ण तैयारियों के उपरान्त बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों से मैत्री स्थापित कर ली। शुजा अथवा मुराद के समान उसने स्वयं को बादशाह घोषित नहीं किया वरन् उसने घोषणा की कि वह तो पाक मुसलमान है तथा मक्का में एक दरवेश का जीवन व्यतीत करना चाहता है और मक्का जाने से पूर्व अपने पिता के दर्शन करने दिल्ली जा रहा है।

(i) **मुराद के साथ गठबन्धन–** औरंगजेब अपने भाइयों में सबसे बुद्धिमान था। वह जानता था कि मुराद व्यसनी तथा मूर्ख है और उसकी सहायता सरलता से प्राप्त की जा सकती है। सर्वप्रथम उसने मुराद के इस कार्य की निन्दा की कि उसने स्वयं को बादशाह घोषित करके सूरत पर अधिकार कर लिया है। औरंगजेब ने मुराद को पत्र लिखा कि जब तक शाहजहाँ की मृत्यु की सूचना नहीं मिलती, उसका यह कार्य सर्वथा निन्दनीय है। तदुपरान्त गुप्त रूप से दोनों भाइयों ने समझौता किया कि दारा को मार्ग से हटाने के उपरान्त ये दोनों परस्पर राज्य का विभाजन कर लेंगे, जिसके अनुसार कश्मीर, अफगानिस्तान, सिन्ध तथा पंजाब मुराद को मिलेगा तथा शेष साम्राज्य पर औरंगजेब का अधिकार होगा। औरंगजेब ने तो यहाँ तक कहा कि उसे राज्य की कोई इच्छा नहीं, वह तो फकीर बनना चाहता है, किन्तु दारा के समान काफिर के हाथ में राज्य की बागड़ोर छोड़ने से इस्लाम के प्रति गद्दारी होगी इसलिए वह दारा से युद्ध करना अपना कर्त्तव्य समझता है। इन

चापलूसी-भरी बातों में मुराद फँस गया तथा उज्जैन के निकट दीपालपुर में दोनों भाइयों ने मिलकर शपथ ली कि साम्राज्य को विभाजित कर लिया जाएगा और धरमत नामक स्थान पर दारा की सेनाओं का सामना करने का निश्चय करके उन्होंने सैन्यबल के साथ धरमत के लिए प्रस्थान किया।

(ii) **बहादुरपुर का युद्ध (24 फरवरी, 1658 ई०)–** जिस समय मुराद तथा औरंगजेब दारा के विरुद्ध युद्ध की योजनाएँ बना रहे थे, शाहशुजा ने स्वयं को बादशाह घोषित किया तथा एक विशाल सेना के साथ दिल्ली की ओर बढ़ा। मार्ग में बिहार के अनेक प्रदेशों को रौंदता हुआ 24 जनवरी, 1658 ई० को वह बनारस पहुँच गया। दारा चाहता था कि औरंगजेब का सामना करने से पूर्व ही वह शाहशुजा का अन्त कर दे; अत: उसने सर्वप्रथम अपने पुत्र सुलेमान शिकोह तथा राजा जयसिंह के नेतृत्व में एक सेना भेजी। दोनों सेनाओं में 24 फरवरी को बनारस से लगभग पाँच मील दूर बहादुरपुर नामक स्थान पर भीषण संग्राम हुआ, जिसमें शुजा बुरी तरह पराजित हुआ तथा अपनी जान बचाने के लिए बंगाल की ओर भाग गया।

(iii) **धरमत का युद्ध (15 अप्रैल, 1658 ई०)–** शाहशुजा की ओर सेनाएँ भेजकर ही दारा चुप नहीं बैठा, उसने कासिम खाँ तथा राजा जसवन्त सिंह के नेतृत्व में दूसरी विशाल सेना मुराद तथा औरंगजेब से युद्ध करने के लिए भेज दी। दारा ने राजा जसवंत सिंह को आज्ञा देकर भेजा था कि वह प्रयत्न करके युद्ध के बिना ही दोनों शहजादों को उनके प्रान्तों में वापस भेज दे, किन्तु यह प्रयास विफल रहा। अन्त में धरमत नामक स्थान पर दोनों पक्षों में भयंकर संग्राम हुआ, किन्तु अन्त में राजा जसवन्त सिंह पराजित हो रणक्षेत्र छोड़कर भाग खड़ा हुआ। दारा ने सुलेमान शिकोह को बिहार से बुला भेजा, किन्तु वह देर से पहुँचा। तब तक मुगलों की सेनाएँ पराजित हो चुकी थीं। औरंगजेब को इस विजय से बहुत प्रोत्साहन मिला तथा उसे बड़ी मात्रा में अस्त्र-शस्त्र एवं अपार धन प्राप्त हुआ। इस विजय से औरंगजेब के सम्मान और शक्ति में काफी वृद्धि हो गई। यहाँ पर अपनी विजय के उपलक्ष्य में उसने एक छोटे-से-नगर फहेताबाद का निर्माण करवाया तथा चम्बल पार करके ग्वालियर की ओर बढ़ा। ग्वालियर के निकट सामूगढ़ के मैदान में उसने पुन: शाही फौजों से टक्कर लेने का निश्चय करके पड़ाव डाल दिया।

(iv) **सामूगढ़ का युद्ध (29 मई, 1658 ई०)–** इसी समय शाहजहाँ, जिसने आगरा से दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिया था, यह समाचार सुनकर वापस लौट आया। दारा औरंगजेब का पूर्ण विनाश करने की तैयारियों में संलग्न था। शाहजहाँ यह युद्ध नहीं चाहता था परन्तु वह दारा को रोकने में सर्वथा असमर्थ रहा। दारा 50,000 सैनिकों के साथ सामूगढ़ पहुँचा। दारा ने एक बड़ी भूल यह की कि अपने पुत्र सुलेमान शिकोह की प्रतीक्षा किए बिना ही वह आगरा से चल पड़ा। सुलेमान योग्य सेनापति था तथा शुजा को पराजित करके आगरा लौट रहा था।

दोनों भाइयों की सेनाओं में भीषण संघर्ष हुआ तथा औरंगजेब और मुराद बड़ी वीरतापूर्वक लड़े और शाही सेना का विनाश करने लगे। निराश होकर दारा अपना हाथी छोड़कर घोड़े पर सवार होकर लड़ने लगा। परन्तु उसके हाथी का हौदा खाली देखकर सैनिकों ने समझा कि दारा की मृत्यु हो गई और उसकी सेना में भगदड़ मच गई। औरंगजेब की पूर्ण विजय हुई तथा दारा की सेनाएँ भाग गई। अपनी इस पराजय से निराश होकर दारा तथा उसका पुत्र सुलेमान शिकोह आगरा की ओर बढ़े और रात्रि तक आगरा जा पहुँचे। औरंगजेब ने दारा के शिविर को लूटा तथा वहाँ से उसे काफी सम्पत्ति और बारूद प्राप्त हुई। मुराद इस युद्ध में घायल हो गया था। उसकी परिचर्या के लिए औरंगजेब ने कुशल जर्राह नियुक्त किए तथा उसे गद्दी प्राप्त करने की बधाई दी।

सामूगढ़ के युद्ध का अत्यधिक महत्त्व है। **स्मिथ** के अनुसार– ''सामूगढ़ के युद्ध ने उत्तराधिकार के युद्ध का निर्णय कर दिया। इस युद्ध से लेकर शुजा की मृत्यु तक की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि औरंगजेब शाहजहाँ का सबसे योग्य पुत्र तथा सिंहासन का वास्तविक अधिकारी है।''

(v) **औरंगजेब तथा मुराद का आगरा आगमन–** सामूगढ़ के युद्ध में विजय प्राप्त करके साहस तथा उत्साह से भरे हुए औरंगजेब और मुराद आगरा की ओर चल पड़े तथा नूर-ए-बाग नामक उद्यान में, जो आगरा के निकट ही था, उन्होंने पड़ाव डाल दिया। इस समय तक पराजित दारा के अधिकांश पक्षपातियों ने उसका साथ छोड़कर विजेता औरंगजेब का साथ देना आरम्भ कर दिया था तथा उससे क्षमा माँग ली थी। औरंगजेब ने उन्हें अपनी ओर मिलाकर शाहजहाँ से इस भीषण युद्ध के लिए क्षमा माँगी तथा साथ-ही-साथ दारा पर इस युद्ध का उत्तरदायित्व डाल दिया। शाहजहाँ ने आलमगीर नामक एक तलवार औरंगजेब के पास भेजी तथा उससे मिलने की इच्छा प्रकट की परन्तु औरंगजेब के मित्रों ने उसे परामर्श दिया कि वह शाहजहाँ को बन्दी बना ले। औरंगजेब को यह सलाह पसन्द आई।

(vi) **शाहजहाँ का बन्दी बनाया जाना–** औरंगजेब ने मुराद को आगरा के दुर्ग पर अधिकार करने के लिए भेजा। मुराद ने यमुना का पानी दुर्ग में जाने का मार्ग बन्द कर दिया। दुर्ग में स्थित सैनिकों ने थोड़ा-बहुत युद्ध किया परन्तु पानी के अभाव के कारण उन्होंने पराजय स्वीकार कर ली। औरंगजेब के हाथों शाहजहाँ द्वारा दारा को लिखा एक पत्र पड़ गया, जिसमें लिखा था कि वह दिल्ली के दुर्ग की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध रखे। यह पत्र पढ़कर औरंगजेब का सन्देह पक्का हो गया कि बादशाह उसे धोखा देना चाहता है; अत: उसने बादशाह को बन्दी बनाकर आगरा के दुर्ग में स्थित मोती मस्जिद की एक छोटी-सी कोठरी में भेज दिया, जहाँ हिन्दुस्तान के 'शानदार बादशाह' ने अपने जीवन के अन्तिम आठ वर्ष बड़े दु:ख एवं

कष्ट में व्यतीत किए। अन्त में 22 जनवरी, 1666 ई० को उसकी मृत्यु के साथ ही उसके कष्टों का अन्त हो गया। मृत्यु के उपरान्त ताजमहल में मुमताजमहल की कब्र के निकट ही शाहजहाँ को भी दफना दिया गया।

(vii) मुराद का अन्त– शाहजहाँ को बन्दी बनाने के उपरान्त औरंगजेब राज्य का वास्तविक शासक बन बैठा था। वह दरबार में सिंहासन पर बैठता था तथा समस्त अमीर उसे अपना बादशाह मानते थे। जब मुराद को औरंगजेब की वास्तविक इच्छा का पता लगा तो उसने गड़बड़ करने का प्रयास किया, परन्तु औरंगजेब के सम्मुख मुराद जैसे मूर्ख को सफलता मिलनी असम्भव थी। औरंगजेब ने उसे मथुरा में भोजन के लिए आमन्त्रित किया तथा बढ़िया खाने और शराब के अत्यधिक सेवन से मुराद संज्ञाहीन होकर अपने भाई के हाथों बन्दी बना लिया गया। मुराद ने विरोध किया तथा औरंगजेब को उसकी शपथ याद दिलवाई, परन्तु औरंगजेब पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। यहाँ से मुराद को ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया तथा अपने दीवान अली नकी की हत्या के आरोप में उसे प्राणदण्ड दे दिया गया। 4 दिसम्बर, 1661 ई० को इस अभागे शहजादे ने बन्दीगृह में दम तोड़ दिया। वहीं दुर्ग में उसके शव को दफना दिया गया। इस प्रकार अपने विरोधियों का औरंगजेब ने एक-एक करके सफाया करना आरम्भ कर दिया।

(viii) दारा का अन्तिम प्रयास-देवराई का युद्ध तथा दारा का अन्त– सामूगढ़ के युद्ध के पश्चात दारा आगरा से दिल्ली की ओर चला गया था, जहाँ का राजकोष तथा दुर्ग उसके हाथ में था। परन्तु आगरा विजय से औरंगजेब की शक्ति अत्यधिक बढ़ गई तथा उसके पास धन और सेना का भी अभाव नही था; अत: उससे भयभीत दारा दिल्ली छोड़कर अपनी प्राणरक्षा के लिए पंजाब की ओर भाग गया। परन्तु औरंगजेब की सेना निरन्तर दारा का पीछा करती रही। इस समय दारा के मित्र भी उसके शत्रु हो गए थे तथा उन्होंने औरंगजेब का साथ देना आरम्भ कर दिया था। औरंगजेब ने राजा जसवन्त सिंह को भी प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया तथा अपनी प्रतिज्ञा भूलकर जसवन्त सिंह ने दारा को अकेला छोड़ दिया। अहमदाबाद के सूबेदार ने 20,000 सैनिकों से दारा की सहायता की तथा एक बार पुन: अपना भाग्य आजमाने के लिए दारा ने प्रयास किया। देवराई के दर्रे के ऊपर दारा तथा औरंगजेब की सेनाओं में अन्तिम मुठभेड़ हुई जिसमें दारा पुन: पराजित हुआ।

औरंगजेब दारा को पूर्णत: समाप्त करना चाहता था; अत: उसने दारा का पीछा किया। वहाँ से भागकर दारा मुल्तान होता हुआ मक्कर की ओर भाग गया और अन्त में वह दादर पहुँचा तथा वहाँ के बलूची सरदार मलिक जीवन खाँ से शरण माँगी, जिसे एक बार उसने प्राणदण्ड से बचाया था। परन्तु दारा के दुर्भाग्य ने उसका पीछा न छोड़ा। यहीं पर उसकी प्रिय पत्नी नादिरा बेगम की मृत्यु हो गई। उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार लाहौर में उसका शव दफना दिया गया। बलूची सरदार ने दारा की सहायता करने के बजाए उससे विश्वासघात किया तथा उसे औरंगजेब के सेनापति के हाथों सौंप दिया। इस प्रकार 23 अगस्त, 1659 ई० को दारा और उसका पुत्र बन्दी के रूप में औरंगजेब के सम्मुख उपस्थित किए गए। दारा की यह दशा देखकर निर्दयी-से-निर्दयी व्यक्ति की आँखों में भी पानी भर आया। शाहजहाँ का सबसे प्रिय तथा विद्वान पुत्र धूल-धूसरित दशा में दरबार में उपस्थित था। दारा पर औरंगजेब ने काफिर होने का आरोप लगाया तथा उसके इशारे पर यह आरोप दरबार में सिद्ध कर दिया गया। औरंगजेब ने उसे तथा उसके पुत्र को एक हाथी पर बैठाकर सारे नगर में घुमाया और फिर उनकी हत्या करवा दी।

(ix) सुलेमान शिकोह का अन्त– दारा का पुत्र सुलेमान शिकोह शुजा से युद्ध करने गया हुआ था। इसी बीच दारा को औरंगजेब के साथ युद्ध करने के लिए जाना पड़ा। धरमत के युद्ध का समाचार सुनकर ही वह दिल्ली के लिए रवाना हो गया था, परन्तु मार्ग में कड़ा में उसे सामूगढ़ की पराजय का समाचार मिला। सुलेमान शिकोह ने अपने सेनापतियों को अपने पिता की सहायता करने के लिए कहा, किन्तु राजा जयसिंह ने स्पष्ट इन्कार कर दिया कि वह पराजित शहजादे की सहायता नहीं कर सकता; अत: सुलेमान इलाहाबाद से लखनऊ होता हुआ हरिद्वार तथा फिर पंजाब में अपने पिता की सहायता के लिए गया, किन्तु शाइस्ता खाँ उसका पीछा कर रहा था, जिसने सुलेमान को गढ़वाल की ओर जाने के लिए बाध्य किया, जहाँ उसने एक हिन्दू सरदार के यहाँ शरण प्राप्त की। औरंगजेब ने, जो इस समय तक अन्य शत्रुओं का सफाया कर चुका था, सुलेमान शिकोह को समाप्त करने का प्रयास किया। सुलेमान ने लद्दाख की ओर भागने का प्रयास किया परन्तु शाही सेनाओं ने उसे पकड़कर बन्दी बना लिया और दिल्ली के सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया। उसे ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया तथा उसको भोजन में पोस्ता मिलाकर दिया जाने लगा, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

(x) शुजा का अन्त– अब औरंगजेब का एकमात्र शत्रु शुजा ही रह गया था। औरंगजेब ने अपने अभिषेक के उपरान्त शुजा को एक पत्र लिखा कि वह दारा से निपट ले, उसके बाद शुजा जो माँगेगा उसे वही मिलेगा। परन्तु शुजा अपने भाई को अच्छी तरह जानता था; अत: उसने युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी और जनवरी 1659 ई० में खजवा नामक स्थान पर दोनों पक्षों की सेनाओं में भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें शुजा बुरी तरह पराजित हुआ तथा उसकी सेना का विनाश हो गया। शुजा निराश होकर पहले बंगाल और फिर अराकान की पहाड़ियों की ओर भागा। वहाँ पर उसने यहाँ के शासक को गद्दी से उतारने का षड्यन्त्र रचा, जिससे क्रुद्ध होकर अराकानवासियों ने उसकी हत्या कर डाली। इस प्रकार औरंगजेब के इस अन्तिम शत्रु का भी अन्त हो गया तथा उसने निष्कण्टक राज्य आरम्भ किया। जीवन के अन्तिम समय 1707 ई० तक औरंगजेब भारत का सम्राट बना रहा।

औरंगजेब की सफलता के कारण– लगभग दो वर्षों तक चले इस उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब को विजयश्री मिली। सामूगढ़ के युद्ध ने ही यह सिद्ध कर दिया था कि औरंगजेब ही मुगल साम्राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी है। कुछ विशेष कारण जो औरंगजेब की सफलता के आधार बने, निम्नलिखित हैं–

(i) शाहजहाँ का कमजोर प्रवृत्ति का होना– हालाँकि शाहजहाँ एक वीर व साहसी बादशाह था परन्तु उत्तराधिकारी चुनने के मामले में वह दुर्बल शासक सिद्ध हुआ। उसकी यह कमजोर प्रवृत्ति उसके वीर, विद्वान व साहसी पुत्रों की मृत्यु का कारण बनी। औरंगजेब ने अपनी राह के काँटे अपने सभी भाइयों का एक-एक करके सफाया कर दिया। रोगग्रस्त बादशाह ने दारा को समस्त राज्य-कार्यों का कार्यभार सौंपकर एक बड़ी भूल की थी। इससे उसके अन्य पुत्र नाराज हो गए। बादशाह ने अपनी समस्त शक्ति का उपयोग नहीं किया और उसके पुत्र आपस में लड़ते रहे।

(ii) औरंगजेब की सैन्य क्षमता– औरंगजेब महत्वाकांक्षी युवक था। वह सैन्य कुशलता में अपने सभी भाइयों की अपेक्षा श्रेष्ठ था। उसने अपने पिता के शासनकाल में अनेक बार अपनी सैनिक प्रतिभा का परिचय दिया था। उसने कूटनीति से अपने वीर परन्तु मूर्ख भाई मुराद को अपनी ओर मिला लिया और अपने अन्य भाईयों के विरुद्ध उसकी वीरता का फायदा उठाया। औरंगजेब योग्य सेनापति व कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने दारा के विरुद्ध अपनी मुस्लिम सेना को भड़का दिया कि दारा एक काफिर है, वह इस्लाम को नहीं मानता। उसकी इस नीति से मुगल सेना के साथ-साथ अन्य मुस्लिम दरबारी भी दारा के विरुद्ध हो गए। औरंगजेब का सैन्य संचालन भी दारा के विपरीत अत्यन्त कुशल था। उसके तोपखाने की गोलीबारी ने दारा को भयभीत कर दिया। अन्तत: दारा पराजित हो गया।

(iii) दारा की भयंकर भूलें– दारा ने कुछ भयंकर भूलें भी कीं, जिसका परिणाम उसकी पराजय के रूप में परिणत हुआ। धरमत के युद्ध के पश्चात उसने अपने पुत्र सुलेमान शिकोह, जो एक कुशल सेना नायक था, की प्रतीक्षा नहीं की और अकेला युद्ध के लिए निकल पड़ा। उसकी दूसरी भूल सामूगढ़ के युद्ध में औरंगजेब की सेना को विश्राम करने का अवसर देना थी। युद्धभूमि में घायल हाथी के हौदे को छोड़कर घोड़े पर सवार होना भी उसकी एक अन्य भूल थी, जिससे उसकी सेना उसे मृत मानकर भाग खड़ी हुई। ये सभी भूलें दारा की सैनिक क्षमता की कमजोरियों को सिद्ध करती हैं, जिसका भरपूर लाभ औरंगजेब ने उठाया।

(iv) औरंगजेब का कट्टरपन व दारा की उदारता– औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उस समय अधिकांश देशों में धर्मान्धता की अधिकता थी। भारत के अधिकतर मुसलमान भी धर्मान्ध थे। अत: औरंगजेब ने इस धर्मान्धता का लाभ उठाया और धर्म-सहिष्णु दारा के विरुद्ध सभी मुसलमानों को भड़का दिया। अत: औरंगजेब समस्त मुस्लिम वर्ग का पक्षपाती बन गया। वे उसे ही अपना बादशाह मानने लगे और दारा, जो कि सभी धर्मों का आदर करता था, को काफिर मानने लगे तथा उससे घृणा करने लगे, जिसका औरंगजेब ने भरपूर फायदा उठाया।

7. औरंगजेब के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए। मुगल साम्राज्य के पतन के लिए वह किस प्रकार उत्तरदायी था?

उ०– औरंगजेब के चरित्र का मूल्यांकन–

लेनपूल के अनुसार– ''औरंगजेब को अपने जीवन में भयंकर असफलता देखनी पड़ी, परन्तु उसकी असफलता बड़ी शानदार थी। उसने अपनी आत्मा को समस्त संसार के विरुद्ध खड़ा कर दिया और अन्त में संसार को विजय प्राप्त हुई। उसने अपने लिए कर्त्तव्य का एक मार्ग निश्चित किया और यह मार्ग व्यावहारिक था अथवा नहीं इसकी चिन्ता किए बिना वह उस पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर होता गया।''

खाफी खाँ ने औरंगजेब का मूल्यांकन करते हुए लिखा है– ''तैमूर के वंशजों में ही नहीं वरन् सिकन्दर लोदी के पश्चात् दिल्ली के सभी शासकों में ऐसा कोई नहीं हुआ, जिसमें इतनी भक्ति, तपस्या तथा न्याय की भावना हो। साहस, सहनशीलता तथा ठोस निर्णयात्मक बुद्धि में कोई औरंगजेब की समता नहीं कर सकता था। किन्तु उसे शरा (नियम, कानून) में अत्यधिक श्रद्धा थी इसलिए वह दण्ड का प्रयोग नहीं करता था और बिना दण्ड के किसी देश की प्रशासन-व्यवस्था कायम नहीं रखी जा सकती। प्रत्येक योजना जो वह बनाता, निरर्थक सिद्ध होती और जो भी साहसिक कार्य वह अपने हाथों में लेता, उसके कार्यान्वित होने में बड़ी देर लगती और अन्त में उसका उद्देश्य पूरा न होता।''

प्रो० जे०एन० सरकार तथा **के०के० दत्त** के अनुसार– ''औरंगजेब में बहुत-से उत्तम गुण थे, परन्तु वह एक सफल शासक न था। वह एक चतुर कूटनीतिज्ञ था, परन्तु कुशल राजनीतिज्ञ न था। सारांश यह है कि उसमें वह राजनीतिक प्रतिभा न थी, जो मुगल सम्राटों में केवल अकबर में पाई जाती है, जिसमें नई नीति को चलाने तथा ऐसे कानून बनाने की क्षमता थी, जो उस काम के तथा भावी पीढ़ी के जीवन तथा विचारों को बदल सकते थे।''

राय चौधरी और **आर०सी० मजूमदार** के अनुसार– ''अपनी शक्ति तथा चरित्र-बल के बावजूद औरंगजेब भारत के शासक के रूप में असफल सिद्ध हुआ। उसने यह नहीं समझा कि किसी साम्राज्य की महत्ता उसके अधिकाधिक जनसाधारण की प्रगति पर निर्भर है। अपनी धार्मिक उमंग की प्रबलता के कारण उसने जनता के महत्वपूर्ण वर्गों की उपेक्षा की और इस प्रकार अपने साम्राज्य की विरोधी शक्तियों को उभारा।''

बर्नियर के अनुसार– ''औरंगजेब एक राजनीतिज्ञ, एक महान् सम्राट तथा अद्‌भुत प्रतिभा का धनी व्यक्ति था।''

औरंगजेब को निश्चय ही मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। यद्यपि पूर्ण रूप से नहीं तथापि मुगल वंश

का पतन अधिकतर उसकी नीतियों का ही परिणाम था, क्योंकि वह किसी का भी हृदय जीतने में असफल रहा।

औरंगजेब की निम्नलिखित नीतियाँ मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी हैं—

(i) **राजपूत विरोधी नीति–** केवल राजपूतों को ही नहीं वरन् अन्य सहायकों को भी अपनी अनुदार तथा संकीर्ण नीति के कारण औरंगजेब ने अपना विरोधी बना लिया। सिक्ख, जाट, बुन्देले, मराठे सभी उसकी नीति से असन्तुष्ट होकर मुगल साम्राज्य के विनाश के लिए प्रयासरत रहने लगे। मराठों ने दक्षिण में लूटमार मचा दी, जाटों ने मथुरा के आस-पास के प्रदेशों को उजाड़ा तथा गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में सिक्ख उसे जीवनभर परेशान करते रहे। इन विद्रोहों ने मुगल वंश का पतन निकट ला दिया।

(ii) **दक्षिण-नीति की विफलता–** औरंगजेब की दक्षिण-नीति ने राजकोष पर बुरा प्रभाव डाला। विशाल सेना होने के कारण आय का अधिकांश भाग केवल सेना पर व्यय होने लगा, जिससे अन्य दिशाओं में प्रगति अवरुद्ध हो गई। इसी कारण सम्राट शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखने में असफल रहा।

दक्षिण में शिया राज्यों को जीत लेने के साथ ही विकासोन्मुख मराठा शक्ति का सामना करने के लिए मुगलों को संघर्षरत होना पड़ा। मराठों की छापामार रण-पद्धति के सम्मुख मुगलों की विशाल सेना कुछ भी नहीं कर सकती थी। मराठों की सेना मुगल सेना एवं उनके प्रदेशों को अवसर पाते ही लूट लेती थी। इस प्रकार मराठों ने मुगलों का पतन और भी सन्निकट ला दिया।

(iii) **पुत्रों को शिक्षित न बनाने का संकल्प–** यद्यपि औरंगजेब धर्मान्ध तथा अनुदार था तथापि उसमें योग्यता का अभाव नहीं था। उसके पिता ने उसे उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान की थी तथा सम्राट बनने से पूर्व उसने शासन-प्रबन्ध का पर्याप्त अनुभव भी प्राप्त कर लिया था। इसलिए विद्रोहों तथा संकटों के उपरान्त भी उसने राज्य को अपने हाथ से नहीं जाने दिया। वह शंकालु प्रकृति का था तथा उसे भय था कि उसके पुत्र योग्य बनकर कहीं उसके विरुद्ध विद्रोह न कर दें, जैसा कि उसने स्वयं अपने पिता के विरुद्ध किया था। उसने केवल शहजादे अकबर को व्यवहारिक शिक्षा देने का प्रयास किया था। शहजादे अकबर के विद्रोह के पश्चात् अपने अन्य शहजादों के प्रति सम्राट और भी सतर्क हो गया तथा उसने उन्हें कभी भी कोई महत्वपूर्ण प्रशासनिक भार सँभालने का अवसर नहीं दिया। उसने अपने पुत्रों पर भी कभी विश्वास नहीं किया तथा 90 वर्ष की वृद्धावस्था में भी लकड़ी के सहारे चलकर वह स्वयं सैन्य संचालन करता था। उसकी इसी नीति के कारण अनुभव से वंचित उसके उत्तराधिकारी विशाल साम्राज्य को सँभाल पाने में असमर्थ रहे।

(iv) **शासन का केन्द्रीकरण–** शंकालु प्रकृति के कारण औरंगजेब ने शासन की बागडोर पूर्णतया अपने हाथ में रखी। दक्षिण की विजयों के कारण मुगल साम्राज्य काफी विशाल हो गया था तथा एक व्यक्ति और एक केन्द्र से उसका समुचित संचालन असम्भव हो गया था। सम्राट के स्वभाव के कारण सूबेदार अनुत्तरदायी हो गए तथा प्रजा पर अत्याचार करने लगे। उनके अधिकारों को छीनकर सम्राट ने शासन-व्यवस्था को दोषपूर्ण बना दिया। जब तक सम्राट शक्तिशाली रहा तब तक तो शासन सुचारु रूप से चलता रहा, परन्तु जैसे-जैसे वह वृद्ध होता गया उसकी कार्य करने की शक्ति क्षीण होने लगी तथा प्रान्तों पर से उसका अंकुश ढीला पड़ने लगा। दूरस्थ प्रान्तों के सूबेदार उसके नियन्त्रण से बाहर होने लगे तथा विद्रोह करने को तत्पर हो गए।

(v) **शासन-व्यवस्था की शिथिलता–** यद्यपि औरंगजेब साम्राज्य के छोटे-छोटे कार्यों का निरीक्षण भी स्वयं करता था परन्तु वह देश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने में असफल रहा। यद्यपि वह कुशल शासक था परन्तु उसकी यह धारणा बन गई थी कि वह स्वयं सबसे अधिक योग्य है। वह अपने बड़े-से-बड़े पदाधिकारी पर भी सन्देह करता था। ईर्ष्या और सन्देह की मात्रा उसमें इतनी प्रबल थी कि उसने सभी पर सन्देहपूर्ण दृष्टि रखनी आरम्भ कर दी थी। शासन-व्यवस्था में योग्य-से-योग्य व्यक्तियों के परामर्श की भी वह अवहेलना करने लगा था। इस सन्देहपूर्ण नीति का दुष्प्रभाव जनता पर पड़ा, जिससे शान्ति एवं समृद्धि का युग समाप्त हो गया।

(vi) **धर्मान्धता एवं असहिष्णुता की नीति–** सम्राट के रूप में औरंगजेब का आदर्श संकीर्ण एवं अनुदार था। वह मुसलमानों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता था जबकि हिन्दुओं के प्रति उसकी नीति अत्याचारपूर्ण थी। वह बलपूर्वक इस्लाम धर्म का प्रचार करना अपना कर्त्तव्य समझता था। इस्लाम स्वीकार न करने पर वह हिन्दुओं को प्राणदण्ड तक दे देता था। भारत जैसे देश के लिए, जहाँ 80 प्रतिशत जनता हिन्दू थी, इस प्रकार की नीति अहितकर तथा घातक सिद्ध हुई। हिन्दुओं ने सम्राट के कठोर अत्याचार सहन किए, परन्तु धर्म परिवर्तन के लिए वे तैयार नहीं हुए। सम्राट ने जितने अधिक अत्याचार किए, उतनी ही अधिक विद्रोह की प्रवृत्ति हिन्दुओं में उत्पन्न हुई। इस प्रकार औरंगजेब की नीति मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। औरंगजेब ने हिन्दुओं के प्रति ही नहीं, शियाओं के प्रति भी अनुदारतापूर्ण नीति अपनाई तथा योग्य एवं प्रतिभाशाली शियाओं की सेवाओं से साम्राज्य को वंचित कर दिया। उसकी इस धार्मिक नीति का परिणाम यह हुआ कि उसकी मृत्यु के 10-15 वर्ष पश्चात् ही मुगल साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया। औरंगजेब की इस धर्मांन्धता का मुगल साम्राज्य पर अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ा।

(vii) **आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास का अन्त–** औरंगजेब धर्म का अन्धा अनुयायी था तथा कुरान के अनुसार चलने के कारण ललित कलाओं का पोषण नहीं कर सकता था। उसे न संगीत में अभिरुचि थी, न चित्रकला में और न भवन-निर्माण-कला में। फलत: इन सभी ललित कलाओं का पतन उसके काल में हो गया। विद्वान होने पर भी साहित्यकारों को आश्रय देने में उसकी रुचि नहीं थी। फलत: सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में अरुचि के कारण औरंगजेब का युग संस्कृति के पूर्ण पतन का युग था।

8. औरंगजेब की धार्मिक नीति की समीक्षा कीजिए।

उ०– औरंगजेब की धार्मिक नीति के विषय में इतिहासकारों में गहरा मतभेद है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उसने अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति को उलटकर साम्राज्य को हिन्दुओं की वफादारी से वंचित कर दिया। उनके अनुसार इसके फलस्वरूप जन-विद्रोह भड़क उठे, जिससे साम्राज्य की शक्ति क्षीण हो गई। लेकिन कुछ दूसरे इतिहासकारों का विचार है कि औरंगजेब पर नाहक दोषारोपण किया गया है। उनके अनुसार हिन्दू औरंगजेब के पूर्ववर्ती शहंशाहों की शिथिलता के कारण गैर-वफादार हो गए थे, जिससे मजबूर होकर आखिरकार उसे कड़े कदम उठाने पड़े और मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने की खास कोशिश करनी पड़ी, क्योंकि साम्राज्य अंततः टिका हुआ तो उन्हीं के समर्थन पर था। परन्तु औरंगजेब के सम्बन्ध में लिखी गई हाल की कृतियों में एक नई दृष्टि उभरी है जिसमें कोशिश यह की गई है कि औरंगजेब की राजनीतिक एवं धार्मिक नीतियों का मूल्यांकन उस काल की सामाजिक, आर्थिक एवं संस्थागत घटनाक्रम के सन्दर्भ में किया जाए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि औरंगजेब के धार्मिक विचार रूढ़िवादी थे।

औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसका राजत्व सिद्धान्त इस्लाम का राजत्व सिद्धान्त था। औरंगजेब का प्रमुख लक्ष्य भारत को काफिरों के देश से इस्लाम देश बनाना था। औरंगजेब जीवनपर्यन्त इस उद्देश्य को न भूल सका और न कभी शासन नीति को इससे पृथक् रख सका। औरंगजेब का विश्वास था कि उससे पहले के सभी मुगलों ने सबसे गम्भीर भूल यह की थी कि उन्होंने भारत में इस्लाम की श्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया था। उसके अनुसार यह इस्लाम को मानने वाले बादशाह का एक प्रमुख कर्त्तव्य था। इस व्यक्तिगत धारणा के अतिरिक्त परिस्थितियों ने भी औरंगजेब को धार्मिक कट्टरता की नीति अपनाने के लिए बाध्य किया था। परन्तु तब भी इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता की नीति का मुख्य आधार उसकी धार्मिक कट्टरता की स्वयं की धारणा थी।

औरंगजेब की धार्मिक नीति का विश्लेषण करते हुए हम सबसे पहले नैतिक और धार्मिक नियमों का जायजा ले सकते हैं—

(i) **गायन पर प्रतिबन्ध–** औरंगजेब ने दरबार में गायन बन्द करवा दिया और गायकों को पेंशन दे दी। लेकिन वाद्य-संगीत तथा नौबत (शाही बैण्ड) को जारी रखा गया। हरम में महिलाओं ने गायन जारी रखा और सरदार लोग भी गायन को प्रश्रय देते थे।

(ii) **सिक्कों पर कलमा खुदाई का निषेध–** अपने शासनकाल के आरम्भ में औरंगजेब ने सिक्कों पर कलमा की खुदाई करने का निषेध कर दिया। उसका कहना था कि सिक्कों पर कोई पैर रख दे या एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुँचने के क्रम में वह नापाक हो जाए, तो वह कलमा का अपमान है।

(iii) **झरोखा दर्शन पर प्रतिबन्ध–** औरंगजेब ने झरोखा दर्शन की प्रथा भी बन्द कर दी क्योंकि इसे वह एक अन्धविश्वासपूर्ण रिवाज और इस्लाम के विरुद्ध मानता था।

(iv) **नौरोज पर प्रतिबन्ध–** औरंगजेब ने नौरोज के त्योहार की मनाही कर दी क्योंकि वह जरथुस्त्री रिवाज था, जिसका पालन ईरान के सफावी शासक करते थे।

(v) **मादक वस्तुओं पर प्रतिबन्ध–** औरंगजेब ने भाँग का उत्पादन बन्द कर दिया। शराब पीने और जुआ खेलने को भी प्रतिबन्धित कर दिया।

(vi) **मुहतसिबों की नियुक्ति–** औरंगजेब ने बड़े-बड़े नगरो में मुहतसिबों (धर्म निरीक्षकों) की नियुक्ति की। मुहतसिबों का कर्त्तव्य था कि वह देखें कि मुसलमान ठीक प्रकार से अपने धर्म का पालन करते हैं या नहीं। मुहतसिबों की नियुक्ति के पीछे औरंगजेब का यह आग्रह काम कर रहा था कि राज्य नागरिकों के नैतिक कल्याण के लिए भी जिम्मेदार है।

(vii) **तुलादान की समाप्ति–** उसने शहंशाह के जन्मदिन पर उसे सोने या चाँदी अथवा अन्य कीमती वस्तुओं से तोलने का रिवाज भी बन्द करवा दिया। यह प्रथा छोटे सरदारों के लिए सिर का बोझ बन गई थी।

इसी प्रकार औरंगजेब ने सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया, वेश्याओं को शादी करने अथवा देश छोड़ देने के आदेश दिए। सादगी और मितव्ययिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सिंहासन कक्ष को सस्ते और सादे ढंग से सजाने का हुक्म दिया। रेशमी कपड़ों को अस्वीकृत की दृष्टि से देखा जाता था। इसी प्रकार उसने पेशकारों और करोरियों के पद मुसलमानों के लिए आरक्षित करने की कोशिश की, लेकिन सरदारों के विरोध और योग्य मुसलमानों की कमी के कारण शीघ्र ही उसने इस नियम में संशोधन कर दिया।

अब हम औरंगजेब की उन नीतियों का अवलोकन करेंगे, जिनसे दूसरे धर्मों के अनुयायियों के प्रति औरंगजेब के धर्मांध व्यवहार का पता चलता है—

(i) **सरकारी नौकरियों से हिन्दुओं को वंचित करना–** औरंगजेब ने सरकारी नौकरियों में भी भेदभावपूर्ण नीति अपनाई। उसने एक आदेश जारी कर कहा कि खालसा में लगान वसूल करने वाले सभी मुसलमान हों तथा वायसराय और तालुकेदार अपने हिन्दू पेशकार और दीवानों को निकाल दें। **प्रो० जदुनाथ सरकार** का मत है कि औरंगजेब के शासनकाल में कानूनगो बनने के लिए मुसलमान बनना एक लोक-प्रसिद्ध कहावत हो गई थी।

(ii) **मन्दिरों का विध्वंस– प्रो० जदुनाथ सरकार** ने लिखा है कि औरंगजेब ने हिन्दू धर्म पर बड़े विषैले ढंग से आक्रमण किया। पहले तो उसने एक फरमान (1659 ई०) में यह जारी किया कि ''पुराने मन्दिरों को नहीं तोड़ना चाहिए लेकिन कोई नया मन्दिर नहीं बनने देना चाहिए।'' किन्तु अप्रैल, 1669 में औरंगजेब का अन्तिम आदेश हुआ, जिसमें हुक्म दिया गया

कि काफिरों के सब शिवालय और मन्दिर गिरा दिए जाएँ और उनकी धार्मिक प्रथाओं को दबाया जाए। इस कट्टरता के तूफान में काठियावाड़ का सोमनाथ मन्दिर, बनारस का विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा का केशवराय मन्दिर तोड़ दिए गए और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवा दी गईं। आमेर राज्य जो उसका व उसके पूर्वजों का मित्र रहा था, वहाँ के भी सब मन्दिर तोड़ दिए गए, उनकी मूर्तियों को मस्जिद की सीढ़ियों पर डलवा दिया ताकि पैरों तले रौंदी जा सकें।

(iii) **जजिया कर का पुन: प्रचलन–** बादशाह औरंगजेब ने 2 अप्रैल, 1679 को आदेश दिया कि कुरान के नियमों के अनुसार जिम्मी (गैर-मुसलमान) लोगों पर जजिया कर लगाया जाए। हिन्दुओं ने दिल्ली में इस कर का विरोध किया, परन्तु सुल्तान ने कोई ध्यान नहीं दिया। गौरतलब है कि 1564 ई० में अकबर ने इस घृणित कर को हटा दिया था और तब से एक शताब्दी से अधिक समय तक इसे किसी ने लागू नहीं किया था।

(iv) **चुँगी सम्बन्धी भेदभावपूर्ण नीति–** जजिया कर के अतिरिक्त हिन्दुओं से अन्य करों में भी भेदभाव किया जाता था। व्यापारिक माल पर मुस्लिमों के लिए 2.5% और हिन्दुओं के लिए 5% कर था। हिन्दुओं को धर्म-यात्रा पर भी कर देना पड़ता था।

(v) **बलात् धर्म परिवर्तन–** सम्राट ने अनेक बार हिन्दुओं को बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन करने के लिए भी बाध्य किया, अन्यथा उनको प्राणदण्ड देने की धमकी दी। जाट नेता गोकुल के परिवार को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया। सिक्ख गुरु तेगबहादुर सिंह को इस्लाम स्वीकार करने के लिए अनेक यातनाएँ दी गई और अन्त में बादशाह के हुक्म से उनका सिर काट दिया गया।

(vi) **हिन्दुओं के विरुद्ध नियम–** औरंगजेब ने दीपावली पर बाजारों में रोशनी करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। होली खेलने, हिन्दू मेलों तथा धार्मिक उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। राजपूतों के अतिरिक्त अन्य जाति के हिन्दुओं के लिए हथियार लेकर अच्छी नस्ल के घोड़ों एवं पालकी पर चलने की प्रथा को बन्द कर दिया।

(vii) **इस्लाम ग्रहण करने के लिए प्रलोभन–** औरंगजेब ने मुसलमान बन जाने की शर्त पर हिन्दुओं को ऊँचे पद दिए जाने और कैद से छुटकारा पाने का प्रलोभन दिया। **डॉ० एस० आर० शर्मा** ने लिखा है कि ''चाहे जो भी अपराध होता था, इस्लाम स्वीकार कर उसका प्रायश्चित हो सकता था।''

9. ''औरंगजेब मुगल साम्राज्य का अन्तिम शासक था, जिसकी मृत्यु से पहले ही विशाल साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया था।'' मुगल साम्राज्य के विघटन के लिए प्राप्त औरंगजेब को कहाँ तक उत्तरदायी मानते हैं।

उ०– **मुगल साम्राज्य के पतन मे औरंगजेब का उत्तरदायित्व–** औरंगजेब को निश्चय ही मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। यद्यपि पूर्ण रूप से नहीं तथापि मुगल वंश का पतन अधिकतर उसकी नीतियों का ही परिणाम था, क्योंकि वह किसी का भी हृदय जीतने में असफल रहा।

औरंगजेब की निम्नलिखित नीतियाँ मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी हैं—

(i) **राजपूत विरोधी नीति–** केवल राजपूतों को ही नहीं वरन् अन्य सहायकों को भी अपनी अनुदार तथा संकीर्ण नीति के कारण औरंगजेब ने अपना विरोधी बना लिया। सिक्ख, जाट, बुन्देले, मराठे सभी उसकी नीति से असन्तुष्ट होकर मुगल साम्राज्य के विनाश के लिए प्रयासरत रहने लगे। मराठों ने दक्षिण में लूटमार मचा दी, जाटों ने मथुरा के आस-पास के प्रदेशों को उजाड़ा तथा गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में सिक्ख उसे जीवनभर परेशान करते रहे। इन विद्रोहों ने मुगल वंश का पतन निकट ला दिया।

(ii) **दक्षिण-नीति की विफलता–** औरंगजेब की दक्षिण-नीति ने राजकोष पर बुरा प्रभाव डाला। विशाल सेना होने के कारण आय का अधिकांश भाग केवल सेना पर व्यय होने लगा, जिससे अन्य दिशाओं में प्रगति अवरुद्ध हो गई। इसी कारण सम्राट शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखने में असफल रहा।

दक्षिण में शिया राज्यों को जीत लेने के साथ ही विकासोन्मुख मराठा शक्ति का सामना करने के लिए मुगलों को संघर्षरत होना पड़ा। मराठों की छापामार रण-पद्धति के सम्मुख मुगलों की विशाल सेना कुछ भी नहीं कर सकती थी। मराठों की सेना मुगल सेना एवं उनके प्रदेशों को अवसर पाते ही लूट लेती थी। इस प्रकार मराठों ने मुगलों का पतन और भी सन्निकट ला दिया।

(iii) **पुत्रों को शिक्षित न बनाने का संकल्प–** यद्यपि औरंगजेब धर्मान्ध तथा अनुदार था तथापि उसमें योग्यता का अभाव नहीं था। उसके पिता ने उसे उच्चकोटि की शिक्षा प्रदान की थी तथा सम्राट बनने से पूर्व उसने शासन-प्रबन्ध का पर्याप्त अनुभव भी प्राप्त कर लिया था। इसलिए विद्रोहों तथा संकटों के उपरान्त भी उसने राज्य को अपने हाथ से नहीं जाने दिया। वह शंकालु प्रकृति का था तथा उसे भय था कि उसके पुत्र योग्य बनकर कहीं उसके विरुद्ध विद्रोह न कर दें, जैसा कि उसने स्वयं अपने पिता के विरुद्ध किया था। उसने केवल शहजादे अकबर को व्यवहारिक शिक्षा देने का प्रयास किया था। शहजादे अकबर के विद्रोह के पश्चात् अपने अन्य शहजादों के प्रति सम्राट और भी सतर्क हो गया तथा उसने उन्हें कभी भी कोई महत्वपूर्ण प्रशासनिक भार सँभालने का अवसर नहीं दिया। उसने अपने पुत्रों पर भी कभी विश्वास नहीं किया तथा 90 वर्ष की वृद्धावस्था में भी लकड़ी के सहारे चलकर वह स्वयं सैन्य संचालन करता था। उसकी इसी नीति के कारण अनुभव से वंचित उसके उत्तराधिकारी विशाल साम्राज्य को सँभाल पाने में असमर्थ रहे।

(iv) **शासन का केन्द्रीकरण–** शंकालु प्रकृति के कारण औरंगजेब ने शासन की बागडोर पूर्णतया अपने हाथ में रखी। दक्षिण की विजयों के कारण मुगल साम्राज्य काफी विशाल हो गया था तथा एक व्यक्ति और एक केन्द्र से उसका समुचित

संचालन असम्भव हो गया था। सम्राट के स्वभाव के कारण सूबेदार अनुत्तरदायी हो गए तथा प्रजा पर अत्याचार करने लगे। उनके अधिकारों को छीनकर सम्राट ने शासन-व्यवस्था को दोषपूर्ण बना दिया। जब तक सम्राट शक्तिशाली रहा तब तक तो शासन सुचारु रूप से चलता रहा, परन्तु जैसे-जैसे वह वृद्ध होता गया उसकी कार्य करने की शक्ति क्षीण होने लगी तथा प्रान्तों पर से उसका अंकुश ढीला पड़ने लगा। दूरस्थ प्रान्तों के सूबेदार उसके नियन्त्रण से बाहर होने लगे तथा विद्रोह करने को तत्पर हो गए।

(v) **शासन-व्यवस्था की शिथिलता–** यद्यपि औरंगजेब साम्राज्य के छोटे-छोटे कार्यों का निरीक्षण भी स्वयं करता था परन्तु वह देश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने में असफल रहा। यद्यपि वह कुशल शासक था परन्तु उसकी यह धारणा बन गई थी कि वह स्वयं सबसे अधिक योग्य है। वह अपने बड़े-से-बड़े पदाधिकारी पर भी सन्देह करता था। ईर्ष्या और सन्देह की मात्रा उसमें इतनी प्रबल थी कि उसने सभी पर सन्देहपूर्ण दृष्टि रखनी आरम्भ कर दी थी। शासन-व्यवस्था में योग्य-से-योग्य व्यक्तियों के परामर्श की भी वह अवहेलना करने लगा था। इस सन्देहपूर्ण नीति का दुष्प्रभाव जनता पर पड़ा, जिससे शान्ति एवं समृद्धि का युग समाप्त हो गया।

(vi) **धर्मान्धता एवं असहिष्णुता की नीति–** सम्राट के रूप में औरंगजेब का आदर्श संकीर्ण एवं अनुदार था। वह मुसलमानों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझता था जबकि हिन्दुओं के प्रति उसकी नीति अत्याचारपूर्ण थी। वह बलपूर्वक इस्लाम धर्म का प्रचार करना अपना कर्त्तव्य समझता था। इस्लाम स्वीकार न करने पर वह हिन्दुओं को प्राणदण्ड तक दे देता था। भारत जैसे देश के लिए, जहाँ 80 प्रतिशत जनता हिन्दू थी, इस प्रकार की नीति अहितकर तथा घातक सिद्ध हुई। हिन्दुओं ने सम्राट के कठोर अत्याचार सहन किए, परन्तु धर्म परिवर्तन के लिए वे तैयार नहीं हुए। सम्राट ने जितने अधिक अत्याचार किए, उतनी ही अधिक विद्रोह की प्रवृत्ति हिन्दुओं में उत्पन्न हुई। इस प्रकार औरंगजेब की नीति मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई। औरंगजेब ने हिन्दुओं के प्रति ही नहीं, शियाओं के प्रति भी अनुदारतापूर्ण नीति अपनाई तथा योग्य एवं प्रतिभाशाली शियाओं की सेवाओं से साम्राज्य को वंचित कर दिया। उसकी इस धार्मिक नीति का परिणाम यह हुआ कि उसकी मृत्यु के 10-15 वर्ष पश्चात् ही मुगल साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया। औरंगजेब की इस धर्मांधता का मुगल साम्राज्य पर अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ा।

(vii) **आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास का अन्त–** औरंगजेब धर्म का अन्धा अनुयायी था तथा कुरान के अनुसार चलने के कारण ललित कलाओं का पोषण नहीं कर सकता था। उसे न संगीत में अभिरुचि थी, न चित्रकला में और न भवन-निर्माण-कला में। फलत: इन सभी ललित कलाओं का पतन उसके काल में हो गया। विद्वान होने पर भी साहित्यकारों को आश्रय देने में उसकी रुचि नहीं थी। फलत: सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में अरुचि के कारण औरंगजेब का युग संस्कृति के पूर्ण पतन का युग था।

10. मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।

उ०– मुगल साम्राज्य के पतन के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे—

(i) **औरंगजेब का उत्तरदायित्व–** औरंगजेब को एक राजा और राजनीतिज्ञ के रूप में असफल व्यक्ति कहा जा सकता है। चाहे-अनचाहे उसकी नीतियों ने मुगल साम्राज्य के विघटन और पतन की प्रक्रिया आरम्भ कर दी। उसकी धार्मिक नीति ने, जिसे उसने राजनीतिक और आर्थिक कारणों से प्रभावित होकर लागू किया था, बहुसंख्यक हिन्दुओं के मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न कर दी। उसने अपनी धर्मान्धता का परिचय देते हुए हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया, जिससे वे उसे केवल मुसलमानों का ही सम्राट मानने लगे और उसका विरोध करने की प्रवृत्ति उनमें तीव्र हो गई। धर्म को ही आधार बनाकर जाटों, सतनामियों, सिक्खों, राजपूतों, मराठों, यहाँ तक कि दक्कन की शिया रियासतों ने भी क्षेत्रीय स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिए और मुगलों को परेशान करने लगे। इन शक्तियों को दबाने में औरंगजेब की शक्ति एवं प्रतिष्ठा नष्ट हो गई, फिर भी इन पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित नहीं किया जा सका। इस प्रकार हिन्दुओं का समर्थन और सहयोग खोना औरंगजेब की एक बहुत बड़ी राजनीतिक भूल थी।

औरंगजेब की दूसरी बड़ी भूल राजपूतों का सहयोग खोना था। भारत में मुगल सत्ता के स्थाई स्तम्भ राजपूत ही थे। किन्तु इस स्तम्भ को औरंगजेब ने अपनी राजनीतिक अदूरदर्शिता एवं धार्मिक कट्टरपन से खो दिया। इसी प्रकार औरंगजेब ने गुरु तेगबहादुर का वध करवाकर सिक्खों को मुगल साम्राज्य के विरुद्ध खड़ा कर दिया। औरंगजेब की दक्षिण-नीति ने भी मुगल साम्राज्य के पतन में योगदान दिया। उसने बीजापुर और गोलकुण्डा को मुगल साम्राज्य में मिलाने की बड़ी राजनीतिक भूल की। इन दोनों राज्यों की समाप्ति के बाद दक्षिण में मराठों पर से सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थानीय नियन्त्रण समाप्त हो गया। इस प्रकार मराठों को संगठित एवं शक्तिशाली होने का एक और अवसर मिल गया। औरंगजेब की दक्षिण की यह मूर्खतापूर्ण नीति करीब 25 वर्ष तक चलती रही। इस लम्बी अवधि के दौरान अपार धन, जन एवं सेना का ह्रास हुआ, साथ ही उत्तर भारत की शासन-व्यवस्था भी कमजोर पड़ गई। इस अवसर का लाभ उठाकर अनेक प्रान्तीय सुल्तानों ने अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया।

(ii) **औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारी–** मध्ययुगीन साम्राज्य मात्र सम्राटों की योग्यता पर टिका रहता था, किन्तु दुर्भाग्य से औरंगजेब के बाद के मुगल सम्राट न तो योग्य थे और न चरित्रवान। वे अब तलवार से अधिक स्त्री और शराब को प्यार करने

लगे थे। औरंगजेब का उत्तराधिकारी बहादुरशाह 'शाह-ए-बेखबर' कहलाता था। **डॉ० श्रीराम शर्मा** के मतानुसार, ''कामबख्श ने बन्दीगृह में मृत्यु-शैय्या पर इस बात का तो पश्चाताप किया कि तैमूर का वंशज जीवित ही पकड़ा गया। किन्तु जहाँदारशाह और अहमदशाह को अपनी रखैलों के बाहु-बन्धनों में फँसे हुए कर्त्तव्य-विमुख अवस्था में बन्दी बनाए जाने पर तनिक भी लज्जा नहीं आई।'' इस प्रकार बहादुरशाह प्रथम से लेकर बहादुरशाह जफर तक के सभी शासकों में चारित्रिक, राजनीतिक, सैनिक अथवा प्रशासनिक क्षमता नहीं थी। ऐसी स्थिति में मुगल साम्राज्य का पतन होना स्वाभाविक था।

(iii) **मुगलों में उत्तराधिकार के नियम का अभाव–** मुगलों में राजगद्दी के लिए उत्तराधिकार का कोई नियम न था। प्रसिद्ध लेखक **अस्कीन** के अनुसार, ''तलवार ही उत्तराधिकार की एक मात्र निर्णायक थी। प्रत्येक राजकुमार अपने भाइयों के विरुद्ध अपना भाग्य आजमाने को उद्यत रहता था।'' औरंगजेब द्वारा किया गया उत्तराधिकार का युद्ध इसका उदाहरण है। वस्तुत: मुगलों में बादशाह के जीवनकाल में ही अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् गद्दी के महत्वाकांक्षी दावेदारों में संघर्ष हो जाता था। इस संघर्ष में मुगल अमीर, दरबारी, सूबेदार, जागीरदार, मनसूबदार यहाँ तक की महल की स्त्रियाँ तक भाग लेती थीं। इन संघर्षों से धीरे-धीरे मुगलों की प्रतिष्ठा, शक्ति, धन एवं जन की अपार क्षति हुई। इन संघर्षों ने मुगल साम्राज्य के पतन की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

(iv) **मुगल सामन्तों का नैतिक पतन–** मुगल सम्राट ही नहीं अपितु उनके सामन्तों का भी नैतिक पतन हो गया था। मुगल सामन्तों के जीवन में शराब, स्त्री, षड्यन्त्र, स्वार्थ, पद-लोलुपता का ही स्थान रह गया था। **जदुनाथ सरकार** के मतानुसार, ''कोई भी मुगल सामन्त एक या दो पीढ़ियों से अधिक समय तक अपना महत्व बनाए नहीं रख सका। यदि किसी सामन्त की वीरता के विषय में इतिहासकार ने तीन पृष्ठ लिखे तो उसके पुत्र के कार्यों का वर्णन केवल एक ही पृष्ठ में हुआ और उसके पौत्र का वर्णन केवल इस प्रकार के शब्दों में कि 'उसने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया' समाप्त हो जाता।'' अत: सामन्तों के उत्तरोत्तर नैतिक पतन ने मुगल साम्राज्य को काफी क्षति पहुँचाई।

(v) **जागीरदारी संकट– डॉ० सतीशचन्द** ने मुगल साम्राज्य के पतन के लिए मनसबदारी और जागीरदारी प्रथाओं की असफलता को जिम्मेदार बताया है। उनके अनुसार औरंगजेब के समय से ही युद्धों, प्रशासन-व्ययों और बादशाह तथा अमीर वर्ग की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति किया जाना कठिन हो गया था। आय का प्रमुख साधन भूमि थी, जो व्यय में वृद्धि के अनुपात में कम थी। अत: राज्य और प्रशासक वर्ग की आय और उनके व्यय के बीच अन्तर बढ़ता गया और जागीरदारी या मनसबदारी व्यवस्था के दोष सामने आने लगे। औरंगजेब की दक्षिण विजय ने इस संकट में और वृद्धि की। अब स्थिति यह हो गई कि जागीरें कम हो गईं और उनके माँगने वाले अधिक, जिससे जागीरदारी पाने वाले वर्ग में अच्छी जागीर प्राप्त करने की प्रतिद्वन्द्विता बढ़ गई। इस प्रतिद्वन्द्विता और संकट को एक अन्य प्रकार से भी बढ़ावा मिला। कागजों में जागीरों से प्राप्त होने वाली आय को बहुत पहले से वास्तविक आय से अधिक दिखाया जाता रहा था। ऐसी स्थिति में जागीर प्राप्त वर्ग ने अच्छी आय वाली जागीरों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इससे दरबार में दलबन्दी बढ़ने लगी। जागीरदारों ने भूमि को ठेकेदारों को देना शुरू कर दिया। ठेकेदार किसानों से अधिकतम लगान वसूलते थे। इससे किसानों ने लगान देना बन्द कर दिया और स्थानीय जमींदारों के माध्यम से विद्रोह कर दिया। अब मुगलों की आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक-शक्ति टूटती चली गई क्योंकि यह सब भूमि से प्राप्त आय पर ही निर्भर था। **प्रो० इरफान हबीब** ने भी आर्थिक संकट को ही मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरादायी माना है।

(vi) **मुगलों की सैन्य दुर्बलताएँ–** सैन्य दुर्बलताओं ने भी मुगलों के पतन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुगल सेना मनसबदारी व्यवस्था पर आधारित थी, परन्तु कालान्तर में यही व्यवस्था मुगल सेना की दुर्बलता का आधार बनी। उनकी सेना की स्वामिभक्ति सम्राट के प्रति नहीं रही। मुगल सेना में राष्ट्रीयता का भी सर्वथा अभाव था। मुगल सेना में अनुशासनहीनता एवं विलासिता भी प्रवेश कर गई थी। इसके अतिरिक्त गलत रणनीतियाँ, नौ सेना का अभाव, केवल मैदानी युद्धों में पारंगत होना, छापामार युद्ध से अनभिज्ञ होना इत्यादि कारणों ने मुगल सेना की क्षमता को नष्ट कर दिया। **सर वूल्जले हेग** ने लिखा है, ''सेना की चरित्रहीनता ही साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों में से एक थी।''

(vii) **बौद्धिक पतन–** बौद्धिक पतन को भी मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी माना गया है। निश्चय ही मुगलों के अधिकांश शासनकाल में शिक्षा की व्यवस्था समुचित नहीं थी और जो थी भी वह समय के अनुकूल न रही। उसमें तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा का पूर्णत: अभाव था और उदार मानवीय भावना के विकास में सहयोग देने में बहुत कमी थी। इस कारण प्रशासन में योग्य व्यक्तियों का अकाल सा पड़ गया। परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया।

(viii) **मुगल साम्राज्य का आर्थिक दिवालियापन–** कोई भी साम्राज्य सम्राट की योग्यता, सेना की सुदृढ़ता और राजकोष में पर्याप्त धन पर निर्भर करता है। मुगल साम्राज्य के पास इन तीनों का ही अभाव हो गया था। शाहजहाँ ने भवन-निर्माण आदि कार्यों में प्रचुर मात्रा में धन व्यय किया। औरंगजेब ने दक्षिण के दीर्घकालीन युद्धों में न केवल राजकोष को ही खाली किया बल्कि देश के व्यापार एवं उद्योगों को भी नष्ट किया। **सर जदुनाथ सरकार** के अनुसार, ''एक बार तो मुगल जनानखाने में तीन दिन तक चूल्हे में आग नहीं जली। शहजादियाँ अधिक समय तक भूख सहन नहीं कर सकीं और पर्दे की परवाह न करते हुए महल से निकलकर शहर की ओर दौड़ पड़ीं।'' जिस शासन की हालत इतनी गिर जाए, फिर वह अधिक समय तक किस प्रकार चल सकता था।

(ix) **नौसेना का अभाव–** नौसेना का अभाव अप्रत्यक्ष रूप से मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी कारण माना जाता है। नौसेना के अभाव से उत्पन्न दुर्बलता उस समय प्रकट हुई जब 16 वीं सदी में यूरोप के निवासी भारत आए और समुद्र पर अधिकार स्थापित करके उन्होंने भारत के विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण स्थापित किया। व्यापारिक दृष्टि से यूरोपियनों पर निर्भरता ने भारतीय शासकों को उन्हें व्यापारिक सुविधाएँ देने के लिए बाध्य किया, जिससे अन्त में उनमें से एक को (अंग्रेजों को) भारत में राज्य स्थापित करने का अवसर मिला।

(x) **मुगल साम्राज्य की विशालता और मराठों का उत्कर्ष–** औरंगजेब के काल में मुगल साम्राज्य का विस्तार बहुत विस्तृत हो गया था। एक व्यक्ति के लिए एक केन्द्र से इस विशाल साम्राज्य को सम्भालना मुश्किल था। औरंगजेब दक्षिण में मराठों से उलझकर असफल हो गया। मराठों के उत्कर्ष ने मुगल साम्राज्य को बौना और असहाय कर दिया और इसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। इस विशाल साम्राज्य में कुछ समय पश्चात् ही विभिन्न शक्तियाँ मुगल साम्राज्य से अलग हो गई और मुगल साम्राज्य का विघटन शुरू हो गया।

(xi) **दरबार में गुटबाजी–** औरंगजेब के पश्चात् मुगल दरबार आपसी गुटबन्दी का अड्डा बन गया। आसफजहाँ निजामुलमुल्क, कमरूद्दीन, जकरिया खाँ, अमीर खाँ और सआदत खाँ प्रमुख गुटों के नेता थे। इन गुटों में अक्सर युद्ध होते रहते थे। इस प्रकार जहाँ औरंगजेब के पूर्व दरबारियों और सरदारों जैसे महावत खाँ, अब्दुर्रहीम खानखाना, बीरबल, सादुल्ला खाँ, मीर जुमला आदि ने साम्राज्य के हितों की सुरक्षा की थी, वहीं बाद के सरदारों ने अपने स्वार्थ में अन्धा होकर बादशाह और साम्राज्य दोनों को क्षति पहुँचाई।

(xii) **नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण–** मुगल साम्राज्य की रही-सही प्रतिष्ठा को इन दोनों विदेशी आक्रमणकारियों ने समाप्त कर दिया। नादिरशाह ने 1739 ई० में मुगल सम्राट को दिल्ली में कैद कर लिया और दिल्ली को जमकर लूटा तथा राजकोष में जितना भी धन, हीरे-जवाहरात व वस्तुएँ थीं सब अपने साथ ले गया। बची-खुची इज्जत को अहमदशाह अब्दाली ने 1761 ई० में समाप्त कर दिया और पानीपत के तीसरे युद्ध में उसने मुगल साम्राज्य के साथ मराठों की प्रतिष्ठा को भी धूल में मिला दिया।

(xiii) **यूरोपवासियों का आगमन–** 1600 ई० में स्थापित ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में व्यापार के नाम पर धीरे-धीरे अपने राजनीतिक पैर पसारने शुरू कर दिए। 18 वीं शताब्दी के मध्य तक कम्पनी ने यूरोप से आने वाली दूसरी शक्तियों को भारत से निकाल दिया। 1757 और 1761 ई० के क्रमश: प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी बंगाल, बिहार और उड़ीसा (ओडिशा) की स्वामी बन गई। इस प्रकार अंग्रेजों के बढ़ते राजनीतिक प्रभाव ने मुगल शक्ति और प्रतिष्ठा को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया और अन्तत: 1857 ई० में अंग्रेजों ने ही मुगलों के शासन का हमेशा के लिए अन्त कर दिया।

5

मुगलकालीन शासन-व्यवस्था, कला व साहित्य

(Administration, Society, Art and Literature during Mughal Period)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. **1631 ई०** 2. **1739 ई०** 3. **1580 ई०** 4. **1639 ई०**

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ-संख्या— 107 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठय-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 107 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 108 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 108 व 119 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **''मुगल शासक स्थापत्य कला के संरक्षक थे।'' स्पष्ट कीजिए।**

उ०– मुगल शासन में भारत में स्थापत्य कला का बहुमुखी विकास हुआ। मुगलों ने शानदार किलों, राजमहलों, दरवाजों, सार्वजनिक इमारतों, मस्जिदों, मकबरों आदि का निर्माण करवाया। इस दृष्टि से मुगलकाल को गुप्तकाल के बाद उत्तर भारत का दूसरा स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। मुगलों की स्थापत्य कला ने भारतीय स्थापत्य के इतिहास में नवीन युग का प्रादुर्भाव किया। इस युग में मध्य एशियाई तथा भारतीय दोनों शैलियों का समन्वय हुआ जो अकबर के समय में चर्मोत्कर्ष पर पहुँच गया। अकबर के

काल में इस्लामी और हिन्दू कला के मिश्रण से स्थापत्य कला का विकास हुआ। शेरशाह का मकबरा, बुलन्द दरवाजा, ताजमहल, आगरा का लाल किला, दिल्ली का लाल किला, जामा मस्जिद, अकबर का मकबरा, मोती मस्जिद आदि मुगलकाल की स्थापत्य कला के उदाहरण आज भी विद्यमान हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि मुगल शासक स्थापत्य कला के संरक्षक थे।

2. मुगलकालीन चित्रकला पर प्रकाश डालिए।

उ०– भवन निर्माण कला के समान ही चित्रकला को भी मुगल सम्राटों ने राजाश्रय प्रदान किया। बाबर और हुमायूँ चित्रकला के शौकीन थे। अकबर को चित्रकला से विशेष अनुराग था। अकबर ने चित्रकला में भी देशी तथा विदेशी तत्वों का सुन्दर सम्मिश्रण करने में सफलता प्रदान की। फतेहपुर सीकरी की दीवारों पर उसने सुन्दर चित्रकारी करवाई। दरबार में साप्ताहिक प्रदर्शनियों की व्यवस्था करके उसने चित्रकला को प्रोत्साहन दिया। जहाँगीर का काल मुगल चित्रकला का स्वर्ण-युग था। जहाँगीर स्वयं चित्रकार था। इस समय चित्रकला में नवीनता, मौलिकता, स्वाभाविकता, गतिशीलता एवं सजीवता थी। प्राकृतिक दृष्यों का सूक्ष्म, भावपूर्ण तथा स्वाभाविक चित्रण एवं व्यक्ति चित्र और युद्धों व आखेट के चित्रों का निर्माण इस कला की विशेषता थी। शाहजहाँ के उत्तराधिकारी औरंगजेब के काल में चित्रकला का पतन हो गया। इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी होने कारण व किसी भी कला को राजाश्रय प्रदान करना पाप समझता था। उसने अपने दरबार के सभी चित्रकारों को निकलवा दिया। बीजापुर के महल और सिकंदरा में अकबर के मकबरें की चित्रकारी को नष्ट करवा दिया।

मुगलकाल की चित्रकला शैली की दृष्टि से सजीव एवं स्वाभाविक है। मुगलकाल के चित्र हिन्दूकाल के चित्रों के समान धार्मिक भावनाओं पर आधारित नहीं थे। इन चित्रों को दरबारी चित्र कहा जा सकता था। मुगलकाल के चित्रकारों में मीर सैयद, अब्दुल समद, फारुख बेग, जमशेद दशवन्त, हरिवंश, जगन्नाथ, धर्मराज, उस्ताद मंसूर विशनदान, मनोहर आदि प्रमुख थे।

3. ताजमहल की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– ताजमहल की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(i) ताजमहल शाहजहाँ द्वारा सफेद संगमरमर से निर्मित अमूल्य और सुन्दरतम कृति है।
(ii) शाहजहाँ ने ताजमहल अपनी प्रिय पत्नी मुमताजमहल की स्मृति में बनवाया।
(iii) मुमताज महल और शाहजहाँ के कब्रें इसी सुन्दर मकबरे में बनाई गई हैं।
(iv) ताजमहल का निर्माण 22 वर्ष में पूर्ण हुआ, जिसमें प्रतिदिन 20 हजार मजूदरों ने काम किया।
(v) ताजमहल चार खूबसूरत बागों के बीचो-बीच स्थित है।
(vi) ताजमहल के चबूतरे के चारों कोनों पर सफेद मीनारें हैं।
(vii) ताजमहल सुन्दर चित्रकारी से अलंकृत है।
(viii) चाँदनी रात में ताजमहल की शोभा अतुलनीय प्रतीत होती है।

4. मुगलकालीन चार पुस्तकों और उनके लेखकों पर प्रकाश डालिए।

उ०– मुगलकालीन चार पुस्तक और उनके लेखक निम्नवत् हैं—

पुस्तक	**लेखक**
अकबरनामा	अबुलफजल
हुमायूँनामा	गुलबदन बेगम
रामचरितमानस	तुलसीदास
सूरसागर	सूरदास

5. मुगलकाल में हिन्दी साहित्य की प्रगति का विवरण दीजिए।

उ०– मुगलकाल में फारसी साहित्य के समान हिन्दी साहित्य की भी खूब उन्नति हुई। अकबर की सहिष्णुता नीति से हिन्दी साहित्य अत्यन्त समृद्ध हुआ। राजा बीरबल, राजा मानसिंह, राजा भगवान दास, नरहरि और हरिनाथ अकबर के राजदरबार से सम्बन्धित विद्वान थे। नन्ददास, बिट्ठलनाथ, परमानन्ददास आदि कवियों के व्यक्तिगत प्रयत्नों ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया। इस काल में तुलसीदास ने 25 ग्रन्थों की रचना की जिसमें 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' प्रमुख है। सूरदास ने 'सूससागर' रहीम ने 'रहीम सतसई' और रसखान ने 'प्रेमवाटिका' नामक ग्रन्थों की रचना। की। जहाँगीर का भाई हिन्दी में कविता करता था। शाहजहाँ के संरक्षण में सुन्दर कविराम, कविन्द्र आचार्य, शिरोमणि मणि बनारसीदास आदि हिन्दी के विद्वान थे।

6. उद्यान निर्माण कला में मुगलों की अभिरूचि एवं उनकी देन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उ०– बाबर को बागवानी का बहुत शौक था। उसने आगरा और लाहौर के पास कुछ बगीचे बनवाए। जहाँगीर द्वारा निर्मित उद्यान जैसे— कश्मीर का निशातबाग, लाहौर का शालीमार और पंजाब की तलहटी का पिंजौर बाग आज तक कायम हैं, जो उसकी कला-प्रेमी प्रकृति के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

7. मुगलकाल में कृषकों की दशा का वर्णन कीजिए।

उ०– सदैव की भाँति मुगलकाल में भी भारत का प्रमुख व्यवसाय खेती था। सिंचाई के उपयुक्त साधनों के अभाव में कृषक अधिकतर

प्रकृति पर निर्भर रहते थे। अतिवृष्टि या अनावृष्टि के समय दुर्भिक्ष पड़ने पर कृषकों की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती थी। सरकार की सहायता मिलने पर भी उनकी दशा में कोई विशेष सुधार नहीं होता था। दुर्भिक्ष के अतिरिक्त बहुधा युद्धों और सेनाओं के आगमन के कारण भी कृषकों को काफी कष्ट उठाना पड़ता था। बादशाह की निरन्तर चेतावनी के बाबजूद भी कई बार सैनिक उनके खेतों को रौंद डालते थे।

8. मुगलकाल में स्त्रियों की दशा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उ०– मुगलकाल में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं था। वे केवल विलास के लिए उपयुक्त समझी जाती थीं। बहु विवाह प्रथा, पर्दा प्रथा, तथा अशिक्षा के दुर्दशों ने स्त्री-समाज को पतित बना दिया था। तदापि कुछ प्रसिद्ध स्त्रियाँ इस काल में हुई, जिनमें गुलबदन बेगम, नूरजहाँ, जहाँआरा, रोशनआरा तथा जेबुन्निसा के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त अहमदनगर की चाँदबीबी, गोंडवाना की दुर्गाबाई, शिवाजी की माता जीजाबाई तथा राजाराम की विधवा ताराबाई भी नारी रत्न थीं, जिन्होने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित कर ख्याति प्राप्त की। हिन्दू स्त्रियों में बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि अनेक कुप्रथाएँ विद्यमान थीं, जिनके कारण उनका समाज में घोर अध:पतन हो रहा था।

9. किन्हीं दो मुगल बादशाहों के नाम लिखिए, जिन्होंने अपनी आत्मकथा लिखी।

उ०– अपनी आत्मकथा लिखने वाले दो मुगल बादशाह बाबर और जहाँगीर थे। बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुके बाबरी' तथा जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुके जहाँगीरी' के नाम से लिखी।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. मुगलकाल में साहित्य एवं चित्रकला के विकास पर प्रकाश डालिए।

उ०– मुगलकाल में साहित्य का विकास– मुगल शासनकाल साहित्यिक दृष्टि से प्रगतिशील था। इस काल में फारसी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा अन्य सभी प्रकार के साहित्य का विकास हुआ। मुगल सम्राटों ने साहित्य की प्रगति में योगदान दिया और इसे संरक्षण प्रदान किया। इस काल के साहित्यिक विकास को निम्न रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है—

(i) फारसी साहित्य– मुगलों के समय में फारसी राजभाषा बन गई थी। अकबर के शासनकाल तक फारसी का ज्ञान इतना फैल चुका था कि अब राजस्व के दस्तावेज फारसी के साथ-साथ स्थानीय भाषा (हिन्दी) में भी रखने की जरूरत खत्म हो गई। प्रथम मुगल सम्राट बाबर स्वयं तुर्की और फारसी का विद्वान था। उसने अपनी आत्मकथा 'तुजुके-बाबरी' अथवा 'बाबरनामा' की रचना तुर्की में की। **एल्फिंस्टन** के अनुसार बाबर की यह जीवनी ही सारे एशिया में वास्तविक ऐतिहासिक सामग्री है। बाबर का कविता संग्रह 'दीवान' (तुर्की) बहुत प्रसिद्ध हुआ। हुमायूँ मुगल शासकों में अत्यन्त शिक्षित था। वह न केवल तुर्की तथा फारसी साहित्य का अच्छा ज्ञाता था अपितु दर्शन, गणित आदि का भी ज्ञाता था। दुर्भाग्यवश वह साहित्यिक प्रोत्साहन को विशेष योगदान नहीं दे सका। अकबर का काल सांस्कृतिक प्रगति के साथ-साथ साहित्यिक पुनरुत्थान का भी युग था। मौलिक रचनाओं के साथ-साथ अनुदित रचनाएँ भी बाहुल्यता में प्रकाश में आईं। अकबर के शासनकाल के दौरान अबुल फजल का 'अकबरनामा' और 'आइने-अकबरी', निजामुद्दीन अहमद का 'तबकाते अकबरी', गुलबदन बेगम का 'हुमायूँनामा', अब्बास सरवानी का 'तौफीक-ए-अकबरशाही', बदायूँनी का 'मुन्तखब-उत-तवारीख', अहमद यादगार का 'तारीखे सलातीने अफगाना', बयाजिद सुल्तान का 'तारीखे हुमायूँ' और फैजी सरहिन्दी का 'अकबरनामा' आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। इस काल में अकबर के प्रोत्साहन से महाभारत का अनुवाद 'रज्यनामा' नाम से नकीब खाँ, बदायूँनी, अबुल फजल, फैजी आदि के सम्मिलित प्रयत्नों से फारसी में किया गया। बदायूँनी ने रामायण का अनुवाद किया। उसने अथर्ववेद का अनुवाद आरम्भ किया और उसको हाजी इब्राहिम सरहिन्दी ने पूरा किया। 'लीलावती' का अनुवाद फैजी ने किया। राजतरंगिणी का अनुवाद शाह मुहम्मद शाहाबादी ने, कालियदमन का अबुल फजल ने और नल-दमयन्ती का फैजी ने अनुवाद किया।

(ii) हिन्दी साहित्य– मुगलकाल में फारसी साहित्य के समान हिन्दी साहित्य की भी खूब उन्नति हुई। यद्यपि अकबर से पूर्व हिन्दी साहित्य का विकास प्रारम्भ हो चुका था और 'पद्मावत' तथा 'मृगावत' जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी तथापि अकबर की सहिष्णु नीति से हिन्दी साहित्य अत्यन्त समृद्ध हुआ। राजा बीरबल, राजा मानसिंह, राजा भगवानदास, नरहरि और हरिनाथ अकबर के राजदरबार से सम्बन्धित विद्वान थे। नन्ददास, विट्ठलनाथ, परमानन्ददास, कुम्भनदास आदि कवियों ने व्यक्तिगत प्रयत्नों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया। इस काल में तुलसीदास ने लगभग 25 ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' प्रमुख हैं। सूरदास ने 'सूरसागर', रहीम ने 'रहीम सतसई' और रसखान ने 'प्रेमवाटिका' नामक काव्य ग्रन्थों की रचना की। मीराबाई के भजन भी हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अकबर का समय हिन्दी साहित्य का स्वर्णकाल था। जहाँगीर के दरबार में राजा सूरजसिंह, अगरूप गोसाई और बिशनदास जैसे हिन्दी के विद्वान थे। जहाँगीर का भाई दानियाल हिन्दी में कविता करता था। शाहजहाँ के संरक्षण में सुन्दर कविराय, सेनापति, कविन्द्र आचार्य, शिरोमणि मिश्र, बनारसीदास आदि हिन्दी के विद्वान थे। इनके अतिरिक्त अहमदाबाद के दादू ने, जिन्होंने दादू-पन्थी सम्प्रदाय को प्रारम्भ किया, अनेक धार्मिक कविताओं की रचना की। हिन्दी के महान् कवि बिहारी को राजा जयसिंह का संरक्षण प्राप्त हुआ था। इसी समय में केशवदास ने कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचन्द्रिका की रचना की। औरंगजेब ने हिन्दी को संरक्षण नहीं दिया।

(iii) संस्कृत साहित्य– मुगलकाल में संस्कृत साहित्य की श्रेष्ठ मौलिक रचनाओं का अभाव रहा, परन्तु तब भी संस्कृत भाषा की स्थिति दिल्ली सुल्तानों के काल से अच्छी रही। अकबर ने संस्कृत को राज्याश्रय प्रदान किया। 'पारसी प्रकाश' नामक संस्कृत व फारसी का कोष इसी समय लिखा गया। महेश ठाकुर ने अकबर के समय का संस्कृत में इतिहास लिखा। जैन विद्वानों में पद्मसुन्दर कृत 'अकबरशाही श्रृंगार-दर्पण', सिद्धचन्द्र उपाध्याय कृत 'भानुचन्द चरित्र', देव मिलन कृत 'हीर सौभाग्यम्' आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ हैं। संस्कृत के महान् पण्डित कवीन्द्र आचार्य सरस्स्वती और पण्डित जगन्नाथ शाहजहाँ के राजकवि थे। शाहजहाँ के दरबार में अनेक संस्कृत कवि अपनी कविताओं पर पुरस्कार प्राप्त करते थे। औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियों ने संस्कृत को न तो संरक्षण दिया और न प्रोत्साहन।

(iv) उर्दू साहित्य– अमीर खुसरो पहला विद्वान था, जिसने उर्दू भाषा को अपनी कविताओं का माध्यम बनाया। उसके पश्चात् सूफी सन्तों और भक्ति मार्ग के कुछ सन्तों ने भी अपने विचारों के प्रचार के लिए इसका प्रयोग किया तथा इसे लोकप्रिय बनाने में सहायता दी, परन्तु उर्दू को किसी भी तुर्क अथवा शक्तिशाली मुगल बादशाहों ने सरंक्षण नहीं दिया। मुहम्मदशाह (1719-1748 ई०) पहला बादशाह था, जिसने उर्दू को प्रोत्साहन दिया। उसने प्रसिद्ध कवि शम्सुद्दीन वली को दरबार में सम्मान दिया। इसके पश्चात् उर्दू का विकास होता गया और उर्दू दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश में पर्याप्त लोकप्रिय हो गई। उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजों ने भी उर्दू को प्रोत्साहन दिया।

(v) बंगला साहित्य– बंगला साहित्य का उत्थान भी इस युग में सम्भव हो सका। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रसारित कृष्णभक्तिमार्गी अनेक सन्त भक्तों ने भजन, पद तथा गीत निर्मित किए। चैतन्य के जीवन-चरित्र पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए, जिन्होंने बंगाल के निवासियों को भगवत् प्रेम तथा उदारता की भावना से ओत-प्रोत कर दिया। इस समय कई महाकाव्यों तथा 'भागवत्' का बंगला भाषा में अनुवाद किया गया तथा चण्डी देवी और मनसा देवी पर ग्रन्थों की रचनाएँ हुई। काशी, रामदास, जयचन्द (चैतन्य चरितामृत) और मुकुन्दराम चक्रवर्ती (कवि-कंकन-चण्डी) इस युग के प्रमुख विद्वान थे।

(vi) मराठी साहित्य– इस समय का मराठी साहित्य भी धार्मिक एवं भक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत है। प्रारम्भ में 'रामायण', 'महाभारत' तथा 'भागवत्' को आधार मानकर कुछ ग्रन्थों की मराठी में रचना की गई, जिनमें 'हरि-विजय', 'राम विजय', 'शिवलीलाकृत' आदि प्रमुख हैं। इस काल के मराठी विद्वानों में 'रघुनाथ पण्डित', 'मुक्तेश्वर' तथा 'समर्थ गुरु रामदास' प्रमुख हैं। रामदास भक्त, कवि एवं उपदेशक थे, जिन्होंने राष्ट्रप्रेम की भावनाएँ प्रसारित की। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'दास-बोध' है। तुकाराम भी इसी युग की विभूति हैं, जिनके भक्ति से ओत-प्रोत पद मराठी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

(vii) गुजराती साहित्य– हिन्दी, बंगला तथा मराठी भाषाओं के समान गुजराती भाषा में भी इस समय उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रन्थों की रचना की गई। गुजरात के प्रसिद्ध कवि **अरबा** ने अकबर के काल में 'चित-विचार', 'संवाद-शतपद', 'कैवल्य गीता' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। तदुपरान्त प्रेमानन्द ने भक्ति रस के पदों से गुजराती साहित्य में एक अपूर्व परिवर्तन ला दिया। उन्होंने 26 ग्रन्थों की रचना की तथा उनके पद आज भी गुजरात में लोकप्रिय हैं। इसके पश्चात सामल ने पौराणिक कथाओं का सुन्दर ढंग से वर्णन करने की ख्याति प्राप्त की। इनके अतिरिक्त 'वल्लभ', 'मुकुन्द', 'देवीदास', 'शिवदास', 'विष्णुदास' आदि अन्य प्रसिद्ध कवि इस युग में उपन्न हुए।

(viii) पुस्तकालय– मुगल बादशाहों को हस्तलिखित पुस्तकें संकलित करने में विशेष अभिरुचि थी। हुमायूँ ने लाहौर में एक पुस्तकालय बनवाया, जिसकी सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हुई। अकबर ने पुस्तकालय में 24,000 हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह किया था, जिनमें अनेक पुस्तकों में सुन्दर-सुन्दर चित्र अंकित थे। जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने भी अपने महान् पूर्वजों का अनुसरण करते हुए पुस्तकालय में महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह करवाया था।

मुगलकाल में चित्रकला का विकास– भवन निर्माण कला के समान ही चित्रकला को भी मुगल सम्राटों ने राज्याश्रय प्रदान किया तथा इस समय चित्रकला का चरम् विकास हुआ। भारत में प्राचीनकाल से ही हिन्दू राजाओं के दरबारों में चित्रकला को प्रोत्साहन मिलता रहा था तथा उस समय के भित्तिचित्र तथा मनुष्यों के चित्र आज भी दर्शनीय हैं, परन्तु सल्तनत काल में मुस्लिम सुल्तानों ने चित्रकला को प्रोत्साहित नहीं किया अपतु फिरोज तुगलक ने तो दीवारों पर चित्र बनाने अथवा मनुष्यों के चित्र बनाने पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया था, अत: सल्तनत काल में चित्रकला नष्ट हो गई। मुगलकाल में उसका पुनरुत्थान हुआ। इस समय भारतीय तथा ईरानी चित्रकला का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ।

(i) बाबर और हुमायूँ– बाबर अपने पूर्वजों के समान चित्रकला का शौकीन था तथा उसने चित्रकला को प्रोत्साहित किया। वह प्रकृति का प्रेमी था तथा उसकी आत्मकथा 'तुजुके-बाबरी' इस बात की पुष्टि करती है कि प्राकृतिक रमणीय दृश्यों को देखकर वह कितना आनन्दित हो उठता था। परन्तु उसके काल के विशेष चित्र इस समय उपलब्ध नहीं हैं। उसके उत्तराधिकारी हुमायूँ को भी चित्रकला का शौक था तथा ईरान से लौटते समय वह अपने साथ दो ईरानी चित्रकारों **मीर** सैयद अली तबरीजी और ख्वाजा अब्दुल समद को भारत लाया था। हुमायूँ का निर्वासन के दौरान सफाविद दरबार में सर्वप्रथम फारसी कला से परिचय हुआ। वहाँ के शासक तहमास्प ने फारसी कला को अत्यधिक प्रश्रय दिया लेकिन वह धीरे-धीरे कट्टरवाद की ओर अग्रसर हो गया।

(ii) अकबर– अकबर को चित्रकला से विशेष अनुराग था तथा उसके दरबार में लगभग सौ हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकार रहते थे। इनमें अब्दुल समद, फारुख बेग, जमशेद, दशवन्त, बसावन, मुकुन्द, लालगेसू, हरिवंश, जगन्नाथ, भवानी तथा

धर्मराज प्रमुख चित्रकार थे। उसके दरबार के 17 प्रमुख चित्रकारों में अधिकतर हिन्दू ही थे तथा ईरानी अथवा विदेशी कलाकारों की संख्या बहुत कम थी। विदेशी चित्रकारों में मीर सैयद अली, अब्दुल समद, अकारिजा और फर्रुखबेग मुख्य थे। अकबर ने चित्रकला में भी देशी तथा विदेशी तत्वों का सुन्दर सम्मिश्रण करने में सफलता प्राप्त की तथा उसके काल की कला पूर्णत: भारतीय थी। अकबर ने जफरनामा, चंगेजनामा, कालियादमन, रज्मनामा, नल-दमयन्ती तथा रामायण के चित्रों का निर्माण करवाया। फतेहपुर सीकरी की दीवारों पर उसने सुन्दर चित्रकारी करवाई। दरबार में साप्ताहिक प्रदर्शनियों की व्यवस्था करके तथा पुरस्कार प्रदान करके उसने चित्रकला को प्रोत्साहन दिया। उसने चित्रकारों को उच्च मनसब प्रदान किए तथा उनके लिए चित्रशालाओं की व्यवस्था की।

(iii) जहाँगीर– नि:सन्देह मुगल चित्रकला का स्वर्ण-युग जहाँगीर का काल माना जाता है। जहाँगीर स्वयं चित्रकार था तथा प्रकृति के दृश्यों से उसे अगाध प्रेम था। वह चित्रकला की सूक्ष्म वृत्तियों से परिचित था तथा चित्रकारों का ध्यान उनकी त्रुटियों की ओर आकर्षित करता रहता था। कहा जाता है कि वह चित्र देखकर चित्रकार का नाम बतला सकता था। उसके काल में पौधों, वृक्षों, पुष्पों तथा पशु-पक्षियों के चित्र निर्मित हुए। प्राकृतिक दृश्यों को भी अनेक चित्रकारों ने अपनी तूलिका से विविध रंगों एवं आकृतियों में चित्रित किया। जहाँगीर के काल में चित्रकारी पुष्ट तथा परिपक्व होकर पूर्णता को प्राप्त हुई। सम्राट को भारतीय चित्रकला की शैली पसन्द थी तथा उसने ईरानी प्रभाव से चित्रकला को मुक्त किया तथा विदेशी तत्वों का भारतीय शैली से सुन्दर सामंजस्य स्थापित किया।

इस प्रकार जहाँगीर का काल मुगल चित्रकला का स्वर्ण-युग था। इस समय चित्रकला में नवीनता, मौलिकता, स्वाभाविकता, गतिशीलता तथा सजीवता थी। प्राकृतिक दृश्यों का सूक्ष्म, भावपूर्ण तथा स्वाभाविक चित्रण एवं व्यक्ति चित्र और युद्धों व आखेट के दृश्य चित्रों का निर्माण इस कला की विशेषता थी। इस समय के चित्रकारों में उस्ताद मंसूर, आगार खाँ, फारुखबेग, मुहम्मद नादिर, केशव, बिशनदास, मनोहर, माधव, गोवर्धन, तुलसी आदि प्रमुख थे। लेकिन **पर्सी ब्राउन** के अनुसार— ''जहाँगीर के निधन के साथ ही मुगल चित्रकला की आत्मा विलीन हो गई।''

(iv) शाहजहाँ– वैसे तो शाहजहाँ के काल में भी चित्रकला को प्रोत्साहन मिला, परन्तु शाहजहाँ को चित्रकला से उतना प्रेम नहीं था, जितना भवन निर्माण कला से। उसके काल में चित्रकला अलंकरण से युक्त होकर अपनी मौलिकता तथा सजीवता को खो बैठी। शाहजहाँ ने रंगो के स्थान पर बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग आरम्भ करवाया। उसके द्वारा निर्मित भवनों में चित्रकला शाही वैभव को प्रदर्शित करती है, जिसमें स्वर्ण तथा बहुमूल्य रत्नों का अत्यधिक प्रयोग किया गया है, परन्तु इस समय चित्रकला का धीरे-धीरे पतन आरम्भ होने लगा। इस काल के चित्र नीरस तथा भाव विहीन हैं, जिनमें केवल रंगों को प्रधानता दी गई है। शाहजहाँ ने अपने शासनकाल के 8वें वर्ष में अपने शासन के आधिकारिक इतिहास 'पादशाहनामा' लिखने का आदेश दिया था, जिसके मूल पाठ के साथ दिए गए चित्र दरबारी समारोहों और महत्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण करते हैं।

इस समय के चित्रों का प्रमुख विषय सामन्ती दरबार के दृश्यों तथा रत्नजड़ित वस्त्राभूषण आदि का प्रदर्शन मात्र रह गया था, जिसमें कला की सूक्ष्मता का सर्वथा अभाव था। शाहजहाँ के काल के व्यक्ति चित्र (Portraits) वास्तव में अत्यन्त सुन्दर, सजीव तथा भावपूर्ण थे। भावव्यंजना, मुख मुद्रा तथा आन्तरिक अभिव्यक्ति में ये चित्र श्रेष्ठ थे, परन्तु इन चित्रों की माँग बढ़ने पर व्यक्ति चित्र के स्वतन्त्र चित्रण के स्थान पर उनकी प्रतिकृतियाँ बनाई जाने लगीं, जिन्होंने कला को निम्न स्तर पर पहुँचा दिया। इसी प्रकार पशुओं के चित्रों में भी अस्वाभाविकता की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। शाहजहाँ के काल के प्रमुख चित्रकार मीर हाशिम, मुहम्मद नादिर, विचित्र, चित्रमन, अनूप तथा चिन्तामणि थे।

मुगलकालीन चित्रकला की विशेषताएँ– मुगलकाल में चित्रकला के अनेक विषय थे, जैसे— आखेट, युद्ध, शाही राजसभा, सामन्तों के जीवन के दृश्य, पौराणिक कहानियों के विभिन्न दृश्य, व्यक्ति चित्र, पशु-पक्षियों, वृक्षों, पुष्पों तथा पौधों के चित्र आदि। ये चित्र हिन्दूकाल के चित्रों के समान धार्मिक भावनाओं पर आधारित नहीं थे। इन चित्रों को दरबारी चित्र कहा जा सकता है क्योंकि जनता की भावनाओं का चित्रण इनमें नहीं है।

मुगलकाल की चित्रकला शैली की दृष्टि से सजीव एवं स्वाभाविक है। धीरे-धीरे ईरानी कला के प्रभाव से मुक्त होकर वह पूर्णतया भारतीय हो गई। इसकी विशेषता ''रेखाओं की गोलाई और कोमलता, आकृतियों में गति और स्फूर्ति, हस्तमुद्राओं में सजीवता और उनके प्रयोग की बाहुल्यता'' है। इस समय के चित्रकारों ने चटकीले तथा रुपहले रंगों का खूब प्रयोग किया है। इस काल के व्यक्ति चित्रों में आकृति का अंकन अत्यन्त सूक्ष्म व स्वाभाविक है परन्तु मुगल वैभव तथा विकास की परिधि में बँधी होने के कारण यह कला उन्मुक्त नहीं हो पाई, जिसके कारण इसमें एक प्रकार की कृत्रिमता तथा जड़ता उत्पन्न हो गई।

2. अकबर और जहाँगीर के काल में मुगल चित्रकला के विकास पर टिप्पणी कीजिए एवं मुगल चित्रकला की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. अकबर द्वारा किए गए भूमि सुधारों की व्याख्या कीजिए।

उ०– अकबर द्वारा किए गए भूमि सुधार निम्नलिखित हैं—

(i) भूमि की पैमाइश– इस नवीन व्यवस्था के अनुसार सर्वप्रथम अकबर ने समस्त कृषि योग्य भूमि की पैमाइश करवायी।

अकबर से पूर्व शेरशाह ने भी भूमि की पैमाइश करवायी थी परन्तु तब पैमाइश के लिए रस्सी का प्रयोग किया गया था। रस्सी बरसात में सिकुड़कर छोटी हो जाती थी तथा अन्य समय में बढ़ जाती थी; अत: वह पैमाइश का उचित तरीका नहीं था। अकबर ने बाँसों को लोहे के छल्लों से जुड़वा कर भूमि नापने के उपकरण निर्मित करवाए, उसने सिकन्दर लोदी के गज को प्रामाणिक माना, जिसका लम्बाई 32 इंच के लगभग होती थी। सम्पूर्ण राज्य में इसी गज के द्वारा भूमि नापी गई। कर्मचारियों के सम्राट के कठोर आदेश थे कि भूमि की पैमाइश बिलकुल ठीक ढंग से करें तथा रिश्वत के लालच में गलत पैमाइश करने वालों को कठोर दण्ड का भय दिखाया जाता था। सरकार ने पैमाइश करने वाले व्यक्तियों को उचित वेतन दिया जिससे वे बेईमानी न करें। इस प्रकार समस्त कृषि योग्य भूमि की पैमाइश करवाई गई।

(ii) भूमि का वर्गीकरण– पैमाइश के पश्चात समस्त कृषि योग्य भूमि को चार भागों में विभाजित किया गया— (क) भूमि की उपज के अनुसार सर्वश्रेष्ठ भूमि, जिस पर प्रत्येक वर्ष कृषि की जा सकती थी तथा जिसे कभी परती नहीं छोड़ना पड़ता था। **पोलज** भूमि कहलाती थी; (ख) **परौती** भूमि, जिस पर एक वर्ष कृषि करके उपजाऊ बनाने हेतु एक वर्ष के लिए छोड़ दिया जाता था; (ग) **चाचर** वह भूमि है जिसको दो-तीन वर्ष तक परती छोड़ना पड़ता था तथा (घ) **बंजर** को पाँच अथवा उससे अधिक वर्ष तक परती छोड़ना पड़ता था, जिससे वह कृषि योग्य बन सके। सरकार कर्मचारियों के पास रजिस्टर रहते थे, जिनमें समस्त प्रदेशों की चारों वर्गों की भूमि की पैमाइश लिखित रूप में रहती थी। उदाहरणार्थ—इलाहाबाद की भूमि के सम्बन्ध में रजिस्टरों में लिखा था कि वहाँ 400 बीघा पोलज, 300 बीघा परौती, 50 बीघा चाचर तथा 20 बीघा बंजर भूमि है।

(iii) नकद रुपयों में कर संग्रह करना– अकबर अनाज से अधिक नकद कर वसूल करना चाहता था; अत: विभिन्न प्रदेशों में अनाज की दर, प्रत्येक वर्ष, पिछले दस वर्षों के अनुपात से निर्धारित की जाती थी। गेहूँ, कपास, तिल आदि 95 वस्तुओं की दर की सूची प्रत्येक प्रदेश के लिए तैयार की जाती थी। कर सर्वप्रथम अनाज और उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के रूप में निश्चित किया जाता था, तत्पश्चात उस प्रदेश की दर के हिसाब से उसका मूल्य निर्धारित करके उसे वसूल किया जाता था।

(iv) राज्य-कर संग्रह करने की पद्धति– राजस्व-कर वर्ष में दो बार वसूल किया जाता था— रबी की उपज से तथा खरीफ की उपज से। गाँव के मुखिया भूमि-कर वसूल करने में आमिल, गुजार, पोतदार आदि की सहायता करते थे तथा इस सहायता के लिए उन्हें 2½ प्रतिशत कमीशन मिलता था। सम्राट का आदेश था कि कर वसूल करने वाले कर्मचारी पहले कृषकों से बकाया वसूल करें, तत्पश्चात उस वर्ष की उपज का कर संग्रह करें। कृषकों को कर्मचारियों के अत्याचारों से बचाने के लिए प्रत्येक कृषक को पट्टा प्रदान किया जाता था जिसमें उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली भूमि की पैमाइश तथा निश्चित कर अंकित रहता था। इस पट्टे द्वारा सरकार भूमि पर कृषक का अधिकार स्वीकार करती थी तथा निश्चित कर के अतिरिक्त कृषक से और कुछ भी वसूल नहीं कर सकती थी। कर प्रदान करने पर कृषक को रसीद दी जाती थी जिससे कई कर्मचारी दुबारा कर वसूल न कर सके।

(v) भूमि-कर पद्धति का व्यावहारिक रूप– भूमि सुधारों के द्वारा अकबर ने रैयतवाड़ी प्रथा प्रचलित की तथा कृषकों का सरकार से सीधा सम्पर्क स्थापित किया तथा उन दोनों के बीच के वर्ग का उसने अन्त कर दिया। अकबर ने कृषकों की सुविधाओं का विशेष ध्यान रखा। भूमि पर उनका अधिकार स्वीकृत कर उन्हें पट्टे दिए गए तथा उनके कबूलियत पर हस्ताक्षर करवाए गए। खालसा भूमि पर सफल प्रयोग करने के उपरान्त उसने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में पूर्ण रूप से भूमि सम्बन्धी सुधारों को लागू किया तथा भागीदारी प्रथा का लगभग अन्त कर दिया। कुछ व्यक्तियों को छोड़कर अन्य सभी पदाधिकारियों से जागीर छीनकर सम्राट ने उनके लिए नकद वेतन की व्यवस्था की, जिससे किसानों पर होने वाले अत्याचार बन्द हो जाएँ। बंजर भूमि के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करके कृषकों की खेती करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

आरम्भ में सरकार बंजर भूमि पर बहुत कम भूमि-कर लेती थी तथा धीरे-धीरे उसकी दर बढ़ाती थी। दुर्भिक्ष अथवा फसल के खराब होने पर राज्य के उन पीड़ित प्रदेशों पर कर माफ करके सरकार उनकी आवश्यक सहायता करती थी। कर वसूल करने वाले कर्मचारियों (आमिल, वितिक्ची, कानूनगो, पटवारी, मुकद्दम आदि) को राज्य की ओर से यह आदेश रहता था कि वे कृषकों पर अत्याचार न करें तथा उनके साथ अच्छा व्यवहार करें। सेना द्वारा यदि कृषकों के खेतों की क्षति हो जाती थी तो सरकार उसकी क्षतिपूर्ति करती थी। आवश्यकता पड़ने पर वह कृषकों को ऋण भी देती थी। यदि कृषकों के पास कर का कुछ भाग शेष रह जाता था तो वह भी बलपूर्वक वसूल नहीं किया जाता था। कर वसूल करने वाले कर्मचारियों को कृषकों की दशा की रिपोर्ट प्रतिमान भेजनी पड़ती थी।

4. मुगलकालीन सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशाओं का वर्णन कीजिए।

उ०– मुगलकाल की सामाजिक दशा–

(i) समाज का विभाजन– मुगलकालीन समाज में मुख्यत: दो वर्ग थे— उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग। इन दोनों वर्गों के बीच मध्यम वर्ग (हकीम, दुकानदार आदि) भी था, जो संख्या में बहुत कम होने के कारण नगण्य-सा माना जा सकता है। मुगलकालीन समाज सामन्तवादी प्रथा पर आधारित था, जो मध्ययुग की एक विशेषता रही है। समाज में सर्वोच्च स्थान बादशाह तथा उसके उन सम्मानित सामन्तों के होते थे, जिनका सम्राट से सीधा सम्पर्क होता था तथा जिनको विविध प्रकार के ऐश्वर्य तथा विशेषाधिकार प्राप्त थे। यद्यपि इस सामन्त वर्ग आरम्भ में विदेशी लोगों का वर्चस्व था, परन्तु मुगल सामन्त भारत से बाहर कभी धन नहीं ले गए। इसलिए विदेशी सामन्त वर्ग के होते हुए भी उसका दुष्प्रभाव देश की आर्थिक स्थिति पर नहीं पड़ा।

इस सामन्त वर्ग के नीचे छोटे कर्मचारियों द्वारा निर्मित मध्यम वर्ग था तथा भारत की अधिकांश जनता, जो ग्रामों में रहकर कृषि अथवा घरेलू उद्योग-धन्धे करती थी, निम्न वर्ग में आती थी। मुगलकाल में सल्तनत काल के समान समाज हिन्दू और मुसलमान वर्गों में विभाजित नहीं था। यह काल हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृति के बीच सामंजस्य का काल रहा। अकबर के काल से सामन्त तथा निम्न दोनों ही वर्गों में हिन्दू तथा मुसलमान समान रूप से सम्मिलित थे।

(ii) **वस्त्राभूषण–** मुगलकाल में बादशाह तथा उसका सामन्त वर्ग बहुमूल्य वस्त्रों का प्रयोग करता था। जरी के बहुमूल्य वस्त्र, रेशमी तथा मलमल के वस्त्रों का उच्च वर्ग में प्रयोग होता था। ढाका की मलमल तथा मुर्शीदाबाद का रेशम उस समय अत्यधिक प्रसिद्ध थे। उच्च सामन्त वर्ग के सभी व्यक्तियों की, चाहे वे मुसलमान हों अथवा हिन्दू, वेशभूषा समान थी तथा जाति-चिह्न के बिना उन्हें पहचान पाना असम्भव था। बादशाह भेंट तथा खिलअत के रूप में अमीरों को बहुमूल्य वस्त्र प्रदान करता था तथा **अबुल फजल** के कथनानुसार उसे अकबर के लिए प्रतिवर्ष 1000 पोशाक निर्मित करवानी पड़ती थीं। उच्च वर्ग में अचकन तथा पाजामा पहनने का रिवाज था, परन्तु साधारण हिन्दू वर्ग अधिकतर धोती-कुर्ता पहनता था। आभूषणों का प्रयोग दोनों जातियाँ समान रूप से करती थीं।

(iii) **आमोद-प्रमोद–** मुगलकाल में आमोद-प्रमोद के प्रमुख साधन शिकार, पोलो, पशु-युद्ध, कुश्ती लड़ना तथा कबूतर उड़ाना थे। घरेलू खेलों में चौपड़, पासा तथा शतरंज के खेल प्रमुख थे। उच्च वर्ग के लोग मदिरापान के दुर्व्यसन से वंचित नहीं थे वरन् मुगल सम्राटों का मदिरापान तथा अफीम सेवन का व्यसन तो विख्यात है। बाबर के आमोद-प्रमोद, हुमायूँ का अफीम के नशे में मस्त रहना, अत्यधिक मदिरापान के कारण अकबर के दो पुत्रों की अल्पायु में ही मृत्यु हो जाना और जहाँगीर का मदिरा प्रेम आदि बातें इस मत की पुष्टि करती हैं।

(iv) **स्त्रियों की दशा–** इस समय समाज में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं था। वे केवल विलास के लिए उपयुक्त समझी जाती थीं। बहुविवाह प्रथा, पर्दा प्रथा तथा अशिक्षा के दुर्गुणों ने स्त्री-समाज को पतित बना दिया था, तथापि कुछ प्रसिद्ध स्त्रियाँ इस काल में भी हुई, जिनमें गुलबदन बेगम, नूरजहाँ, जहाँआरा, रोशनआरा तथा जेबुन्निसा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अहमदनगर की चाँदबीबी, गोंडवाना की दुर्गाबाई, शिवाजी की माता जीजाबाई तथा राजाराम की विधवा पत्नी ताराबाई भी नारी-रत्न थी, जिन्होंने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करके ख्याति प्राप्त की। हिन्दू स्त्रियों में बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि अनेक कुप्रथाएँ विद्यमान थीं, जिसके कारण उनके समाज का घोर अध:पतन हो रहा था।

(v) **सामाजिक पतन–** शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में भारतीय समाज के पतन के चिह्न स्पष्टत: दृष्टिगोचर होने लगे थे तथा औरंगजेब के काल में सामाजिक पतन आरम्भ हो गया था। इस समय उच्च सामन्त वर्ग की नैतिकता, पवित्रता, साहस तथा शक्ति विनष्ट हो गई थी। विलासिता, मदिरापान तथा दुराचार उस समाज के सामान्य अवगुण बन गए थे। अमीर रिश्वतखोरी तथा भ्रष्टाचार में लिप्त रहते थे तथा राजदरबार में कुचक्र एवं षड्यन्त्र रचना उनका एकमात्र कार्य रह गया था। मस्जिदों में भी ये सामान्य दुर्गुण दृष्टिगोचर हो रहे थे। उच्च वर्ग के साथ-साथ अन्य वर्गों का नैतिक पतन भी होने लगा था। सरकारी कर्मचारी निर्लज्जतापूर्वक रिश्वत लेते थे तथा प्रजा पर अत्याचार करते थे, जिनको रोकने वाला कोई नहीं था। औरंगजेब के पश्चात मुगल सम्राट प्रजा के प्रति अपने समस्त कर्त्तव्यों को भूलकर विलासिता में लिप्त हो गए। इस प्रकार 18 वीं शताब्दी में भारत के सामाजिक पतन की पराकाष्ठा हो गई। अशिक्षा, नैतिक पतन, अधर्म, भ्रष्टाचार और मदिरापान आदि दुर्गुणों ने समाज को अधोगति तक पहुँचा दिया।

(vi) **सामाजिक प्रथाएँ–** मुगलकाल में हिन्दू व मुस्लिम दोनों जातियों में अनेक प्रकार की सामाजिक रूढ़ियाँ तथा प्रथाएँ समान रूप से विद्यमान थीं। दोनों ही ज्योतिष में विश्वास रखते थे, पीरों के मजारों की पूजा करते थे तथा गुरु की भक्ति करते थे। इस समय समाज में समान रूप से अन्धविश्वास तथा अनेक कुप्रथाएँ पनप चुकी थीं। हिन्दुओं में सती प्रथा, बाल-विवाह प्रथा तथा दहेज की प्रथाएँ प्रचलित थीं। विधवा पुनर्विवाह पंजाब तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों के अतिरिक्त अन्य कहीं प्रचलित नहीं था। हिन्दुओं के प्रमुख त्योहार होली, दीवाली, रक्षाबन्धन आदि थे, जिन्हें मुसलमान भी उत्साहपूर्वक मनाते थे। मुसलमानों के त्योहार ईद तथा मुहर्रम को हिन्दू लोग भी मनाते थे।

यद्यपि हिन्दू समाज में इस समय छुआछूत तथा जाति-भेद विद्यमान था तथापि हिन्दू वर्ग की सहिष्णुता की भावना ने उनको मुसलमानों के अधिक निकट ला दिया था। उच्च वर्ग के अतिरिक्त साधारण वर्ग सामान्यत: ईमानदार तथा धर्मभीरु था। **ट्रैवनियर** ने लिखा है– ''नैतिकता में हिन्दू अच्छे हैं, विवाह करने पर वे कदाचित ही अपनी पत्नियों के प्रति अश्रद्धा और अविश्वास रखते हैं। उनमें व्यभिचार का अभाव है और उनके अस्वाभाविक अपराधों के विषय में तो कभी कोई सुनता ही नहीं है।'' इस प्रकार दरिद्र होते हुए भी साधारण प्रजा का चरित्र उच्चकोटि का था तथा वह सामान्यत: मितव्ययी होने के कारण सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती थी।

मुगलकाल की आर्थिक दशा– मुगलों के शासनकाल में भारत एक समृद्ध देश था, जिसका प्रमुख श्रेय यहाँ के व्यापारियों को था, जिन्होंने विदेशों के साथ व्यापारिक सम्पर्क स्थापित करके देश को सोने-चाँदी तथा बहुमूल्य पत्थरों से परिपूर्ण कर दिया। यद्यपि इस समय भी भारत एक कृषिप्रधान देश ही था तथा यहाँ की अधिकांश ग्रामीण जनता की जीविका कृषि पर निर्भर करती थी, परन्तु कृषि तथा व्यापार के सुन्दर सामंजस्य के कारण देश में समृद्धि थी तथा आवश्यक वस्तुओं के मूल्य कम थे।

'हुमायूँनामा' में भारत में प्रचलित सस्ते मूल्यों का विवरण प्राप्त होता है। इसके अनुसार अमरकोट में एक रुपए में एक बकरा

बिकता था। इसी प्रकार अन्य खाद्य सामग्री भी काफी सस्ती थी। अकबर के कृषि सम्बन्धी तथा आर्थिक सुधारों के कारण भाव और भी सस्ते हो गए तथा दरिद्रों को भी पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री उपलब्ध थी। उस समय दरिद्रों की दशा चिन्तनीय नहीं थी तथा वे सन्तोषपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे।

(i) कृषि– सदैव की भाँति मुगलकाल में भी भारत का प्रमुख व्यवसाय कृषि ही था। अकबर के भूमि सुधारों से कृषकों की दशा में सुधार हुआ। गन्ना, नील, कपास तथा रेशम प्रमुख उत्पादित वस्तुएँ थीं। तम्बाकू की कृषि भी मुगलकाल में आरम्भ हो गई थी। कृषि के सामान्य उपकरण अधिकतर वही थे, जो आज तक प्रचलित हैं। सिंचाई के उपयुक्त साधनों के अभाव में कृषक अधिकतर प्रकृति पर निर्भर रहते थे तथा अतिवृष्टि या अनावृष्टि के समय दुर्भिक्ष पड़ने पर उनकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती थी। सरकार की सहायता मिलने पर भी उनकी स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं होता था। अकाल के पश्चात महामारी का प्रकोप होता था, जिससे असंख्य व्यक्ति मृत्यु के शिकार हो जाते थे। दुर्भिक्ष के अतिरिक्त बहुधा युद्धों तथा सेनाओं के आवागमन के कारण भी कृषकों को काफी कष्ट उठाना पड़ता था और बादशाह की निरन्तर चेतावनी के उपरान्त भी कई बार सैनिक उनके खेतों को रौंद डालते थे।

अकबर के पश्चात जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में अनेक बार दुर्भिक्ष पड़ा, जिसके कारण जनता की दशा इतनी शोचनीय हो गई कि उसका वर्णन करना असम्भव है। इस काल में आने वाले विदेशी यात्रियों ने दुर्भिक्ष पीड़ितों की दयनीय दशा का वर्णन किया है। यातायात के समुचित साधनों के अभाव में उनकी दशा बद से बदतर हो जाती थी। 18 वीं शताब्दी की अराजकता तथा अव्यवस्था में तो कृषकों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई और वे ऋणग्रस्त हो गए।

(ii) उद्योग-धन्धे– यद्यपि मुगलकाल में आधुनिक ढंग की मशीनें तथा कारखाने उपलब्ध नहीं थे परन्तु हस्त उद्योग-धन्धे उस काल में प्रचलित थे तथा अपने देश की खपत से अधिक माल तैयार करके व्यापारीगण भारत का बना हुआ माल विदेशों में भी ले जाते थे। व्यापार द्वारा भारत को लाभ होता था, जिससे देश उत्तरोत्तर धनी बनता जा रहा था। इस समय भारत का सबसे महत्वपूर्ण उद्योग कपड़ा बुनना, रँगाई तथा छपाई करना था।

बंगाल तथा बिहार के प्रान्त सूती कपड़ा बुनने के लिए प्रसिद्ध थे, जहाँ प्रत्येक घर में कपड़ा बुना जाता था। ऊनी वस्त्र कश्मीर में निर्मित किए जाते थे। गुजरात भी सूती वस्त्रों के लिए विख्यात था। यहाँ के व्यापारियों की ईमानदारी की प्रशंसा **बारबोसा** तथा **मनूची** जैसे विदेशी यात्रियों ने भी की है।

वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे भी इस समय भारत में प्रचलित थे। विदेशों के साथ व्यापार करने के लिए जहाजों का भी निर्माण होता था। यद्यपि भारतीय बहुत उत्तम जहाज निर्मित करना नहीं जानते थे तथापि यह उद्योग भी इस समय प्रचलित था। विविध प्रकार के ट्रंक, कलमदान, शमादान, अलंकृत तश्तरियाँ, छोटी-छोटी सन्दूकचियाँ तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ, जो सामन्तों के आवासगृहों को सुसज्जित करने के काम में आती थीं, भारत में निर्मित होती थीं।

(iii) अन्तरप्रान्तीय व्यापार– भारत के भिन्न-भिन्न भागों में व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था। व्यापार के लिए समृद्ध नगरों का निर्माण करवाया गया था, जो सड़कों अथवा नदियों के द्वारा परस्पर सम्बन्धित थे। लाहौर, बुरहानपुर, अहमदाबाद, बनारस, पटना,, बर्दवान, ढाका, दिल्ली तथा आगरा आदि इस काल के प्रसिद्ध व्यापारिक नगर थे। बुरहानपुर और आगरा उत्तर भारत में व्यापार के मुख्य केन्द्र थे। बंगाल से वहाँ खाद्यान्न और रेशमी कपड़ा आता था तथा मालाबार से काली मिर्च भी पहुँचती थी। गुजरात में जैन और बोहरा मुसलमान, राजस्थान में ओसवाल, माहेश्वरी और अग्रवाल, कोरोमण्डल तट पर चेट्टी और मालाबार में मुसलमान व्यापारी थे। व्यापार नदियों तथा सड़कों दोनों मार्गों से होता था। मुगल सम्राटों ने व्यापार के लिए सड़कों का निर्माण करवाया, जो दोनों ओर छायादार वृक्षों से आच्छादित थीं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर सरायों का प्रबन्ध था, जहाँ यात्रियों के ठहरने की पूर्ण सुविधा प्राप्त थी। चोरों तथा डाकुओं से सड़कों की सुरक्षा के लिए सरकारी कर्मचारी नियुक्त होते थे।

(iv) विदेशी व्यापार– मुगलकाल में भारत के विभिन्न बाह्य देशों से सम्पर्क थे, जिनके साथ भारत का व्यापार होता था। विदेशों के साथ भी जल मार्ग तथा स्थल मार्ग के द्वारा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित थे। इस समय उत्तर-पश्चिम प्रान्तों में दो प्रमुख स्थल मार्ग थे— प्रथम, लाहौर से काबुल होते हुए बाहर जाता था तथा द्वितीय, मुल्तान से कंधार होकर। इन स्थल मार्गों के अतिरिक्त अनेक बन्दरगाह थे जिनसे जल मार्गों के द्वारा व्यापार होता था। सिन्ध में लाहौरी बन्दर, गुजरात में सूरत, भड़ौच, खम्भात, बम्बई (वर्तमान-मुम्बई) में गोआ, मालाबार में कालीकट तथा कोचिन प्रमुख बन्दरगाह थे तथा पूर्वी तटों पर मछलीपट्टम, नीमापट्टम और बंगाल में श्रीपुर, सतगाँव और सोनारगाँव नामक बन्दरगाह थे। इन सभी बन्दरगाहों में सूरत का बन्दरगाह प्रमुख था, जहाँ से सबसे अधिक विदेशों के लिए व्यापार होता था।

भारत सामान्यत: सूती और रेशमी वस्त्र, नील, अफीम, काली मिर्च तथा विलास की सामग्री बाहर भेजता था तथा बाहर से इन वस्तुओं के बदले में सोना, चाँदी, ताँबा, घोड़े, कच्चा रेशम, बहुमूल्य रत्न, सुगन्धित द्रव तथा मखमल आदि वस्तुएँ मँगाई जाती थीं। फ्रांस से ऊनी वस्त्र, फारस व इटली से रेशम, फारस से कालीन, चीन से कच्चा रेशम और अरब तथा मध्य एशिया से घोड़े मँगाए जाते थे। मुगल बादशाह विदेश जाने वाली और विदेश से आनी वाली वस्तुओं पर 3.5% तक कर लेते थे। चुँगी की दर कम होने के कारण व्यापार को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला तथा भारत निरन्तर धन सम्पन्न देश बनने लगा था। यह समृद्धि मुगल युग को स्वर्ण युग के रूप में परिणत करने में सहायक बनी।

मुगलकाल की धार्मिक दशा–

प्रो० एस०आर० शर्मा के मतानुसार मुगल साम्राज्य गैर-कट्टरपंथी राज्य था। अकबर, जो वास्तविक रूप से मुगल वंश का संस्थापक था, उदार और सहिष्णु था तथा उसने धर्म को राजनीति से पृथक करके एक अलौकिक साम्राज्य स्थापित किया था। मजहबी राज्य में सम्राट को धार्मिक अधिकार प्राप्त होते हैं तथा सम्राट एवं धर्माचार्यों का विरोध करना पाप समझा जाता है, परन्तु मुगलकाल में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। इस काल में न्यायालय भी अधिकतर धर्म से प्रभावित हुए बिना निष्पक्ष रूप से अपना कार्य करते थे।

मुगल सम्राटों ने मुसलमान होते हुए भी धर्मान्धता की नीति का अनुसरण नहीं किया तथा देश के सभी व्यक्तियों को उत्थान का समान अवसर प्रदान किया। यहाँ तक कि औरंगजेब जैसे धर्मान्ध सम्राट के काल में भी (जिसने धर्म प्रभावित राज्य स्थापित करने का प्रयास किया था) अनेक कट्टर मुसलमान तक सम्राट की न्याय नीति के विरोधी थे; अत: मुगल राज्य संस्था को धर्म निरपेक्ष कहना अधिक न्यायसंगत प्रतीत होता है।

5. ''शाहजहाँ का काल मुगल स्थापत्य का स्वर्ण-काल था।'' विवेचना कीजिए।

उ०– शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल स्थापत्य कला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। उसका काल विद्वानों द्वारा मुगल स्थापत्य कला का 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है। शाहजहाँ ने नवीन इमारतों के अलावा आगरा और लाहौर के किलो में अकबर द्वारा बनवाई गई कई इमारतों को तुड़वाकर नवीन इमारतें भी बनवाई। आगरा के किले में दीवाने आम, दीवाने खास, शीश महल, शाहबुर्ज, खासमहल, मच्छीभवन, झरोखा दर्शन का स्थान, अंगूरी बाग, नगीना मस्जिद और मोती मस्जिद उसके द्वारा बनवाई गई इमारतों में प्रमुख हैं। ये सभी इमारतें अत्यन्त सुन्दर हैं। हालाँकि शाहजहाँ के भवन दृढ़ता तथा मौलिकता में अकबर के भवनों की अपेक्षा निम्न कोटि के हैं परन्तु सौन्दर्य रमणीयता, अलंकरण व सादगी में उनका कोई सानी नहीं है।

1639 ई० में शाहजहाँ ने दिल्ली के पास शाहजहाँनाबाद नगर की नींव डाली। दिल्ली में यमुना नदी के दाएँ किनारे एक किला बनवाया, जो लाल किले के नाम से विख्यात है। इस किले के भीतर सफेद संगमरमर की सुन्दर इमारतें बनवाई गई हैं, जिनमें मोती महल, हीरा महल और रंग महल विशेष उल्लेखनीय हैं। दीवाने आम और दीवाने खास आदि सरकारी इमारतों के अतिरिक्त नौबतखाना, शाही निवास, नौकरों के निवास आदि भी बने हुए हैं। दीवाने खास में चमकीले संगमरमर के फर्श, उसकी दीवारों पर फूल-पत्तियों की सुन्दर नक्काशी और मेहराबों का सुनहला रंग इतना आकर्षक है कि वहाँ लिखा है– ''अगर भूमि पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं हैं, यहीं है, यहीं है।'' यहाँ पानी और फव्वारों का प्रबन्ध अत्यन्त भव्य है। शाहजहाँकालीन मस्जिदों में दिल्ली की जामा मस्जिद देश की सबसे प्रसिद्ध मस्जिद है। एक दूसरी जामा मस्जिद शाहजहाँ की बड़ी पुत्री जहाँआरा ने आगरा में बनवाई। **पर्सी ब्राउन** ने आगरा की जामा मस्जिद को दिल्ली की जामा मस्जिद से स्थापत्य कला की दृष्टि से भव्य और सुन्दर बताया है। मोती मस्जिद जिसे शाहजहाँ ने आगरा के किले में बनवाया था, स्थापत्य कला की दृष्टि से एक उच्चकोटि की कृति है। दूध की तरह सफेद संगमरमर से बनी हुई यह मस्जिद अपने नाम 'मोती' की तरह ही है।

लेकिन जिस इमारत के लिए शाहजहाँ को आज भी याद किया जाता है, वह है ताजमहल, जो उसने अपनी पत्नी मुमताज महल की याद में बनवाया, जिसे 22 वर्षों में लगभग चार करोड़ रुपए की रकम से बनाया गया था। जन्नत के बागों की तरह खूबसूरत चार बाग के बीचों-बीच स्थित इस संगमरमर की इमारत का ज्यामितीय ग्रिडों की शृंखला के अनुसार यथानुपात निर्माण किया गया था। चबूतरे के चारों कोनों पर चार सफेद मीनारें हैं और इसकी बगल में यमुना नदी बहती है। सुन्दर चित्रकारी से अलंकृत जालियाँ, बेल-बूटों से सजी हुई दीवारें तथा लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई की दृष्टि से इमारत को एक इकाई का रूप प्रदान करने वाली कला न केवल ताजमहल के सौन्दर्य को बढ़ाने वाली है अपितु ताजमहल एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में संगमरमर में ढाला गया एक स्वपन है, जो एक महान् सौन्दर्य का प्रतीक माना जा सकता है। **हावेल** ने इसे 'भारतीय नारीत्व की साकार प्रतिमा' कहा है। ताजमहल के निर्माण की योजना के बारे में यह धारणा गलत सिद्ध कर दी गई है कि इसके नक्शे को बनाने में किसी यूरोपियन कलाकार ने सहयोग दिया था। यह प्रमाणित किया जा चुका है कि इसका मुख्य कलाकार उस्ताद अहमद लाहौरी था, जिसे शाहजहाँ ने 'नादिर-उज-असर' की उपाधि प्रदान की थी।

शाहजहाँ ने मयूर सिंहासन भी बनवाया था, जिसकी छत मयूर स्तम्भों पर आधारित थी। ये स्तम्भ हीरे, पन्ने, मोती तथा लाल रत्नों से बने हुए थे। इस सिंहासन के बनने में 14 लाख रुपए से अधिक व्यय हुआ था। 1739 ई० में नादिरशाह इस सिंहासन को लूटकर अपने साथ ईरान ले गया था।

लाहौर के किले में दीवाने आम, शाहबुर्ज, शीशमहल, नौलखा महल और ख्वाबगाह आदि शाहजहाँ के समय में बनाई गई मुख्य इमारतें हैं। इनके अतिरिक्त काबुल, कश्मीर, अजमेर, कन्धार, अहमदाबाद आदि विभिन्न स्थानों पर भी शाहजहाँ ने अनेक मस्जिदें, मकबरे आदि बनवाए थे।

6. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–

(क) मुगलकालीन कृषि-व्यवस्था **(ख) मुगलकालीन स्थापत्य कला**

(ग) मुगलकालीन व्यापार **(घ) मुगलकालीन समाज**

उ०–(क) मुगलकालीन कृषि-व्यवस्था– मुगलकालीन कृषि-व्यवस्था के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर अवलोकन कीजिए।

(ख) मुगलकालीन स्थापत्य कला– मुगल सम्राट वास्तुकला या स्थापत्य कला अथवा भवन निर्माण कला के महान् पोषक एवं संरक्षक थे। मुगल कला अनेक प्रभावों का सम्मिश्रण थी तथा अपने पूर्वकाल की कला की अपेक्षा अधिक विशिष्ट और अलंकरणयुक्त थी। इसकी रमणीयता और अलंकरण; सल्तनतकालीन काल की सादगी और धीमकायता के विपरित था। मुगलकाल में निर्मित स्थापत्य कला की प्रमुख विशेषताएँ विराट गोल गुम्बद, पतले स्तम्भ तथा विशाल खुले हुए प्रदेश द्वार हैं।

(i) बाबर तथा हुमायूँ– मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर था, जिसे भारत की भवन निर्माण कला पसन्द नहीं आई। उसने कुस्तुनतुनियाँ से कलाकारों को बुलवाया और उनके द्वारा उसने कुछ इमारतों का निर्माण करवाया। उसने लगभग 1500 कारीगरों से प्रतिदिन कार्य करवाया तथा आगरा, ग्वालियर, बयाना और धौलपुर में कुछ भवनों का निर्माण करवाया परन्तु उसके काल के भवन अधिकाशंत: नष्ट हो चुके हैं, केवल पानीपत में काबुली बाग की मस्जिद तथा रुहेलखण्ड में सम्भल की जामा मस्जिद शेष हैं जो उसके कला प्रेम की द्योतक हैं। बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूँ को इतना समय नहीं मिला कि वह भवनों का निर्माण करवा सकता, परन्तु हिसार जिले के फतेहाबाद में उसके द्वारा निर्मित मस्जिद आज भी विद्यमान है जिसमें ईरानी कला का बाहुल्य है।

(ii) शेरशाह सूरी– हुमायूँ के भारत से चले जाने के बाद शेरशाह सूरी ने अपना साम्राज्य स्थापित किया। वह भी कला का महान पोषक था तथा अनेक दुर्गों का निर्माण करवाया जो शिल्पकला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। दिल्ली में आज भी उसके द्वारा निर्मित दुर्ग के कुछ अवशेष प्राप्त होते हैं, जो उसकी आकस्मिक मृत्यु के कारण अपूर्ण रह गया था। शेरशाह के काल की सुन्दरतम कृति बिहार में सासाराम में उसका मकबरा है जो झील के बीचों-बीच निर्मित किया गया है। यह मकबरा भव्यता, सुन्दरता तथा सुडौलपन में अद्वितीय है। इसमें देशी तथा विदेशी कलाओं का सुन्दर सम्मिश्रण है।

(iii) अकबर– मुगल सम्राटों में अकबर प्रथम सम्राट था जिसके काल की अनेक कला-कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं। अकबर ने देशी तथा विदेशी दोनों कलाओं के सुन्दर तत्त्वों का समावेश अपनी कला में किया तथा कला को व्यापक संरक्षण प्रदान किया। यद्यपि अकबर की कला में भारतीय तथा ईरानी तत्त्व विद्यमान हैं परन्तु उसमें भारतीय तत्त्वों का बाहुल्य है। बौद्ध तथा जैन शैली को भी सम्राट ने उदारतापूर्वक अपनाया है।

उसके काल के अधिकांश भवन आगरा तथा फतेहपुर सीकरी में निर्मित हुए। आगरा का प्रसिद्ध दुर्ग अकबर ने निर्मित करवाया जिसमें दीवान-ए-आम, जहाँगीरी महल आदि प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। फतेहपुर सीकरी की समस्त इमारतें सुदृढ़ लाल पत्थर द्वारा निर्मित हैं जिसमें दीवान-ए-आम, जोधाबाई का महल तथा अन्य दो रानियों के महल, संगमरमर की जामा मस्जिद, दक्षिण विजय को चिरस्मरणीय बनाने के लिए निर्मित विशाल बुलन्द दरवाजा, बौद्ध विहारों के आधार पर निर्मित पंचमहल तथा विशुद्ध संगमरमर की शेख सलीम चिश्ती की दरगाह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त बीरबल का महल तथा बादशाह की ख्वाबगाह भी दर्शनीय इमारतें हैं।

अकबर की अन्य इमारतों में हुमायूँ का मकबरा है, जो दिल्ली में है और ईरानी कला के अनुरूप बनाया गया है। इलाहाबाद के दुर्ग का निर्माण भी अकबर ने करवाया जिसमें चालीस स्तम्भों का प्रासाद हिन्दू शैली के आधार पर निर्मित है। सिकन्दरा में अकबर ने अपने मकबरे का निर्माण आरम्भ करवाया था जिसकी योजना उसी ने बनाई थी तथा जिसके ऊपर एक सुनहरी छत वाला संगमरमर का गुम्बद बनवाने का सम्राट का विचार था। परन्तु उसके पूर्ण होने से पूर्व ही सम्राट की मृत्यु हो गई तथा उसके पुत्र जहाँगीर ने उस मकबरे को पूर्ण करवाया।

(iv) जहाँगीर– अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगीर को भवन निर्माण कला से उतना प्रेम नहीं था जितना चित्रकला से; अत: उसके काल में अधिक भवनों का निर्माण नहीं हुआ। परन्तु एक तो उसने अपने पिता द्वारा आरम्भ किए गए सिकन्दरा के मकबरे को पूर्ण करवाया जिसके दर्शनार्थ वह बहुधा पैदल जाया करता था। और जहाँगीर के काल की दूसरी कलाकृति आगरा में नूरजहाँ के पिता एतमादुद्दौला का मकबरा है जो शुद्ध संगमरमर का बना हुआ है और उसमें विभिन्न रंगों के बहुमूल्य पत्थर जड़े हुए हैं। जहाँगीर का मकबरा लाहौर में है, जिसे उसकी मृत्यु के पश्चात नूरजहाँ ने बनवाया था।

(v) शाहजहाँ– शाहजहाँ भवन निर्माण कला का प्रेमी सम्राट था तथा उसके काल में मुगल युग की सर्वाधिक सुन्दर कलाकृतियाँ निर्मित हुईं। शाहजहाँ के भवन दृढ़ता तथा मौलिकता में अकबर के भवनों से निम्न कोटि के हैं परन्तु सौन्दर्य, रमणीयता, अलंकरण तथा सरलता से बेजोड़ हैं। शाहजहाँ ने बहुमूल्य पत्थरों तथा स्वर्ण का अत्यधिक प्रयोग किया है जिससे उसके भवनों की जगमगाइट एवं आकर्षण में चार चाँद लग गए हैं।

शाहजहाँ ने दिल्ली में शाहजहाँनाबाद का दुर्ग निर्मित करवाया जिसके भवनों में दीवान-ए-आम जो लाल पत्थर से बना है, दीवान-ए-खास जो शुद्ध संगमरमर से बना है, रंगमहल, खासमहल आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दीवान-ए-खास अधिक अंलकरण युक्त है जहाँ पर मयूर सिंहासन पर सम्राट बैठा करता था। उसकी छत पर सोने की नक्काशी दर्शनीय है। श्वेत संगमरमर के इस भवन पर लिखा हुआ यह शेर सत्य ही प्रतीत होता है कि यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं पर है–

गर फिरदौस बर रू-ए-जमीं अस्त।
हमीं अस्त, हमीं अस्त, हमीं अस्तो।।

दिल्ली में जामा मस्जिद शाहजहाँ के काल की अन्यतम कृति है, जो लाल पत्थर द्वारा निर्मित है। दिल्ली के अतिरिक्त आगरा में शाहजहाँ के काल की सर्वश्रेष्ठ इमारतें उपलब्ध होती हैं। अकबर के द्वारा निर्मित आगरा के दुर्ग में शाहजहाँ ने सफेद संगमरमर की मोती मस्जिद तथा मुसम्मन बुर्ज का निर्माण करवाया। इसी मोती मस्जिद में, बन्दी के रूप में शाहजहाँ ने अपने जीवन के अन्तिम आठ वर्ष व्यतीत किए तथा मुसम्मन बुर्ज में, ताजमहल को देखते-देखते उसने अपने प्राण त्यागे।

शाहजहाँ तथा मुगलकाल की सर्वश्रेष्ठ कृति आगरा का ताजमहल है जो सम्राट ने अपनी दिवंगत पत्नी मुमताजमहल की स्मृति में बनवाया था। यह शुद्ध संगमरमर द्वारा निर्मित मकबरा 22 वर्षों में बनकर तैयार हुआ तथा इस पर तीन करोड़ रुपया व्यय हुआ। सौन्दर्य, अलंकरण तथा कला की दृष्टि से यह अद्वितीय एवं सर्वश्रेष्ठ इमारत है।

(vi) **औरंगजेब–** शाहजहाँ के पश्चात औरंगजेब मुगल सम्राट बना। वह धर्मानुरागी शासक था। वह संयमित जीवन जीने का आदि था तथा शरियत के अनुसार शासन संचालित करता था। उसने रास-रंग के सभी आयोजनों पर रोक लगा दी। वह जनहित के कार्यों में रुचि रखता था। उसने जनता की मेहनत की धनराशि वास्तुशिल्प पर खर्च न कर जनता के हित में खर्च करने का आदेश दिया और सभी प्रकार की ललित कलाओं के निर्माण व आयोजन पर कड़ी रोक लगा दी गई। उसके काल में तीन मस्जिदों के अतिरिक्त अन्य किसी भवन का निर्माण नहीं हुआ। इन मस्जिदों में दिल्ली के किले में संगमरमर की छोटी-सी मोती मस्जिद, लाहौर की एक मस्जिद तथा बनारस में बनवाई गई मस्जिदें प्रमुख हैं।

(ग) **मुगलकालीन व्यापार–** मुगलकालीन व्यापार के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 4 के अन्तर्गत मुगलकालीन आर्थिक दशा का अवलोकन कीजिए।

(घ) **मुगलकालीन समाज–** मुगलकालीन समाज के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 4 के अन्तर्गत मुगलकाल की सामाजिक दशा का अवलोकन कीजिए।

7. ''मुगलकाल साहित्य के विकास के लिए प्रसिद्ध युग था।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरी प्रश्न संख्या— 4 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

8. मुगलकालीन शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

उ०– मुगलकालीन शासन-व्यवस्था– अकबर को ही मुगलों की शासन-व्यवस्था का मुख्य श्रेय दिया जाता है, क्योंकि उसके उत्तराधिकारियों ने विशेष परिवर्तन किए बिना उसी के द्वारा स्थापित शासन-प्रणाली का अनुसरण किया। औरंगजेब के काल तक शासन-व्यवस्था उसी प्रकार चलती रही, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों के काल से मुगल साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया।

मुगलकाल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह दिखाई देता है कि मुगल शासक केवल शान्ति-स्थापना और देश-विजय को ही अपना कर्त्तव्य नहीं मानते थे बल्कि अपनी प्रजा के लिए अच्छी और सुसभ्य जीवन की परिस्थितियों का निर्माण करना भी अपना कर्त्तव्य समझते थे। इसी कारण मुगलकाल में आर्थिक ही नहीं बल्कि सभ्यता और संस्कृति की भी उन्नति सम्भव हो पाई। महान् मुगल बादशाहों की शासन-व्यवस्था धार्मिक सहिष्णुता पर आधारित थी। केवल औरंगजेब ही ऐसा बादशाह था, जिसने धार्मिक असहिष्णुता की नीति को अपनाया। औरंगजेब ने शासन-व्यवस्था में जो परिवर्तन किए वे मुगल साम्राज्य के आधार स्तम्भ न होकर उसके लिए घातक सिद्ध हुए। अत: इसके फलस्वरूप मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

केन्द्रीय शासन-व्यवस्था–

(i) **मुगल बादशाह–** मुगल बादशाह राज्य का प्रधान अधिकारी था। वह राज्य का अन्तिम कानून-निर्माता, शासक-व्यवस्थापक, न्यायाधीश और सेनापति था। राज्य में बादशाह की स्थिति सर्वोच्च और शक्ति असीमित थी। बादशाह के मन्त्री, सरदार और सलाहकार उसे सलाह तो दे सकते थे परन्तु बादशाह उनकी सलाह को माने या न माने, उसकी इच्छा पर निर्भर था। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से मुगल बादशाहों के अधिकार कुछ सीमित थे। केन्द्रीय मन्त्रियों के अतिरिक्त, जिनकी सलाह बादशाह के लिए अवश्य ही प्रभावपूर्ण होती होगी, राज्य के बड़े-बड़े सामन्तों के प्रभाव को भी बादशाह को मानना पड़ता था। **डॉ० ताराचन्द्र** ने मुगल शासन को कुलीनों का शासन (Rule by Aristocracy) बताया है। अकबर के समय से बादशाह को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में माना जाने लगा। मुगलों का राजत्व सम्बन्धी सिद्धान्त हिन्दू राजत्व सिद्धान्त के समान था। किन्तु मुगल बादशाह निरंकुश होते हुए भी स्वेच्छाचारी एवं अत्याचारी न थे। अकबर का कहना था ''एक राजा को न्यायप्रिय, निष्पक्ष, उदार, परिश्रमी और अपनी प्रजा का संरक्षक एवं शुभचिन्तक होना चाहिए।'' औरंगजेब भी अपने इस कर्त्तव्य के प्रति जागरूक था। मुगल बादशाह अपने कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए अत्यधिक परिश्रम करते थे। आरामपसन्द जहाँगीर भी स्वयं सात या आठ घण्टे राज्यकार्य में लगा रहता था, जबकि औरंगजेब रात्रि में कठिनाई से तीन या चार घण्टे ही आराम करता था।

(ii) **शासक वर्ग–** बादशाह के अतिरिक्त मुगल राज्य में कई वर्ग ऐसे थे, जो शासन में प्रभावशाली थे। उनमें एक वर्ग अमीरों का था। बाबर के साथ ईरानी, तूर्रानी, मुगल आदि बहुत बड़ी संख्या में भारत आए थे। अकबर के समय में अमीरों की संख्या में वृद्धि हुई तथा राजपूतों और योग्य भारतीय मुसलमानों को भी इस श्रेणी में सम्मिलित किया गया। जबकि

औरंगजेब के समय में मराठे भी इस श्रेणी में सम्मिलित किए गए। ये अमीर राज्य में सभी प्रकार के सैनिक और असैनिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति करते थे और इस प्रकार ये शासन में शरीर की धमनियों के समान थे। राज्य-प्रशासन में इनकी भूमिका प्रभावशाली होती थी। इनके अतिरिक्त जागीरदार तथा जमींदार वर्ग भी शासन में महत्वपूर्ण स्थान रखता था। आरम्भ में जागीरदार राजस्व वसूल करके अपना और अपने सैनिकों का व्यय पूरा करके बचा हुआ राजस्व केन्द्रीय सरकार में जमा करते थे। किन्तु धीरे-धीरे इस व्यवस्था में इतने दोष उत्पन्न हो गए कि उन्होंने मुगल साम्राज्य के पतन में भाग लिया। जमींदार-वर्ग का सम्पर्क प्रत्यक्षत: किसानों से होता था। इस कारण वे आर्थिक, प्रशासकीय और सांस्कृतिक दृष्टि से भी साम्राज्य के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

(iii) बादशाह के मन्त्रा– शासन में अपनी सहायता के लिए बादशाह विभिन्न मन्त्रियों की नियुक्ति करता था। ये अधिकारी अपने अपने विभागों के प्रधान होते थे तथा व्यक्तिगत रूप से या सम्मिलित रूप से आवश्यकता पड़ने पर बादशाह को सलाह देते थे। राज्य के प्रमुख मंत्री और अधिकारी निम्नलिखित थे—

(क) वजीर या दीवान (प्रधानमन्त्री)– वजीर राज्य का प्रधानमन्त्री होता था। अकबर के समय में प्रधानमन्त्री को दीवान के कार्य दे दिए गए और बाद के समय में दीवान ही राज्य का वजीर और प्रधानमन्त्री होने लगा। यह बादशाह और पदाधिकारियों के बीच की कड़ी थी। बादशाह के पश्चात् शासन में इसका ही प्रभुत्व था, जिसको समय-समय पर वकील-ए-मुतलक अथवा वकील पुकारा गया और जो वित्त विभाग का प्रधान होने के नाते राज्य का दीवान भी था। प्रधानमन्त्री की सहायता के लिए अनेक अधिकारियों के अतिरिक्त पाँच अधिकारी प्रमुख थे— दीवाने-खालसा, दीवाने-तन, मुस्तौफी, वाकिया-ए-नवीस और मुशरिफ।

(ख) खानेसामाँ (मीर-ए-सामाँ)– खानेसामाँ का प्रमुख कार्य राजकीय परिवार से सम्बन्धित सदस्यों की जरूरतों की पूर्ति व देखरेख का था। यह घरेलू विभाग का प्रधान होता था। अकबर के समय में यह मंत्री पद न था, परन्तु बाद के बादशाहों के समय में इसे मन्त्री पदों में स्वीकार किया गया। उसका एक मुख्य उत्तरदायित्व शाही कारखानों की देखभाल करना था। यह सम्राट के भोजनालय की भी देखरेख करता था। यह पद बहुत ही विश्वासपात्र व्यक्ति को दिया जाता था क्योंकि इसका सम्बन्ध सम्राट के व्यक्तिगत विभागों से होता था। यह पद बाद में इतना महत्वपूर्ण हो गया कि वजीर के पद के पश्चात् यह पद ही महत्वपूर्ण माना जाने लगा।

(ग) मीर बख्शी– मीर बख्शी सेना विभाग का प्रधान था तथा सेना सम्बन्धी सभी कार्यों जैसे सैनिकों की भर्ती, अनुशासन, प्रशिक्षण, वेतन, शस्त्र, रसद आदि के प्रति उत्तरदायी था। इसे 'अफसर-ए-खजाना' भी कहा जाता था। वह सैनिकों का हुलिया आदि सही रखता था तथा घोड़ों पर दाग लगवाता था। सैनिकों के वेतन के लिए भी यही उत्तरदायी था। उसकी सहायता के लिए अनेक कर्मचारी होते थे। मनसबदारों की नियुक्ति भी इसी के द्वारा होती थी।

(घ) मुख्य काजी– मुगल शासन-व्यवस्था में बादशाह के पश्चात् न्याय विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी मुख्य काजी (मुख्य न्यायाधीश) होता था। इसे 'काजी-उल-कुजात' कहा जाता था। प्रत्येक बुधवार को बादशाह स्वयं न्याय के लिए बैठता था, परन्तु वह सभी मुकदमों का निर्णय नहीं कर सकता था। इस कारण मुख्य काजी की नियुक्ति की जाती थी। काजी मुस्लिम कानून के अनुसार न्याय करता था। उसकी सहायता के लिए 'मुफ्ती' होते थे, जो इस्लामी कानूनों की व्याख्या करते थे। न्याय के मामलों में सम्राट के बाद उसी का निर्णय अन्तिम होता था।

(ङ) सद्र-उस-सुदूर– यह धार्मिक विभाग का अध्यक्ष होता था। धार्मिक मामलों में वह बादशाह का मुख्य सलाहकार होता था। दान-पुण्य की व्यवस्था, धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था, विद्वानों को जागीरें प्रदान करना और इस्लाम के कानूनों के पालन की समुचित व्यवस्था को देखना इसके प्रमुख कर्त्तव्य थे। अकबर के शासनकाल में इस पद का महत्व कम हो गया था। **डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव** के अनुसार, ''प्रधानसद्र धार्मिक धन-सम्पत्ति तथा दान विभाग का प्रधान होता था। सद्र का काम योग्य व्यक्तियों के प्रार्थना-पत्रों की जाँचकर उनकी संस्तुति करना होता था। वह दान की भूमि और सम्पत्ति का निर्णायक एवं निरीक्षक होता था। अकबर के शासनकाल में सद्र घूस तथा निर्दयता के कारण कुख्यात हो गए थे।''

(च) मुहतसिब– प्रजा के नैतिक चरित्र की देखभाल करना तथा मुस्लिम प्रजा इस्लाम के कानूनों के अनुसार जीवन-यापन करती है या नहीं, यह देखना इसका मुख्य काम था। कभी-कभी इन्हें वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करने तथा माप-तोल के पैमाने की देखभाल करने की जिम्मेदारी भी दी जाती थी। इनका काम सिपाहियों के साथ नगर का दौरा करके, शराब, जुए आदि के अड्डों को समाप्त करना भी था। औरंगजेब के काल में हिन्दू मन्दिरों और पाठशालाओं को नष्ट करने का उत्तरदायित्व भी उसे सौंपा गया था।

(छ) मीरे आतिश– मीरे आतिश अथवा दरोगा-ए- तोपखाना का पद मन्त्री स्तर का न होते हुए भी प्रभावशाली होता था। शाही तोपखाना इसके अधीन था। तोपों को बनवाना, किलों में उनकी व्यवस्था और बन्दूकों का निर्माण आदि उसकी देखरेख में होता था। अधिकांशत: यह पद किसी तुर्क या ईरानी को दिया जाता था क्योंकि उन देशों का तोपखाना अधिक श्रेष्ठ था। शाही गढ़ की रक्षा करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य था।

(ज) **दरोगा-ए-डाकचौकी–** यह सूचना एवं गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष होता था। प्रान्तों से सूचनाएँ प्राप्त कर उनको बादशाह तक पहुँचाना इसका प्रमुख कर्त्तव्य था। गुप्तचर विभाग का प्रधान होने के कारण शासन में इसका विशेष महत्व था। प्रान्तीय दरोगा इसी को ही सूचनाएँ भेजा करते थे।

प्रान्तीय शासन-व्यवस्था– सम्पूर्ण मुगल-साम्राज्य को सूबों या प्रान्तों में बाँटा गया था। अकबर के समय में सूबों की संख्या 15 या 18 थी जो औरंगजेब के समय साम्राज्य विस्तार होने से 21 हो गई थी। प्रान्तीय शासन-व्यवस्था का ढाँचा केन्द्रीय शासन-व्यवस्था के समान ही था। **सर जदुनाथ** ने लिखा है ''मुगल सूबों में शासन-व्यवस्था केन्द्रीय शासन-व्यवस्था का लघु रूप थी।'' प्रत्येक सूबे की अपनी पृथक् राजधानी थी, जहाँ का प्रधान सूबेदार होता था। सूबेदार को निजाम, सिपहसालार अथवा केवल सूबा के नाम से भी पुकारा जाता था। प्रत्येक सूबे में मुख्य अधिकारी सूबेदार, दीवान, बख्शी, सद्र और काजी, कोतवाल तथा वाकिया-ए-नवीस होते थे। सूबेदार स्वतन्त्र होने का प्रयास न करें, इसलिए अकबर के शासनकाल में यह व्यवस्था थी कि दो-तीन वर्ष पश्चात् सूबेदार को भी स्थानान्तरित कर दिया जाता था।

(i) **कोतवाल–** सूबे की राजधानी तथा बड़े नगरों में शान्ति और सुरक्षा, स्वच्छता और सफाई, यात्रियों की देखभाल आदि कोतवाल करता था। यह एक पुलिस अधिकारी होता था और उसकी अधीनता में पर्याप्त सैनिक रहते थे। नगर प्रबन्ध का भार कोतवाल पर ही था। **अबुल फजल** के अनुसार, ''इस पद के लिए पुरुष को योग्य, बलवान, अनुभवी, चुस्त, गम्भीर, कुशाग्र बुद्धि तथा उदार हृदय होना चाहिए।''

(ii) **वाकिया-ए-नवीस–** यह सूबे के गुप्तचर विभाग का प्रधान था। यह सूबे के शासन की प्रत्येक सूचना यहाँ तक कि सूबेदार व दीवान के कार्यों की सूचना भी यह केन्द्रीय सरकार को भेजता था।

(iii) **बख्शी–** प्रान्त के सैनिकों की देखरेख, उनको ठीक दशा में रखना, रसद की व्यवस्था करना एवं सरकारी निर्देशों का पालन कराना उसका मुख्य कर्त्तव्य था। इसकी नियुक्ति केन्द्रीय मीर बख्शी की सलाह से की जाती थी। बख्शी को कभी-कभी सूबे का वाकिया-ए-नवीस भी बना दिया जाता था।

(iv) **सद्र और काजी–** धार्मिक और न्याय कार्य हेतु प्रान्त में सद्र और काजी का पद साधारणतया एक ही व्यक्ति को प्रदान किया जाता था, जिसकी नियुक्ति केन्द्र के सद्र-उस-सुदूर की सिफारिश पर सम्राट द्वारा की जाती थी।

(v) **दीवान–** दीवान सूबे का वित्त अधिकारी था। सूबे में सूबेदार के पश्चात् शासन में उसी का पद महत्वपूर्ण था। वह सूबेदार के अधीन न था बल्कि वह केन्द्र के दीवान के अधीन था। सूबे की वित्त-व्यवस्था पर नियन्त्रण, आय-व्यय का हिसाब, लगान और कृषि की देखभाल, अधीनस्थ वित्त-अधिकारियों पर नियन्त्रण, सूबे की आर्थिक स्थिति की सूचना केन्द्रीय सरकार को देना तथा दीवानी मुकदमों पर निर्णय आदि दीवान के प्रमुख कर्त्तव्य एवं अधिकार थे।

(vi) **सूबेदार–** सूबेदार की नियुक्ति बादशाह द्वारा की जाती थी। सामान्यत: यह पद राजवंश के लोगों या उच्च मनसबदारों को ही दिया जाता था। अपने सूबे में उसकी स्थिति एक छोटे बादशाह के समान थी। उसके साथ एक बड़ी सेना होती थी। उसे अपने सूबे में एक बड़ी जागीर भी प्राप्त होती थी। सूबे के सभी अधिकार उसके अधीन होते थे। सूबे में शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था, प्रजा के हित की रक्षा, फौजदारी मुकदमों का निर्णय करना, विद्रोहों को दबाना, पुल, सराय, सड़कों आदि की सुरक्षा और निर्माण, सूबों के अधीन राज्यों से कर-वसूली आदि उसके विभिन्न कार्य थे। बादशाह अपने प्रान्त के अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, तबादले आदि सूबदोर की सलाह से ही करता था। अपने सूबे में बादशाह जैसी स्थिति होने के बावजूद भी सूबेदार के अधिकारों की एक सीमा भी थी। वह दरबार लगा सकता था। परन्तु झरोखे से अपनी प्रजा को दर्शन नहीं दे सकता था। इसका केवल बादशाह को ही अधिकार था। बादशाह की अनुमति के बिना वह युद्ध या सन्धि भी नहीं कर सकता था। वह मीर अदल तथा काजी के फैसलों की अपील सुन सकता था।, किन्तु मृत्युदण्ड देने का उसे अधिकार न था। धार्मिक मामलों में भी वह कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।

औरंगजेब के साम्राज्य में सूबे–

1. अफगानिस्तान
2. काबुल
3. मुल्तान
4. थट्टा (सिंध)
5. लाहौर
6. इलाहाबाद
7. अवध
8. अहमदाबाद
9. मालवा
10. अजमेर
11. आगरा
12. दिल्ली
13. कश्मीर
14. बंगाल
15. बिहार
16. उड़ीसा (ओडिशा)
17. बीजापुर
18. गोलकुण्डा
19. अहमदनगर
20. बरार
21. खानदेश

स्थानीय शासन व्यवस्था–

(i) **सरकार अथवा जिले का शासन–** प्रत्येक प्रान्त (सूबा) कई सरकारों अथवा जिलों में विभक्त था। प्रत्येक सरकार में अनेक अधिकारी होते थे—

(क) **खजानदार–** यह सरकार का खजांची था। सरकारी खजाने की सुरक्षा इसका मुख्य उत्तरदायित्व था।

(ख) **बितिक्ची–** बितिक्ची अमलगुजार के अधीन अधिकारी था, जो भूमि तथा लगान सम्बन्धी सभी कार्य करता था और किसानों को लगान वसूली की रसीदें देता था।

(ग) **अमलगुजार–** यह सरकार में राजस्व अधिकारी था। सरकार में लगान वसूल करना, कृषि की देखभाल करना, किसानों की सुरक्षा करना, चोर-लुटेरों को दण्ड देना तथा सरकारी खजाने की देखभाल करना उसके प्रमुख कर्त्तव्य थे।

(घ) **फौजदार–** प्रत्येक सरकार में एक फौजदार होता था, जो सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाता था। सरकार में आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था का भार उसी पर रहता था।

(ii) गाँवों का शासन– मुगलों ने गाँव के शासन का उत्तरदायित्व अपने हाथों में नहीं लिया था बल्कि परम्परागत ग्राम पंचायतें ही अपने गाँव की सुरक्षा, सफाई तथा छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा करती थी। गाँवों के अधिकांश झगड़ों का निपटारा भी ग्राम-पंचायतें ही करती थीं। गाँव के अधिकारियों में मुकद्दम, पटवारी, चौकीदार आदि प्रमुख थे। साधारणतया सरकारी कर्मचारी ग्राम्य जीवन और शासन में हस्तक्षेप नहीं करते थे और न ही गाँव में किसी सरकारी कर्मचारी की नियुक्ति की जाती थी। अत: सरकारी कर्मचारियों की अधीनता में गाँव शासन की स्वतन्त्र इकाइयाँ थीं।

(iii) नगरों का शासन– नगर के शासन का प्रधान कोतवाल होता था। वह उन सभी कार्यों को करता था, जो आधुनिक समय में नगरपालिकाएँ और पुलिस अधिकारी करते हैं। नगर सुरक्षा, सफाई-व्यवस्था, बाजार पर नियन्त्रण, यात्रियों पर निगरानी, नगर को वार्डों में बाँटना, स्थानीय करों की वसूली आदि उसके प्रमुख कार्य होते थे। उसकी अधीनता में पर्याप्त सैनिक होते थे।

(iv) परगने का शासन– प्रत्येक सरकार कई परगनों में बँटी होती थी। इसमें शिकदार, आमिल, फौतदार, काजी, कानूनगो तथा अनेक लेखक होते थे। शिकदार का कर्त्तव्य परगने में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना तथा लगान वसूलने में सहायता करना था। आमिल परगने का वित्त अधिकारी था तथा किसानों से लगान वसूल करना उसका मुख्य काम था। फौतदार परगने का खजांची था तथा खजाने की सुरक्षा उसका मुख्य उत्तरदायित्व था। परगने में न्याय का कार्य काजी के सुपुर्द था तथा कानूनगो परगने के पटवारियों का प्रधान था। लगान, भूमि और कृषि सम्बन्धी सभी कागजों को देखना और तैयार करना उसका कर्त्तव्य था। परगने में अनेक लेखक (कारकून) भी थे, जो लिखा-पढ़ी का कार्य करते थे।

9. मुगलकालीन सैनिक व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए।

उ०– मुगल सम्राट बाबर ने अपने सैनिक बल के आधार पर ही भारत में मुगल सत्ता स्थापित की थी। औरंगजेब के समय तक यह सत्ता अपनी शक्ति को स्थापित रख सकी। लेकिन बाद के शासक सैनिक-व्यवस्था को ठीक नहीं रख सके, जिससे उनकी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई और मुगल साम्राज्य का पतन हो गया। मुगल सेना में मुख्यत: तीन प्रकार के सैनिक और अधिकारी होते थे—

(i) मनसबदार और उनके सैनिक– प्रत्येक सैनिक अधिकारी को मनसब (पद) प्रदान किया गया था। बादशाह के अधीन राजाओं को भी मनसबदारों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया था। बादशाह उनको उनके मनसब के अनुसार वेतन देता था। मनसबदार स्वेच्छा से अपने सैनिकों की भर्ती करता था।

(ii) अहदी सैनिक– अहदी सैनिक बादशाह के सैनिक थे। बादशाह की तरफ से इनकी भर्ती, वेतन, शिक्षा, वस्त्र, घोड़े आदि की व्यवस्था की जाती थी। एक अहदी घुड़सवार को ₹500 तक वेतन दिए जाने का उल्लेख है जबकि साधारण घुड़सवार को ₹12 से ₹15 तक वेतन मिलता था। अकबर के समय तक इनकी संख्या 12 हजार थी।

(iii) दाखिली सैनिक– ये वे सैनिक थे, जिनकी भर्ती बादशाह की तरफ से की जाती थी। यद्यपि इनको मनसबदारों की सेवा में रखा जाता था।

सेना– मुगल सेना मोटे तौर पर पाँच भागों में बँटी हुई थी। ये पाँच भाग थे— पैदल सेना, घुड़सवार सेना, तोपखाना, नौसैना और हस्ति सेना।

(i) पैदल सेना– पैदल सैनिक मुख्यत: दो भागों में बँटे होते थे, (क) बन्दूकची और (ख) शमशीरबाज (तलवारबाज)। इनमें लड़ने वाले सैनिकों के अतिरिक्त दास, सेवक, पानी भरने वाले आदि भी सम्मिलित होते थे।

(ii) घुड़सवार सेना– घुड़सवार सेना मुगल सेना का श्रेष्ठतम भाग था। इसमें मुख्यतया दो प्रकार के सैनिक थे (क) बरगीर; जिन्हें घोड़े, अस्त्र और शस्त्र राज्य की ओर से मिलते थे और (ख) सिलेदार; जो अपने शस्त्र और घोड़े स्वयं लाते थे। इसके अतिरिक्त वह घुड़सवार, जो दो घोड़े रखता था, दो अस्पा कहलाता था। जिसके पास एक घोड़ा होता था वह एक अस्पा घुड़सवार होता था। निम्न-अस्पा वे घुड़सवार थे जिनके दो सैनिकों के पास केवल एक घोड़ा होता था।

(iii) तोपखाना– भारत में बाबर ने सर्वप्रथम तोपखाने का उपयोग किया। अकबर ने इसे और शक्तिशाली बनाया। इस क्षेत्र में अकबर का प्रमुख कार्य ऐसी छोटी-छोटी तोपों का निर्माण करना था, जो एक हाथी अथवा ऊँट की पीठ पर ले जायी जा सकती थी। **डॉ०आर०पी० त्रिपाठी** के अनुसार "तुर्की तोपखाने को छोड़कर अकबर का तोपखाना एशिया में किसी से कम न था क्योंकि अकबर के समय में वह श्रेष्ठता की चरम सीमा पर था।" तोपखाने में यूरोपियनों की नियुक्ति की जाती थी। कहा जाता था कि वे तोपखाने के प्रयोग में दक्ष थे।

(iv) नौसेना– मुगल सैनिक-शक्ति का यह कमजोर अंग था। अकबर ने पहली बार इस ओर ध्यान दिया था और इसके लिए मीर-ए-बहर की अध्यक्षता में एक अलग विभाग स्थापित किया गया था। वास्तव में मुगल सम्राट नौसेना की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सके तथा कालान्तर में यूरोपीय जातियों से पराजित हुए।

(v) हस्ति सेना– अकबर ने अपनी सेना में 'हस्ति सेना' के संगठन पर विशेष महत्व दिया। उसे हाथियों से विशेष लगाव था। उसकी सेना में एक हजार शाही हाथी थे और बाद में इनकी संख्या पचास हजार तक पहुँच गई। इनका प्रयोग युद्ध में व सामान ढोने में किया जाता था। सम्राट जिन हाथियों का प्रयोग करता था, उन्हें 'खास' कहा जाता था। अन्य श्रेणियों के हाथी 'हलकह' कहे जाते थे।

10. मुगलकालीन वित्त-व्यवस्था पर निबन्ध लिखिए।

उ०– मुगलकालीन वित्त-व्यवस्था का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(i) राज्य की आय के साधन– मुगल बादशाहों की आय के मुख्य साधन युद्ध में लूटी हुई सम्पत्ति का पाँचवाँ भाग, व्यापारिक कर, टकसाल, अधीनस्थ राजाओं एवं मनसबदारों से समय-समय पर प्राप्त होने वाले उपहार, लावारिस सम्पत्ति, नमक कर, राज्य के उद्योगों से आय और लगान (भूमिकर) था। बाबर और हुमायूँ ने हिन्दुओं से 'जजिया' और मुसलमानों से 'जकात' नामक धार्मिक कर लिए। अकबर ने इन्हें समाप्त कर दिया। औरंगजेब के समय में ये धार्मिक कर पुन: लगाए गए। अधिकांश उत्तरकालीन मुगल बादशाहों ने भी इन करों को लगाने का प्रयत्न किया।

(ii) लगान व्यवस्था– मुगल साम्राज्य की लगभग दो-तिहाई आय लगान (भूमिकर) से होती थी, जो एक प्रकार से आर्थिक संगठन का मुख्य आधार थी। अकबर प्रथम मुगल बादशाह था, जिसने लगान-व्यवस्था को सुचारु रूप से स्थापित किया और मध्य युग की सर्वश्रेष्ठ लगान पद्धति का निर्माण किया। उसने विभिन्न लगान अधिकारियों तथा अर्थ-मन्त्रियों को नियुक्त करके विभिन्न अन्वेषण किए। उसने टोडरमल की सहायता से जिस लगान व्यवस्था को स्थापित किया, उसे दहसाला प्रबन्ध (जाब्ता) कहा जाता है और वह मुगल लगान-व्यवस्था का सफल आधार बनी।

(iii) दहसाला प्रबन्ध– 1580 ई० में अकबर ने दहसाला प्रबन्ध को आरम्भ किया और उसे लगान व्यवस्था का स्थायी स्वरूप दिया गया। उस समय राजा टोडरमल अर्थ मन्त्री था और उसका मुख्य सहायक ख्वाजा शाह मंसूर था। इस बन्दोबस्त की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं—

(क) सर्वप्रथम सम्पूर्ण राज्य की खेती योग्य भूमि की नाप करवाई गई। भूमि की नाप के लिए रस्सी की जरीब के स्थान पर बाँस की जरीब का प्रयोग किया गया, जिसके टुकड़े लोहे की पत्तियों से जुड़े होते थे।

(ख) क्षेत्रफल की इकाई बीघा मानी गई, जो 60 गज × 60 गज अर्थात् 3600 वर्ग गज होता था।

(ग) नापने के लिए सिकन्दरी गज के स्थान पर अकबरी गज जो 41 अंगुल का था, प्रयोग किया गया।

(घ) कृषि योग्य भूमि को चार भागों में बाँटा गया— (अ) पोलज (ब) पड़ौती (स) छच्चर (चाचर) और (द) बंजर भूमि।

(ङ) प्रत्येक प्रकार की भूमि की पिछले दस वर्षों की पैदावार का पता लगाकर उस भूमि की औसत पैदावार का पता लगाया जाता था और उस औसत पैदावार को लगान निश्चित करने का आधार मानकर अगले दस वर्षों के लिए किसानों से लगान निश्चित कर दिया जाता था।

(च) इस व्यवस्था के अनुसार राज्य का हिस्सा उपज का 1/3 भाग होता था।

(छ) किसानों से लगान सिक्कों के रूप में लिया जाता था।

(ज) अकबर ने किसानों को भूमि का स्वामी स्वीकार किया और राज्य के किसानों से सीधा सम्पर्क स्थापित किया। इस प्रकार शेरशाह की भाँति उसकी व्यवस्था भी रैयतवाड़ी थी।

(झ) लगान के लिए किसानों को पट्टे दिए जाते थे, जिसमें उनकी भूमि और लगान का विवरण होता था। किसानों से उनकी स्वीकृति (कबूलियत) भी ली जाती थी।

(ञ) भूमि सुधार को प्रोत्साहन दिया जाता था और आपत्तिकाल में लगान कम अथवा माफ भी कर दिया जाता था।

(त) दहसाला प्रबन्ध सम्पूर्ण राज्यों में लागू नहीं किया गया था। वह प्रमुख रूप से बिहार, इलाहाबाद, मालवा, अवध, आगरा, दिल्ली, लाहौर और मुल्तान में लागू था।

अकबर की उपर्युक्त लगान-व्यवस्था की कुछ ब्रिटिश इतिहासकारों ने आलोचना की है। उनके अनुसार लगान कर्मचारी भ्रष्ट थे, जो किसानों पर अत्याचार करते थे और किसानों से अधिक मात्रा में लगान वसूल किया जाता था। परन्तु अधिकांश भारतीय इतिहासकार अकबर की लगान-व्यवस्था को श्रेष्ठ और सफल मानते हैं। इनके अनुसार उपज का 1/3 भाग मध्य युग का न्यूनतम लगान था। लगान के अतिरिक्त अकबर अन्य कोई कर नहीं लेता था। इस प्रकार अकबर की लगान-व्यवस्था के सम्बन्ध में **लेनपूल** ने लिखा है, "मध्य युग के इतिहास में आज तक किसी व्यक्ति का नाम इतना ख्यातिपूर्ण नहीं माना गया है, जितना टोडरमल का और इसका कारण यह है कि अकबर के सुधारों में से कोई भी सुधार इतनी अधिक मात्रा में प्रजा के हितों की पूर्ति करने वाला न था, जितनी इस महान् अर्थशास्त्री द्वारा की गई लगान की पुनर्व्यवस्था।"

जहाँगीर के समय में लगान-व्यवस्था का मूल स्वरूप अकबर के समय की भाँति ही रहा परन्तु उसका प्रबन्ध शिथिल हो गया। **डॉ० बी०पी० सक्सेना** के अनुसार, राज्य की 70% भूमि जागीरदारों को दे दी गई और राज्य का सम्पर्क जागीरदारी भूमि के किसानों से न रहा। शाहजहाँ ने किसानों के कर-भार में वृद्धि कर दी। उसने लगान वसूल करने के लिए भूमि को ठेकेदारों को दिया जाना भी आरम्भ कर दिया। औरंगजेब के समय में राज्य की आर्थिक कठिनाइयों के कारण किसानों पर अधिक दबाव डाला गया। किसानों से लगान वसूल करने के लिए कठोरता भी की गई, जिससे किसानों की स्थिति खराब हो गई। उत्तरकालीन मुगल बादशाहों के समय में तो यह व्यवस्था पूर्णतया समाप्त हो गई और भूमि को ठेकेदारों को देने के अतिरिक्त और कोई कार्य शेष न रहा। इससे किसानों की स्थिति खराब हो गई और राज्य का आर्थिक ढाँचा नष्ट हो गया।

6

शिवाजी
(Shivaji)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए—

1. 1627 ई०　　2. 1659 ई०　　3. 1674 ई०　　4. 1680 ई०

उ०— दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ-संख्या— 118 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए—

उ०— सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 118 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०— बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 119 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०— अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 119 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मराठों के उदय के चार कारण लिखिए।

उ०— मराठों के उदय के चार कारण निम्नवत हैं—

(i) महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति
(ii) मराठा धर्म सुधारकों का प्रभाव
(iii) मराठों की सैनिक व प्रशासनिक कार्यों में दक्षता
(iv) औरंगजेब की दक्षिण नीति।

2. पुरन्दर की सन्धि के बारे में आप क्या जानते हैं?

उ०— पुरन्दर की सन्धि शिवाजी और मुगलों के मध्य हुई थी। शिवाजी ने इस सन्धि में 35 में से 23 दुर्ग मुगलों को दे दिए। शिवाजी ने मुगलों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया परन्तु अपने स्थान पर अपने पुत्र शम्भाजी को 5000 घुड़सवारों के साथ मुगलों की सेवा में भेज दिया। शिवाजी ने बीजापुर के सुल्तान के विरुद्ध मुगलों को सैनिक सहायता देना स्वीकार किया। इस सन्धि से मुगलों को बहुत लाभ पहुँचा।

3. शिवाजी के राजनैतिक आदर्श क्या थे?

उ०— हिन्दू-पद-पादशाही, धर्मशास्त्र की पुस्तकें और कोटिल्य का 'अर्थशास्त्र' शिवाजी के राजनैतिक आदर्श थे।

4. शिवाजी की किन्हीं दो विजयों का वर्णन कीजिए।

उ०— (i) जावली विजय— सन् 1656 ई० में शिवाजी ने जावली पर विजय प्राप्त की। जावली एक मराठा सरदार चन्द्रराव के अधिकार में था। वह शिवाजी के विरुद्ध बीजापुर राज्य से मिला हुआ था। शिवाजी ने चन्द्रराव की हत्या कर किले पर अधिकार कर लिया। इससे उनका राज्य-विस्तार दक्षिण-पश्चिम की ओर सम्भव हो सका।

(ii) कोंकण विजय— जावली की विजय के उपरान्त शिवाजी ने कोंकण की ओर दृष्टिपात किया और उत्तरी कोंकण तथा भिवण्डी के दुर्गों पर अधिकार करके उन्होंने कोंकण में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। उत्तरी कोंकण के पश्चात दक्षिणी कोंकण पर भी उनका अधिकार हो गया जिससे उनका राज्य समुद्री तटों तक विस्तृत हो गया।

5. शिवाजी ने अफजल खाँ की हत्या क्यों की?

उ०— अफजल खाँ शिवाजी को छलपूर्वक परास्त करना चाहता था। शिवाजी अफजल खाँ के मन्तव्य को जान चुका था। जब शिवाजी,

अफजल खाँ के व्यक्तिगत मुलाकात के निमन्त्रण पर उससे मिलने के लिए उनके पास पहुँचा तो उसने आगे बढ़कर शिवाजी का स्वागत किया और शिवाजी को अपनी बाँहों में दबोचकर तलवार से वार किया। शिवाजी ने अफजल खाँ के कुचक्र को समझते हुए बहुत ही चालाकी और साहसिक ढंग से अफजल खाँ का वध कर दिया।

6. शिवाजी ने शाइस्ता खाँ पर आक्रमण क्यों कर दिया?

उ०– औरंगजेब ने दक्षिण में मराठों के बढ़ते प्रभाव से चिंतित होकर शिवाजी की शक्ति को कुचलने के लिए मुगल सूबेदार शाइस्ता खाँ को आदेश दिए। शाइस्ता खाँ ने बीजापुर के साथ मिलकर शिवाजी से पूना, चाकन और कल्याण को छीनने में सफलता प्राप्त की। इन पराजयों से शिवाजी की शक्ति कमजोर पड़ गई। मराठा सेना का उत्साह बढ़ाने के लिए शिवाजी ने एक दिन रात्रि के समय पूना में शाइस्ता खाँ के शिविर पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया।

7. शिवाजी के अष्टप्रधान के विषय में आप क्या समझते हैं?

उ०– शिवाजी ने अपनी शासन-व्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए आठ मन्त्रियों की एक परिषद् का गठन किया जो 'अष्टप्रधान' के नाम से सम्बोधित की जाती थी। केवल सेनापति के अलावा अन्य सभी मन्त्रिगण ब्राह्मण होते थे, जिनकी नियुक्ति सम्राट के द्वारा की जाती थी तथा वे सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे। इन मंत्रियों द्वारा कार्य कराने का भार भी सम्राट पर ही था।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. मुगलकाल में मराठों को एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफलता क्यों मिली?

उ०– मुगलकाल में मराठों को एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफलता मिलने के निम्नलिखित कारण हैं—

(i) **महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति–** महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थितियों ने मराठा शक्ति के उत्कर्ष में उल्लेखनीय सहायता की। महाराष्ट्र का अधिकांश भाग पठारी है। जहाँ जीवन की सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को प्रकृति से कठोर संघर्ष करना पड़ता है। इस कारण वहाँ के निवासी परिश्रमी और साहसी होते हैं। वहाँ आक्रमणकारी के लिए बहुत कठिनाइयाँ थीं तथा सेना को लेकर चलना तथा उसके लिए रसद प्राप्त करना कठिन था, जबकि सुरक्षा के लिए वहाँ अनेक सुविधाएँ थीं। स्थान-स्थान पर सरलता से पहाड़ी किले बनाए जा सकते थे, जिनकी सुरक्षा करना सरल था, परन्तु उनको जीतना कठिन था। गुरिल्ला युद्ध-पद्धति अथवा छापामार रणनीति का प्रयोग वहाँ सरलता से सम्भव था। इसके अतिरिक्त भारत के बीच में स्थित होने के कारण वहाँ के निवासियों के लिए उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं में अपनी प्रगति करने की सुविधा थी।

(ii) **आर्थिक पृष्ठभूमि–** आर्थिक दृष्टि से महाराष्ट्र के निवासियों में आर्थिक असमानताएँ न थी। व्यापारी वर्ग के अतिरिक्त वहाँ धनी वर्ग के व्यक्ति अधिक न थे। इसका कारण था— आर्थिक शोषण करने वाले वर्ग का अभाव। इससे महाराष्ट्र निवासियों का चरित्र दृढ़ बना, वे परिश्रमी और साहसी बने, उनमें समानता की भावना जगी, वे छोटे और बड़े की भावना से रहित हुए तथा वे उस भोग-विलास से दूर ही रहते थे, जिसके कारण उत्तर भारत के समाज का नैतिक पतन हो रहा था।

(iii) **भाषा और साहित्य का योगदान–** भाषा की दृष्टि से मराठी भाषा बहुत सरल और व्यावहारिक थी। इस जनसाधारण की भाषा के प्रयोग से महाराष्ट्र के निवासियों में एकता और समानता पनपी। सन्त तुकाराम के पद बिना भेदभाव के गाए जाते थे। इस प्रकार धार्मिक साहित्य ने लोगों के मध्य अप्रत्यक्ष रूप से एकता स्थापित कर दी थी। **सर जदुनाथ सरकार** के अनुसार, ''शिवाजी द्वारा किए गए राजनीतिक संगठन से पूर्व ही महाराष्ट्र में एक भाषा, एक रीति-रिवाज और एक ही प्रकार के समाज का निर्माण हो चुका था।''

(iv) **मराठा धर्मसुधारकों का प्रभाव–** मराठों में स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना जगाने में महाराष्ट्र के धर्मसुधारकों का महत्वपूर्ण योगदान था। महाराष्ट्र धर्म-सुधार आन्दोलन का एक प्रमुख केन्द्र था। यहाँ संत ज्ञानेश्वर, संत एकनाथ, तुकाराम, संत रामदास और बामन पंडित जैसे विचारक और सुधारक हुए, जिन्होंने मराठों में जागृति ला दी। जनसाधारण की भाषा का सहारा लेकर इन लोगों ने घर-घर में अपनी बात पहुँचाई। शिवाजी के गुरु रामदास समर्थ ने अनेक मठों की स्थापना कर, 'दसबोध' नामक ग्रन्थ की रचना की और मठों में नवचेतना का संचार किया।

(v) **सैनिक व प्रशासनिक कार्यों में दक्षता–** अहमदनगर, गोलकुण्डा व बीजापुर जैसे मुस्लिम राज्यों में लम्बे समय तक उच्च सैनिक व प्रशासनिक पदों पर कार्य करते रहने से मराठा, सैनिक व प्रशासनिक कार्यों में दक्ष हो गए थे, जिसका उन्हें कालान्तर में काफी लाभ मिला।

(vi) **औरंगजेब की दक्षिण नीति–** औरंगजेब ने उत्तर भारत को विजित करने के बाद दक्षिण भारत को विजित करने का निर्णय लिया। इसे देखकर समस्त मराठा शक्ति संगठित हो गई और उन्होंने मुगलो से संघर्ष करने का निर्णय किया। इसका मुख्य कारण उनका दक्षिण में पर्याप्त प्रभावशाली होना था। औरंगजेब का आक्रमण उनके इस प्रभाव को खत्म कर सकता था। यदि वे औरंगजेब की सत्ता को स्वीकार भी करते, तो औरंगजेब की धर्मान्ध नीति के कारण उन्हें वे उच्च पद व सुविधाएँ मिलने की सम्भावना बिलकुल ही नगण्य थी, जो कि उन्हें दक्षिण के दुर्बल व विलासी मुसलमान शासकों से मिल रही थी। यह एक व्यावहारिक कारण था, जिसने शिवाजी के नेतृत्व में मराठों को संगठित होने के लिए प्रेरित किया।

(vii) **मराठों का उच्च चरित्र–** मराठों के उच्च चरित्र ने भी उनके उत्कर्ष में सहायता की। उनके अन्दर साहस, एकता, परिश्रम, नैतिकता, राष्ट्र-प्रेम आदि गुण मौजूद थे।

(viii) **भक्ति व धर्म-सुधार आन्दोलन–** 15वीं व 16वीं शताब्दी के धर्म व भक्ति आन्दोलनों ने सामाजिक व धार्मिक धार्मिक करके मराठों में जातीय एकता की भावना भर दी, जिसने उन्हें शक्तिशाली बना दिया। इतिहासकार **रानाडे** के अनुसार महाराष्ट्र की राजनीति में उत्पन्न उथल-पुथल का प्रमुख कारण धार्मिक-आन्दोलन था। इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है कि महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम व रामदास जैसे सन्तों ने मराठों में राष्ट्रीय भावना का संचार कर दिया।

(ix) **दक्षिणी मुसलमानों का पतन–** दक्षिण के मुसलमान शासकों का कुछ तो नैतिक पतन हो चुका था। वे शासन की जिम्मेदारी मराठों को सौंपकर भोग-विलास में डूबे रहते थे, जिससे मराठों ने शासन के महत्वपूर्ण पदों को कब्जे में करके सैन्य संचालन व प्रशासन को अपने हाथों में ले लिया था। तत्पश्चात् दिल्ली के मुगल शासकों विशेष रूप से औरंगजेब की दक्षिण नीति के कारण कई दक्षिणी मुसलमान राज्य औरंगजेब के हाथों में चले गए थे। उसने अहमदनगर पर विजय पाने के बाद गोलकुण्डा व बीजापुर को जीतने का प्रयास किया। दक्षिण के मुसलमान शासकों की दुर्बल स्थिति को देखकर मराठों ने कई महत्वपूर्ण दुर्ग अपने हाथों में ले लिए और स्वतंत्र मराठा राज्य के स्वप्न को साकार करने का सफल प्रयास किया।

2. शिवाजी की उपलब्धियों का विवरण दीजिए।

उ०– शिवाजी ने सबसे पहले 1646 ई० में बीजापुर के तोरण नामक पहाड़ी किले पर अधिकार कर लिया। इस किले में उन्हें भारी खजाना मिला, जिसकी सहायता से शिवाजी ने अपनी सेना में वृद्धि की तथा तोरण के किले से पाँच मील पूर्व में रायगढ़ नामक नया किला बनवाया। इससे शिवाजी की शक्ति में वृद्धि हुई। इसके बाद धीरे-धीरे उन्होंने चोकन, कोंडाना, पुरन्दर, सिंहगढ़ आदि किलों पर अधिकार कर लिया। शिवाजी की प्रगति को देखते हुए बीजापुर के सुलतान ने उनके पिता शाहजी भोंसले को 1648 ई० में कैद कर लिया और तभी छोड़ा जब शाहजी के पुत्र शिवाजी तथा व्यंकोजी ने बंगलौर (बंगलुरु) और कोंडाना के किले सुल्तान के आदमियों को वापस कर दिए। इससे शिवाजी की गतिविधियाँ कुछ समय के लिए रुक गईं।

1656 ई० में शिवाजी की एक महत्वपूर्ण विजय जावली की थी। जावली एक मराठा सरदार चन्द्रराव के अधिकार में था और वह शिवाजी के विरुद्ध बीजापुर राज्य से मिला हुआ था। शिवाजी ने चन्द्रराव की हत्या कर दी और किले पर अधिकार कर लिया। इससे उनका राज्य-विस्तार दक्षिण-पश्चिम की ओर सम्भव हो सका। शिवाजी की उपलब्धियों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

(i) **मुगलों के साथ प्रथम मुठभेड़–** 1657 ई० में शिवाजी का मुकाबला पहली बार मुगलों से हुआ। दक्षिण के सूबेदार शहजादा औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण किया और बीजापुर ने शिवाजी से सहायता माँगी। यह अनुभव करके कि दक्षिण में मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना आवश्यक है, शिवाजी ने बीजापुर की सहायता करने के उद्देश्य से मुगलों के दक्षिण-पश्चिम भाग पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय शिवाजी ने जुन्नार को लूटा और स्थान-स्थान पर आक्रमण करके मुगलों को तंग किया। परन्तु जब बीजापुर ने मुगलों से संधि कर ली तब शिवाजी ने मुगलों पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। उत्तराधिकार के युद्ध के कारण मुगलों कों प्राय: दो वर्ष तक दक्षिण भारत की ओर ध्यान देने का अवकाश न मिल सका।

(ii) **बीजापुर से संघर्ष–** औरंगजेब के उत्तर भारत चले जाने के बाद शिवाजी ने फिर से देश विजय का सिलसिला शुरू कर दिया और इस बार उनका लक्ष्य बीजापुर के प्रदेश थे। उन्होंने पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच पड़ने वाले कोंकण क्षेत्र पर जोरदार हमला किया और उसके उत्तरी हिस्से को जीत लिया। उन्होंने कई और पहाड़ी किलों पर भी कब्जा कर लिया, जिससे बीजापुर ने उनके खिलाफ कड़ा कदम उठाने का फैसला किया। 1659 ई० में बीजापुर ने दस हजार सैनिकों के साथ अफजल खाँ नामक एक प्रमुख बीजापुरी सरदार को शिवाजी के खिलाफ भेजा और उसे निर्देश दिया कि चाहे जिस तरह भी करो पर उसे बंदी बना लो। उन दिनों ऐसे मौकों पर धोखेबाजी खूब चलती थी। अफजल खाँ और शिवाजी पहले भी कई बार धोखेबाजी का सहारा ले चुके थे। शिवाजी के सैनिक खुली लड़ाई के अभ्यस्त नहीं थे और अफजल खाँ की विशाल सेना देखकर वह ठिठक गए। अफजल खाँ ने शिवाजी को व्यक्तिगत मुलाकात के लिए निमन्त्रण भेजा और यह वादा किया कि वह उसे बीजापुर के सुल्तान से माफी दिलवा देगा। लेकिन शिवाजी को पूरा शक था कि वह अफजल खाँ की चाल थी, इसलिए वे भी पूरी तैयारी के साथ उसके शिविर में आ गए और चालाकी से, लेकिन साथ ही बहुत साहसिक ढंग से, उसे मार डाला। अब उन्होंने अफजल खाँ की नेतृत्वविहीन सेना पर आक्रमण करके उसके पैर उखाड़ दिए और उसके सारे साज-सामान पर, जिसमें तोपखाना भी शामिल था, अधिकार कर लिया। इस विजय से प्रोत्साहित होकर शिवाजी ने दक्षिण कोंकण, पन्हाला और कोल्हापुर जिले में अपनी सेनाएँ भेजकर उन्हें विजित कर लिया।

(iii) **शिवाजी और शाइस्ता खाँ–** औरंगजेब ने दक्षिण में मराठों के बढ़ते प्रभाव से चिंतित होकर शिवाजी की शक्ति को कुचलने के लिए 1660 ई० में मुगल सूबेदार शाइस्ता खाँ को शिवाजी को समाप्त करने के आदेश दिए। उसने बीजापुर राज्य से मिलकर शिवाजी को समाप्त करने की योजना बनाई और शिवाजी से पूना, चाकन और कल्याण को छीनने में सफलता प्राप्त की। इन पराजयों से शिवाजी की शक्ति कमजोर पड़ी। मराठा सेना का उत्साह बढ़ाने के उद्देश्य से शिवाजी ने एक दु:साहसिक कदम उठाया। 1663 ई० में एक रात्रि में उन्होंने पूना में शाइस्ता खाँ के शिविर पर आक्रमण कर उसे जख्मी कर दिया एवं उसके एक पुत्र तथा सेनानायक को मार दिया। शाइस्ता खाँ को भागकर अपने प्राणों की सुरक्षा करनी

पड़ी। इस पराजय से मुगल प्रतिष्ठा को जहाँ ठेस पहुँची वहीं शिवाजी की प्रतिष्ठा पुन: बढ़ गई तथा मुगलों पर पुन: आक्रमण आरम्भ हो गए।

(iv) **सूरत की प्रथम लूट (1664 ई०)–** शाइस्ता खाँ पर विजय से प्रोत्साहित होकर 1664 ई० में शिवाजी ने मुगलों के बन्दरगाह नगर सूरत पर धावा बोल दिया। मुगल बादशाह और उनके सामन्त सूरत से जाने वाले मालवाहक जहाजों में आमतौर से पूँजी निवेश करते थे। शिवाजी के इस आक्रमण से मुगल किलेदार भाग खड़ा हुआ। शिवाजी ने चार दिन तक सूरत को अच्छी तरह लूटा, जिसमें एक करोड़ रुपए से अधिक राशि का माल तथा बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुईं।

(v) **मिर्जा राजा जयसिंह और शिवाजी–** शाइस्ता खाँ की विफलता के बाद औरंगजेब ने शिवाजी का दमन करने के लिए आम्बेर के राजा जयसिंह को भेजा। जयसिंह औरंगजेब के सबसे विश्वस्त सलाहकारों में से था। उसे पूरी प्रशासनिक और सैनिक स्वायत्तता प्रदान की गई, जिससे उसे दक्कन में मुगल प्रतिनिधि पर किसी प्रकार निर्भर न रहना पड़े। उसका सीधा सम्बन्ध सम्राट से था। पहले के सेनापतियों की तरह जयसिंह ने मराठों की शक्ति को कम आँकने की भूल नहीं की। जयसिंह ने शिवाजी को अकेला करने के लिए पहले उनके प्रमुख सेनापतियों को प्रलोभन दिया। उसने शिवाजी को कमजोर करने के लिए उनकी पूना की जागीर के आसपास के गाँवों को तहस-नहस कर दिया। यूरोप की व्यापारी कम्पनियों को भी मराठा नौ-सेना की किसी भी कार्यवाही को रोकने के निर्देश दे दिए गए। अन्तत: जयसिंह ने पुरन्दर के दुर्ग की घेराबन्दी (1665 ई०) कर दी और मराठों को झुकना पड़ा। उसके बाद दोनों पक्षों के बीच पुरन्दर की सन्धि हुई।

(vi) **शिवाजी का मुगल दरबार में जाना–** पुरन्दर की सन्धि शिवाजी के लिए कष्टदायक थी, तथापि परिस्थिति के अनुसार उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। जयसिंह के अनुरोध पर शिवाजी औरंगजेब से मिलने आगरा गए। आगरा में शिवाजी का यथोचित सम्मान नहीं किया गया और उनसे पंचहजारी मनसबदारों में खड़े होने को कहा गया। शिवाजी के विरोध करने पर औरंगजेब ने उन्हें नजरबन्द कर लिया। औरंगजेब के इरादों को भाँपकर शिवाजी पहरेदारों को धोखा देकर अपने पुत्र के साथ आगरा से निकल गए और सकुशल महाराष्ट्र वापस लौट गए। मराठा इतिहासकारों ने इस घटना को बहुत महत्वपूर्ण माना है। **डॉ० सरदेसाई** ने तो लिखा है कि ‘‘इस घटना से ही मुगल साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो जाता है।’’ महाराष्ट्र लौटने के पश्चात् शिवाजी कुछ वर्षों तक शान्त रहे। इस बीच उन्होंने औरंगजेब से समझौता भी कर लिया। औरंगजेब ने उन्हें बाबर की जागीर एवं ‘राजा’ की उपाधि दी तथा उनके पुत्र को पाँच हजारी मनसब का पद दिया। शिवाजी का औरंगजेब के साथ यह समझौता एक कूटनीतिक चाल थी। औरंगजेब बीजापुर और गोलकुण्डा को समाप्त करने के लिए समय चाहता था तो शिवाजी अपनी आन्तरिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए। इस बीच दक्षिण में मुगलों की दुर्बल स्थिति को देखते हुए शिवाजी ने अपने खोए हुए दुर्गों को पुन: वापस प्राप्त करने के लिए प्रयास आरम्भ कर दिया। 1670 ई० से मराठा मुगल सम्बन्ध पुन: कटु हो गए। शहजादा मुअज्जम और दिलेर खाँ के आपसी मनमुटाव का लाभ उठाकर शिवाजी ने मुगलों से अनेक किले वापस छीन लिए। उन्होंने सूरत पर दुबारा आक्रमण कर उसे लूटा और 1670 ई० में वहाँ से चौथ वसूल की। 1670-74 ई० के बीच उन्होंने पुरन्दर, पन्हाला, सतारा एवं अनेक दुर्गों को वापस ले लिया और मुगलों तथा बीजापुर के सुल्तान को परेशान किया।

(vii) **शिवाजी का राज्याभिषेक–** 1674 ई० तक शिवाजी की शक्ति और उनका प्रभाव-क्षेत्र अत्यधिक विकसित हो चला था। अत: 15 जून, 1674 में उन्होंने बनारस के विद्वान पण्डित गंगाभट्ट के हाथों अपना राज्याभिषेक करवाया और ‘छत्रपति’ की उपाधि धारण की तथा भगवा-ध्वज उनका झण्डा बना एवं रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। शिवाजी के राज्याभिषेक को सत्रहवीं शताब्दी की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना माना गया है, इससे न केवल मराठा नेताओं के ऊपर शिवाजी का वर्चस्व कायम हुआ बल्कि उनका शासक के रूप में पद ऊँचा हुआ और उन्होंने मुगलों के विरोध में हिन्दू राजतन्त्र की खुलकर घोषणा की। समारोह से पहले शिवाजी ने कई महीनों तक मन्दिरों में पूजा की, जिसमें चिपलुण में परसराम मन्दिर और प्रतापगढ़ में भवानी मन्दिर शामिल हैं। अब शिवाजी एक जागीरदार अथवा लुटेरा मात्र नहीं थे, बल्कि मराठा राज्य के संस्थापक बन गए।

शासक के रूप में शिवाजी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य था— कर्नाटक में अपनी शक्ति का विस्तार करना। उन्होंने बीजापुर के विरुद्ध गोलकुण्डा से सन्धि (1677 ई०) कर ली। बीजापुरी कर्नाटक क्षेत्र को अबुल हसन कुतुबशाह और शिवाजी ने आपस में बाँट लेने का फैसला किया। अबुल हसन ने शिवाजी को एक लाख हून प्रतिवर्ष कर देने एवं एक मराठा प्रतिनिधि को अपने दरबार में रखने एवं सैनिक सहायता देने का भी आश्वासन दिया। इस सन्धि से शिवाजी की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। प्राय: एक वर्ष के समय में ही शिवाजी ने बीजापुर के जिंजी और वैल्लोर पर कब्जा कर लिया। इसके अतिरिक्त तुंगभद्रा से कावेरी नदी के बीच का इलाका भी उन्होंने जीत लिया। इतना ही नहीं उन्होंने इसमें से सन्धि के अनुसार गोलकुण्डा को कोई हिस्सा नहीं दिया तथा पुन: बीजापुर को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयास किया।

3. शिवाजी की शासन-व्यवस्था निम्नलिखित शीर्षकों के अनुसार समझाइए–

(क) केन्द्रीय प्रशासन, (ख) सैन्य प्रशासन (ग) भूमि प्रशासन

उ०–(क) केन्द्रीय प्रशासन–

(i) **राजा–** मध्ययुग के अन्य शासकों की भाँति शिवाजी एक सम्पूर्ण प्रभुत्त्वसम्पन्न निरकुंश शासक थे। राज्य की सम्पूर्ण

शक्तियाँ उनमें केन्द्रित थीं। उनके अधिकार असीमित थे। वहीं राज्य के प्रशासकीय प्रधान, मुख्य न्यायधीश, कानून निर्माता और सेनापति थे। परन्तु शिवाजी ने अपनी शक्तियों का प्रयोग निरंकुश तानाशाही के लिए नहीं किया बल्कि जनहितार्थ किया। इतिहासकार **रानाडे** के शब्दों में, ''शिवाजी नेपोलियन की भाँति एक महान संगठनकर्ता और असैनिक प्रशासन के निर्माणकर्त्ता थे।''

(ii) अष्टप्रधान– शिवाजी की सहायता के लिए आठ मन्त्रियों की एक परिषद् होती थी जो 'अष्टप्रधान' के नाम से सम्बोधित की जाती थी। केवल सेनापति के अतिरिक्त अन्य सभी मन्त्रिगण ब्राह्मण होते थे, जिनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी तथा वे सम्राट के प्रति ही उत्तरदायी थे। इन मन्त्रियों से कार्य कराने का भार भी स्वयं सम्राट पर ही था।

शिवाजी ने इन मन्त्रियों को अपने विभागों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान नहीं की थी वरन् सरलतापूर्वक कार्य विभाजन के लिए इन मन्त्रियों की नियुक्ति की जाती थी, जिनके निरीक्षण एवं निर्देशन का भार शिवाजी पर ही था। आठ में से छह मन्त्रियों को समय पड़ने पर युद्धभूमि में जाना पड़ता था। शिवाजी यद्यपि इन मन्त्रियों से इनके विभागीय कार्यों के लिए परामर्श लेते थे, किन्तु उनको मानने के लिए वे बाध्य नहीं थे वरन् जिस बात को वे उचित समझते थे, वही करते थे। इस प्रकार का निरंकुश शासन तभी तक सफल रह सकता था, जब तक कि राजा योग्य हो। शिवाजी की मन्त्रिपरिषद् में निम्नलिखित पद थे—

(अ) प्रधानमन्त्री एवं पेशवा– मुगल सम्राटों के वजीर के समान शिवाजी के राज्य में पेशवा का स्थान था। वह अन्य सभी विभागों तथा मन्त्रियों पर निगरानी रखता था तथा राजा की अनपुस्थिति में राज्य के कार्यों की देखभाल करता था। राजकीय पत्रों पर राजा की मुहर के नीचे उसकी मुहर होती थी तथा प्रजा की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना उसका कर्त्तव्य था।

(ब) मजमुआदार अथवा अमात्य– आय तथा व्यय का निरीक्षण करना तथा सम्पूर्ण राज्य की आय का ब्यौरा रखना अमात्य का कार्य होता था।

(स) वाकयानवीस अथवा मन्त्री– राजदरबार में घटित होने वाली घटनाओं तथा राजा के कार्यों का ब्यौरा रखना मन्त्री का कार्य था। वह राजा के विरुद्ध रचित षड्यन्त्रों एवं कुचक्रों का पता लगाता था, उसके खाने-पीने की वस्तुओं का निरीक्षण करता था तथा राजमहल का प्रबन्ध करता था।

(द) सचिव– सम्राट के पत्र-व्यवहार का निरीक्षण करना सचिव का कार्य था। सचिव महल तथा परगनों के लेखों का निरीक्षण करता था तथा राज्य के पत्रों पर मुहर लगाता था।

(य) सुमन्त– बाह्य नीति में राजा को परामर्श देने वाला मन्त्री सुमन्त कहलाता था। अन्य राजाओं के राजदूतों से भेंट करना तथा पड़ोसी राज्यों में घटित होने वाली घटनाओं की सूचना भी उसे रखनी पड़ती थी।

(र) सेनापति– सेना का अध्यक्ष सेनापति होता था, जिसका कार्य सैनिकों की भर्ती करना, सैन्य-व्यवस्था करना, सैनिकों को प्रशिक्षण देना तथा सेना में अनुशासन बनाए रखना होता था। युद्धभूमि में भेजने के लिए वह सैनिकों का चयन भी करता था।

(ल) पण्डितराव अथवा दानाध्यक्ष– धार्मिक कार्यों के लिए दान, धार्मिक उत्सवों का प्रबन्ध, ब्राह्मणों को दान-देना तथा धर्म विरोधियों को दण्ड देना पण्डितराव अथवा दानाध्यक्ष का कर्त्तव्य था। वह जन-आचरण निरीक्षण विभाग का प्रधान होता था। धर्म-संस्थाओं तथा साधु-सन्तों को दान देने के विषय में भी वही निर्णय लेता था।

(व) न्यायाधीश– दीवानी, फौजदारी तथा सैन्य सम्बन्धी झगड़ों का निर्णय करने के लिए न्यायाधीश सबसे बड़ा अधिकारी होता था। यह न्यायाधीश प्राय: हिन्दू रीति-रिवाजों एवं प्राचीन धर्मशास्त्रों के आधार पर निर्णय करता था।

अष्टप्रधान की स्थापना का निर्णय शिवाजी ने एक समय पर अथवा अपने राज्याभिषेक के समय नहीं किया वरन् इसका विकास क्रमश: हुआ तथा शिवाजी आवश्यकता के अनुसार इन मन्त्रिगणों की संख्या में वृद्धि करते रहे। अन्त में उनकी अष्टप्रधान सभा का पूर्ण विकसित रूप उनके 'छत्रपति' बनने के पश्चात ही दृष्टिगोचर हुआ।

(ख) सैन्य प्रशासन– शिवाजी ने सेना के बल पर ही एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था तथा साम्राज्य की सुरक्षा के लिए उन्होंने एक सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ सेना का संगठन किया। शिवाजी के पास एक स्थायी सेना थी, जिसमें 10000 पैदल, 30000 से लेकर 45000 तक घुड़सवार, 1160 हाथी, लगभग 3000 ऊँट और 500 तोपें थीं। उनकी मृत्यु के समय उनकी अनुशासित एवं व्यवस्थित सेना की संख्या 1 लाख थी, जिसमें, 20000 मावले पैदल सैनिक, 45000 राज्य के घुड़सवार तथा 60000 सिलहदार थे। उनके पास लगभग 3000 हाथी तथा 32000 घोड़े इसके अतिरिक्त थे।

शिवाजी से पूर्व सैनिक 6 महीने कृषि करते थे तथा 6 महीने सेना में रहते थे परन्तु शिवाजी ने स्थायी सेना की व्यवस्था की

तथा विश्रृंखलित मराठों को एकत्रित करके एक राष्ट्रीय सेना का रूप प्रदान किया। जागीरदारी प्रथा को हटाकर उन्होंने सैनिकों को नकद वेतन देने की व्यवस्था की, जिससे सम्राट तथा सेना में प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हो सका तथा शिवाजी के मराठा सैनिक अपने नेता के इशारे पर प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत रहने लगे। घोड़े दगवाने तथा घुड़सवारों का हुलिया लिखवाने की प्रथा को प्रचलित किया गया। उनकी सेना में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों वर्गों के व्यक्तियों को समान रूप से स्थान प्राप्त था तथा अनेक मुसलमान सैनिकों ने बड़ी स्वामीभक्ति के साथ उत्कृष्ट कार्य किए थे।

(i) **सेना में अनुशासन की व्यवस्था–** शिवाजी ने अपनी सेना में कठोर अनुशासन की व्यवस्था की थी। सेना को उसका पालन करना अनिवार्य था अन्यथा उन्हें कठोर दण्ड के लिए तैयार रहना पड़ता था। इसका प्रभाव सेना पर यह हुआ कि सेना हमेशा अनुशासित रहती थी। वर्षा ऋतु के पश्चात् सैनिक मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करके उनसे चौथ व सरदेशमुखी कर वसूलते थे। शिवाजी के आदेशानुसार शत्रु-पक्ष के बच्चों व स्त्रियों पर अत्याचार करने की बिल्कुल मनाही थी। उन्हें सम्मानपूर्वक वापस भेजने की व्यवस्था थी। सैनिक राज्य के कृषक व ब्राह्मणों पर बिलकुल भी अत्याचार नहीं कर सकते थे। लूटे गए माल को सम्पूर्ण रूप से पदाधिकारियों को देने का आदेश था, जिसे शिवाजी के राजकोष में संगृहीत कर दिया जाता था। नियमित वेतन के अलावा सैनिक किसी से भी रिश्वत नहीं ले सकता था अन्यथा कठोर दण्ड मिलता था। शिवाजी अपने नियमों को कठोरतापूर्वक पालन करवाते थे।

(ii) **घुड़सवार सेना–** किसी भी राजा की प्रमुख सेना घुड़सवार सेना होती है। यह सेना का प्रमुख अंग होती है। शिवाजी की भी सेना का मुख्य अंग घुड़सवार सेना थी। इसके दो भाग थे— बारगीर व सिलहदार। बारगीर वर्ग के सैनिकों को राज्य की ओर से घोड़े व अस्त्रों-शस्त्रों की व्यवस्था थी परन्तु सिलहदारों को अस्त-शस्त्र व घोड़े खरीदने पड़ते थे। इसके लिए उन्हें एक निश्चित धनराशि दी जाती थी। बारगीर मासिक वेतन प्राप्त करते थे। 25 घुड़सवारों पर 1 हवलदार, 5 हवलदारों पर एक जुमलादार तथा 10 जुमलादारों पर एक हजारी होता था, जिसे 1 हजार हून वार्षिक मिलते थे। सर-ए-नौबत या सेनापति घुड़सवारों का प्रधान था।

(iii) **पैदल सेना–** सेना की दूसरी प्रमुख शाखा पैदल सेना थी। पैदल सेना का भी विभाजन घुड़सवार सेना के समान था। साधारण सैनिक नायक के अधीन होते थे। 5 नायकों पर 1 हवलदार, 5 हवलदारों पर 1 जुमलादार, 10 जुमलादारों पर 1 हजारी तथा 7 हजारियों पर सर-ए-नौबत अथवा सेनापति होता था। शिवाजी के पास 20,000 मावलों की अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित, अनुशासित एवं सुव्यवस्थित सेना थी।

(iv) **जलसेना–** शिवाजी ने एक जलसेना का भी संगठन किया, जिससे जंजीरा के अबीसीनियन सिद्दियों को भी पराजित किया जा सके। सन् 1680 ई० में उन्होंने एक युद्ध में शत्रु पक्ष को बुरी तरह पराजित भी किया था। कोलाबा उनकी जलसेना का प्रमुख अड्डा था, जिसमें शिवाजी की 200 जहाजों की सेना रहती थी। जहाजी बेड़े का संचालन अधिकांशत: मुसलमान पदाधिकारियों के हाथ में था। लेकिन शिवाजी की जलसेना अधिक शक्तिशाली अथवा कुशल नहीं थी। फिर भी शिवाजी के पश्चात भी **आंग्रे** के अधीन मराठों की जल-सेना 18 वीं शताब्दी तक अंग्रेजों एवं पुर्तगालियों के लिए भय का कारण बनी रही।

(v) **युद्ध-पद्धति–** शिवाजी ने मुगलों से सर्वथा भिन्न युद्ध-पद्धति को अपनाया। मुगल सेनापति तथा अन्य पदाधिकारी अत्यन्त विलासी होते थे। वे युद्धभूमि में भी भारी सामान के साथ चलते थे तथा युद्ध में विजय प्राप्त करने की अपेक्षा उन्हें निजी स्वार्थ का अधिक ध्यान रहता था। इसके विपरीत, मराठा सैनिकों को कष्ट सहन करने की आदत डाली जाती थी। वे टट्टुओं पर सवार होकर मुट्ठी भर चने के साथ सरदार की आज्ञा प्राप्त होते ही चल पड़ते थे तथा उनको एकत्रित होने में विलम्ब नहीं लगता था। छोटी-छोटी टुकड़ियाँ होने के कारण उनके सैन्य-संचालन में विशेष असुविधा नहीं होती थी। उनके अस्त्र-शस्त्र भी हल्के होते थे तथा सामान न के बराबर होता था। महाराष्ट्र की प्राकृतिक स्थिति छापामार रण-पद्धति के सर्वथा अनुकूल थी तथा इसी पद्धति के कारण शिवाजी मुगल साम्राज्य के विरुद्ध अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने में सफल हो सके।

(vi) **दुर्गों की व्यवस्था–** शिवाजी ने दुर्गों के महत्व पर अत्यधिक बल दिया था। दुर्ग शत्रु आक्रमणकारियों से सुरक्षित रहने के महत्वपूर्ण साधन थे। मराठा सैनिक दुर्गों की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे तथा माता के समान उनकी पूजा करते थे। दुर्गों के निकटवर्ती प्रदेशों के निवासियों को संकटकाल में दुर्गों में ही शरण प्राप्त होती थी। शिवाजी के राज्य में 240 दुर्ग थे। उन्होंने कुछ नए दुर्गों का भी निर्माण करवाया तथा प्राचीन दुर्गों का जीर्णोद्धार करवाकर उन्हें सुदृढ़ बनवाया। प्रत्येक महत्वपूर्ण घाटी अथवा पहाड़ी पर उन्होंने सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया, जो मराठा सैनिकों की रक्षा करने के लिए उत्तम शरणस्थल थे।

शिवाजी के राज्य की जीवन-शक्ति यही दुर्ग थे। उन्होंने प्रत्येक दुर्ग की सुरक्षा के लिए तीन पदाधिकारियों—हवलदार, सबनीस तथा सर-ए-नौबत की नियुक्ति की। ये तीनों पदाधिकारी भिन्न-भिन्न जातियों के होते थे, जिससे कि विश्वासघात न कर सकें। दुर्ग की चाबियाँ हवलदार के पास रहती थीं, जो दुर्ग की सेना का प्रधान अधिकारी होता था। शासन तथा मालगुजारी का प्रबन्ध ब्राह्मण सबनीस करता था तथा किलेदार अर्थात् दुर्ग का सर-ए-नौबत खाने-पीने का सामान तथा घोड़ों के लिए दाने आदि की व्यवस्था करता था। ये तीनों पदाधिकारी समान पद के होते थे तथा

एक-दूसरे पर नियन्त्रण रखते थे। दुर्ग में स्थित सेना में जातियों का सम्मिश्रण कर दिया गया था। शिवाजी की दुर्ग-व्यवस्था सर्वथा सराहनीय थी तथा पहाड़ियों में छापामार रण-पद्धति की सफलता इसी व्यवस्था पर निर्भर थी।

(ग) भूमि प्रशासन– सेना की ही तरह शिवाजी ने भूमिकर व्यवस्था के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किए। प्रत्येक गाँव का क्षेत्रफल ब्यौरेवार रखा जाता था और प्रत्येक बीघे की उपज का अनुमान लगाया जाता था। उपज का 2/5 भाग राज्य को दिया जाता था। किसानों को बीज और पशुओं की सहायता दी जाती थी जिसका मूल्य सरकार कुछ किश्तों में वसूल कर लेती थी। भूमि कर नकद अथवा जिन्स के रूप में वसूला जाता था।

शिवाजी की लगान व्यवस्था रैयतवाड़ी थी जिसमें राज्य के किसानों से सीधा सम्पर्क स्थापित कर रखा था। शिवाजी नहीं चाहते थे कि जमींदार, देशमुख और देसाई किसानों में हस्तक्षेप करें। हरसम्भव वे लगान अधिकारियों को जागीर के बदले नकद वेतन ही दिया करते थे। वे जब कभी जागीर देते भी थे तो इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि जागीरदार अपनी जागीर में कोई राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित न कर सके।

शिवाजी की आय का मुख्य साधन चौथ था। यह पड़ोसी राज्यों की आय का चौथा भाग होता था जिसे वसूल करने के लिए शिवाजी उन पर आक्रमण करते थे। चौथ हर साल वसूल करते थे। शिवाजी की आय का दूसरा मुख्य साधन सरदेशमुखी थी। यह राज्यों की आय का 1/10 भाग होता था।

4. ''शिवाजी में एक सफल सेनानायक एवं प्रशासक के गुण मौजदू थे।'' विवेचना कीजिए।

उ०– शिवाजी एक सफल सेनानायक– शिवाजी को दादा कोणदेव के द्वारा पूर्ण सैनिक शिक्षा प्राप्त हुई थी। वे वीर सैनिक थे तथा भयंकर-से-भयंकर संकट में भी नहीं घबराते थे। आगरा में औरंगजेब के द्वारा बन्दी बनाए जाने पर उनका पलायन उनके साहस एवं धैर्य का अप्रतिम उदाहरण है। वे केवल एक वीर सैनिक ही नहीं वरन् महान सेनापति भी थे। उनका आकर्षक व्यक्तित्व उनके सैनिकों तथा सम्पर्क में आने वाले अन्य सभी व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। उनके सैनिक और कर्मचारी उनकी पूजा करते थे तथा उनके लिए अपने प्राणों का बलिदान देने को सदैव उत्सुक रहते थे।

उन्होंने एक कुशल सेनापति की भाँति महाराष्ट्र में छापामार युद्ध को अपनाया जिसके कारण उनके शत्रु उन पर विजय प्राप्त करने में सदैव असमर्थ रहे। शिवाजी प्रथम भारतीय सम्राट थे जिन्होंने जल सेना के महत्त्व को समझा तथा एक शक्तिशाली जल-बेड़े का निर्माण करवाया।

एक साधारण जागीरदार के पुत्र होते हुए शिवाजी ने विशाल सेना का नेतृत्व करते हुए एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। इस साम्राज्य निर्माण का मुख्य ध्येय हिन्दुओं की रक्षा करना था जो किसी राजनीतिक शक्ति के द्वारा असम्भव थी। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने स्वराज्य का निर्माण किया। शिवाजी ने तोरण वियज के द्वारा 1649 ई० में विजय कार्य आरम्भ किया तथा केवल थोड़े ही वर्षों में बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मुगल साम्राज्य के प्रदेशों को विजय करके एक विशाल साम्राज्य निर्मित किया। उनकी मृत्यु के समय उनके पास एक स्वतन्त्र राज्य, एक शक्तिशाली जल-बेड़ा तथा 45,000 घुड़सवारों, 60,000 सिलहदारों तथा 20,000 पैदल सैनिकों की सुव्यवस्थित एवं अनुशासित विशाल सेना थी। उनके राज्य में चोरी-डाके का नामोनिशान नहीं था। भिन्न-भिन्न जातियों में विभाजित मराठा सेना का संगठन करके उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि धारण की तथा हिन्दुओं का परित्राण किया।

शिवाजी एक सफल प्रशासक– शिवाजी में अन्य महान विजेताओं के समान कुशल शासन-प्रबन्ध के गुण विद्यमान थे जिनकी उनके आलोचकों तक ने प्रशंसा की है। यद्यपि उन्होंने निरंकुश राज्यतन्त्र-पद्धति को अपनाया किन्तु उनका राज्य प्रजाहित के लिए था। वे प्रजावत्सल सम्राट थे जो निरन्तर कठोर परिश्रम के द्वारा अपनी प्रजा की सुख एवं समृद्धि की वृद्धि के लिए तत्पर रहते थे। उन्होंने अपने राज्य में शांति सुव्यवस्था एवं समृद्धि को जन्म दिया। उनकी केन्द्रीय शासन-व्यवस्था, सैनिक संगठन, नौ-सेना व्यवस्था समय एवं परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल थी।

ग्राण्ड डफ ने भी उनके शासन सम्बन्धी गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा है— ''उनका राज्य तथा शासन गरीब प्रजा एवं उसकी उन्नति के लिए था। उन्होंने जागीरदारी प्रथा, वंशानुगत पद आदि दोषपूर्ण व्यवस्थाओं को हटाकर नकद वेतन तथा योग्यता के आधार पर पदों का वितरण की व्यवस्था की। उनकी अष्टप्रधान सभा, सैनिक संगठन, भूमि सुधार उनको एक कुशल शासक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।''

एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा है— ''जो प्रदेश शिवाजी ने जीता अथवा जो धन एकत्रित किया वह मुगलों के लिए इतना भयावह नहीं था, जितना की शिवाजी का स्वयं का आदर्श, नई विचारधारा और प्रणाली जो उन्होंने चलाई तथा एक नई प्रेरणा उन्होंने मराठा जाति में फूँक दी थी।''

5. शिवाजी के चरित्र एवं शासन-प्रबन्ध का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– शिवाजी के चरित्र एवं शासन-प्रबन्ध का मूल्यांकन निम्नलिखित है—

(i) योग्य सेनापति– शिवाजी एक योग्य सेनापति थे। अपने देश की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल उन्होंने गुरिल्ला युद्ध-पद्धति का प्रयोग किया और सुरक्षा के लिए अनेक दुर्गों का निर्माण कराया।

(ii) **महान् शासक-प्रबन्धक–** शिवाजी ने असैनिक और सैनिक दोनों ही प्रकार की शासन-व्यवस्था में महान् शासक-प्रबन्धक होने का परिचय दिया। अष्टप्रधान व्यवस्था, उनकी लगान व्यवस्था, देशपाण्डे और देशमुख जैसे पैतृक पदाधिकारियों को बिना हटाए हुए उनकी शक्ति और प्रभाव को समाप्त करके किसानों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना तथा ऐसे शासन की स्थापना करना जो उनकी अनुपस्थिति में भी सुचारु रूप से चल सके, ऐसी बातें थीं, जो उनके असैनिक शासन की श्रेष्ठता सिद्ध करती हैं। शिवाजी की घुड़सवार सेना और पैदल सैनिकों में पदों का विभाजन, ठीक समय पर वेतन देना, उनको योग्यतानुसार पद देना, गुरिल्ला युद्ध-पद्धति तथा किलों की सुरक्षा का प्रबन्ध आदि उनकी सैनिक व्यवस्था की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। शिवाजी ने एक अच्छी नौसेना के निर्माण का भी प्रयत्न किया था। शिवाजी ने मराठी भाषा को राजभाषा बनाया था और एक राज्य व्यावहारिक संस्कृत कोष का भी निर्माण कराया था। इससे मराठी साहित्य के निर्माण में सहायता मिली थी।

(iii) **हिन्दू राज्य के संस्थापक–** शिवाजी ने एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना करने में सफलता पाई। उन्होंने ऐसी परिस्थितियों में हिन्दू राज्य का निर्माण किया, जबकि मुगल सम्राट औरंगजेब अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ मराठा राज्य को तो क्या दक्षिण के शिया राज्यों गोलकुण्डा और बीजापुर को भी समाप्त करने पर तुला हुआ था। इसके अतिरिक्त बीजापुर राज्य, पुर्तगालियों और जंजीरा के सिद्दियों का प्रबल विरोध होते हुए भी शिवाजी ने मराठा स्वराज्य की न केवल स्थापना की बल्कि जनता को सुरक्षा और शांति प्रदान की।

(iv) **कुशल और साहसी सैनिक–** शिवाजी एक कुशल और साहसी सैनिक थे। अनेक युद्धों में उन्होंने अपने जीवन को संकट में डाला था। अफजल खाँ से भेंट करना, शाइस्ता खाँ पर अचानक उसके शहर और निवास स्थान में प्रवेश करके आक्रमण करना, औरंगजेब से आगरा मिलने जाना उनके जीवन की ऐसी घटनाएँ हैं, जो यह सिद्ध करती हैं कि शिवाजी अपने जीवन को खतरे में डालने से कभी नहीं झिझके।

(v) **राष्ट्र निर्माता–** शिवाजी का नवीनतम कार्य हिन्दू-मराठाराष्ट्र का निर्माण करना और उनकी महानतम् देन, उसको स्वतन्त्रता की भावना प्रदान करना था। गुलाम रहकर वे बड़ी-से-बड़ी प्रतिष्ठा को स्वीकार करने के लिए तत्पर न थे। अपने कार्य को उन्होंने बिना किसी विशेष सहायता के आरम्भ किया और यह अनुभव करके कि बढ़ती हुई मुस्लिम शक्ति का विरोध मराठों की एकता के बिना सम्भव नहीं है, उन्होंने मराठों को एकसूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया। उन्हें रघुनाथ बल्लाल, समरजी पन्त, तानाजी मालसुरे, सन्ताजी घोरपड़े, खाण्डेराव दाभादे जैसे योग्य मराठा सरदारों का सहयोग मिला।

(vi) **धार्मिक सहिष्णुता की प्रवृत्ति–** शिवाजी की धार्मिक प्रवृत्ति एक पहाड़ी झरने की भाँति स्वच्छ जल को अविरल गति से बहाने वाली थी, जिसमें धर्मान्धता की गन्दगी न थी। उन्होंने सभी धर्मों का सम्मान किया और उनके साथ समान व्यवहार किया। धर्म, धार्मिक ग्रन्थ और कहानियाँ उनके प्रेरणा स्त्रोत थे। महाराष्ट्र के तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों और सन्तों से वह प्रभावित हुए थे।

शिवाजी पहले हिन्दू थे, जिन्होंने मध्य युग की बदलती हुई युद्ध की नैतिकता को समझा। उनके विरोधी इतिहासकार चाहे उन्हें डाकू कहें, चाहे विद्रोही सामन्त और चाहे औरंगजेब ने उनको 'पहाड़ी चूहा' कहकर अपनी सन्तुष्टि कर ली हो, परन्तु शिवाजी ने हिन्दू युद्ध-नीति की नैतिकता में एक नवीन अध्याय जोड़ा कि युद्ध जीतने के लिए लड़ा जाता है न कि शौर्य के प्रदर्शन के लिए। उनकी धार्मिक सहनशीलता आधुनिक समय के लिए भी उदाहरण स्वरूप है। शिवाजी नि:सन्देह महान् थे। इतिहासकार **सर जदुनाथ सरकार** ने लिखा है, ''मैं उन्हें हिन्दू जाति द्वारा उत्पन्न किया हुआ अन्तिम महान् क्रियात्मक व्यक्ति और राष्ट्र निर्माता मानता हूँ।'' वे पुन: लिखते हैं, ''शिवाजी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि हिन्दुत्व का वृक्ष वास्तव में गिरा नहीं है बल्कि वह सदियों की राजनीतिक दासता, शासन से पृथकत्व और कानूनी अत्याचार के बावजूद भी पुन: उठ सकता है, उसमें नए पत्ते और शाखाएँ आ सकती हैं और एक बार फिर आकाश में सिर उठा सकता है।'' इस प्रकार शिवाजी ने मराठों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित कर उनमें राष्ट्र-प्रेम की भावना को जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

6. शिवाजी की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– शिवाजी की प्रमुख विशेषताओं के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 5 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

7

यूरोपीय शक्तियों का भारत में प्रवेश
(Advent of European Powers in India)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1498 ई० **2. 1600 ई०** **3. 1664 ई०** **4. 1758 ई०** **5. 23 जून, 1757 ई०**
6. 1765 ई० **7. 1772 ई०**

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ-संख्या— 134 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 135 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 135 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 135 व 136 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में पुर्तगाली सत्ता की स्थापना पर प्रकाश डालिए।

उ०– सन् 1498 में पुर्तगाली नाविक वास्को-डि-गामा अपने जाहजी बेड़ों के साथ कालीकट पहुँचा। कालीकट के राजा जमोरिन ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। पुर्तगालियों ने इस स्वागत और सम्मान का अनुचित लाभ उठाया। 1500 ई० में पड्रो अल्बरेज काबराल ने 13 जहाजों को एक बेड़ा और सेना लेकर जमोरिन को नष्ट करने की कोशिश की। 1502 ई० में वास्को-डि-गामा पुन: भारत आया और मालाबार तटों पर क्षेत्रीय अधिकार कर भारत में पुर्तगाली सत्ता की स्थापना का प्रयास किया।

2. भारत में पुर्तगाली शक्ति के उत्थान और पतन पर संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उ०– पुर्तगाली गर्वनर अल्मीड़ा और अल्बुकर्क के प्रयासों से भारत में पुर्तगाली शक्ति का उत्थान हुआ। पुर्तगालियों ने भारत के पश्चिमी तटों पर गोवा के अतिरिक्त दमन, दीव, सालीसट, बेसीन, चोल, बम्बई तथा बंगाल में हुगली आदि पर अधिकार कर 150 वर्षों तक सत्ता का उपभोग किया।

भारत में पुर्तगालियों की शक्ति के पतन के विभिन्न कारण रहे हैं। 1580 ई० में पुर्तगाल स्पेन के साथ सम्मिलित होने से अपनी स्वतंत्रता खो बैठा। मुगलों और मराठों ने भी पुर्तगालियों का विरोध किया। बाद में पुर्तगाली व्यापार के प्रति उदासीन हो गए और राजनीति में अधिक हस्तक्षेप करने लगे, जिससे स्थानीय विरोधों के कारण उनकी आर्थिक शक्ति समाप्त होने लगी, जो उनके पतन का मुख्य कारण बनी।

3. भारत में डचों की प्रगति के इतिहास पर प्रकाश डालिए।

उ०– भारत में पुर्तगालियों के व्यापारिक लाभ से प्रोत्साहित होकर हॉलैण्ड निवासी, जिन्हें डच कहा जाता है, ने अपना ध्यान भारत की ओर केन्द्रित किया। सन् 1602 ई० में भारत में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य भारत व अन्य पूर्वी देशों में व्यापार करना था। शीघ्र ही डचों ने मसालों के व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर धीरे-धीरे पुर्तगाली शक्ति को समाप्त कर अपने प्रभाव में वृद्धि की।

4. कर्नाटक के प्रथम युद्ध का क्या परिणाम हुआ?

उ०– अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के मध्य कर्नाटक का प्रथम युद्ध हुआ। इस युद्ध के कारण फ्रांसीसियों के भारत में साम्राज्य स्थापना के सपने को गहरा आघात पहुँचा परन्तु फिर भी भारत में फांसीसियों की धाक जम गई तथा फ्रांसीसी गर्वनर डुप्ले ने और अधिक उत्साह से देश की आन्तरिक समस्याओं में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। इस युद्ध ने विदेशियों पर भारत की दुर्बलता को पुर्णत: प्रकट कर दिया और दोनों शक्तियाँ कर्नाटक के आन्तरिक संघर्षों में हस्तक्षेप करने लगीं।

5. भारत में पुर्तगालियों की असफलता के दो कारण लिखिए।

उ०– भारत में पुर्तगालियों की असफलता के दो कारण निम्नलिखित हैं—

(i) मुगलों एवं मराठों द्वारा पुर्तगालियों का विरोध करना।
(ii) पुर्तगालियों की धार्मिक कट्टरता, धर्म-प्रचार एवं स्थानीय स्त्रियों से विवाह करने की नीति।

6. अंग्रेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों की पराजय के किन्हीं पाँच कारणों का वर्णन कीजिए।

उ०– अंग्रेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों की पराजय के पाँच कारण निम्नलिखित हैं—

(i) अंग्रेजी कंपनी का व्यापारिक तथा आर्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ होना।
(ii) अंग्रेजों की शक्तिशाली नौसेना
(iii) मुम्बई पत्तन की सुविधा
(iv) ब्रिटिश अधिकारियों की योग्यता
(v) फ्रांसीसियों द्वारा व्यापार की अपेक्षा राज्य विस्तार पर बल देना।

7. अंग्रेजों ने सूरत पर किस प्रकार अधिकार किया?

उ०– अंग्रेजों ने सूरत में व्यापारिक कोठी की स्थापना करके धीरे-धीरे सूरत पर अधिकार किया।

8. इलाहाबाद की संधि क्या थी? उसकी शर्तें का वर्णन कीजिए।

उ०– **इलाहाबाद की संधि (1765 ई०)–** क्लाइव 1765 ई० में कलकत्ता (कोलकाता) का गवर्नर बनकर पुन: भारत आया। उसने इलाहाबाद जाकर मुगल सम्राट शाहआलम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला के साथ अलग-अलग संधि की जो इलाहाबाद की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। इस संधि की शर्तें इस प्रकार थीं—

(i) मुगल सम्राट शाहआलम ने बंगाल, बिहार व उड़ीसा (ओडिशा) की दीवानी अंग्रेजों को प्रदान कर दी।
(ii) मुगल सम्राट शाहआलम को कड़ा और इलाहाबाद के जिले प्रदान किये गये।
(iii) अंग्रेजों ने मुगल सम्राट शाहआलम को 26 लाख रुपया वार्षिक पेंशन देना स्वीकार किया।
(iv) नवाब शुजाउद्दौला ने अंग्रेजों को युद्ध के हर्जाने के रूप में 50 लाख रुपया देना स्वीकार किया।
(v) शुजाउद्दौला ने बाह्य आक्रमणों के दौरान भेजी जाने वाली अंग्रेजी सेना का खर्चा वहन करना स्वीकार किया।
(vi) चुनार का दुर्ग अंग्रेजों के पास यथावत रहने दिया।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में यूरोपीय शक्तियों के आगमन की विवेचना कीजिए।
या सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय कम्पनियों की गतिविधियों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उ०– **पुर्तगालियों का भारत आगमन–** 20 मई, 1498 ई० का दिन भारत और यूरोप के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दिन कहा जा सकता है क्योंकि इस दिन भारत की धरती पर एक पुर्तगाली वास्को-डि-गामा अपने चार जहाजों और एक सौ अठारह नाविकों के साथ उतरा। **एडम स्मिथ** ने अमेरिका की खोज और आशा अन्तरीप की ओर से भारत के मार्ग की खोज को ''मानवीय इतिहास की दो महानतम् और अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाएँ बताया है।''

आधुनिक अन्वेषणों से पता चलता है कि वास्को-डि-गामा स्वयं भारत नहीं पहुँचा था, बल्कि वह मोजांबिक पहुँचने पर एक भारतीय व्यापारी के जहाज के पीछे-पीछे चलकर कालीकट तक पहुँच पाया। अत: भारत तक उसकी यात्रा 'वास्को-डि-गामा की नवीन खोज' न थी। एक प्रकार से उसने इस मार्ग का अनुसरण किया था। कुछ भी हो, कालीकट पहुँचने पर वहाँ के हिन्दू राजा जमोरिन ने उसका स्वागत और आतिथ्य-सत्कार किया। लेकिन पुर्तगालियों ने इस स्वागत और सम्मान का अनुचित लाभ उठाया। 1500 ई० में पेड्रो अल्वरेज काबराल ने 13 जहाजों का एक बेड़ा और सेना लेकर जमोरिन को नष्ट करने की कोशिश की। 1502 ई० में पुन: वास्को-डि-गामा भारत आया और मालाबार तटों पर क्षेत्रीय अधिकार के कुछ प्रयास किए। आल्मीड़ा या अल्मीडा भारत में पहला पुर्तगाली गवर्नर था। 1509 ई० में अल्बुकर्क नामक पुर्तगाली गवर्नर बनकर भारत आया। विश्वासघात और पारस्परिक फूट का लाभ उठाकर नवम्बर, 1510 में पुर्तगालियों ने गोवा पर अपना अधिकार कर लिया। इन्होंने ईसाईयत का मनमाने ढंग से प्रचार किया और व्यापार को बढ़ाया। गोवा के अतिरिक्त दमन, दीव, सालीसट, बेसीन, चोल और बम्बई (मुम्बई), बंगाल में हुगली तथा मद्रास (चेन्नई) तट पर स्थित सान-थोम पुर्तगालियों के अधिकार में चले गए। 150 वर्षों तक सत्ता का उपभोग करने के उपरान्त भारत में उनकी सत्ता का पतन होने लगा और उनके अधिकार में केवल गोवा, दमन और दीव रह गए थे।

भारत में डचों का आगमन– भारत में पुर्तगालियों को व्यापारिक लाभ से प्रोत्साहित होकर हॉलैण्ड निवासी, जिन्हें डच कहा जाता है, ने अपना ध्यान भारत की ओर केन्द्रित किया। उनका पहला व्यापारिक बेड़ा मलाया द्वीप-समूह में आया। केप ऑफ गुड होप होते हुए भारत में 1596 ई० में आने वाला कार्निलियस ह्यूटमैन प्रथम डच नागरिक था। उनके द्वारा भी अन्य यूरोपीय देशों की भाँति भारत में व्यापार हेतु 1602 ई० में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य भारत व अन्य पूर्वी देशों से व्यापार करना था।

शीघ्र ही डचों ने मसालों के व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया और धीरे-धीरे उन्होंने पुर्तगाली शक्ति को समाप्त कर दिया। डचों ने पुर्तगालियों को मलक्का (1641 ई०) और श्रीलंका (1658 ई०) के तटीय भागों से भगा दिया और दक्षिण भारत में अपने प्रभाव में वृद्धि की। डचों ने भारत में सूरत, भड़ौच, कैम्बे, अहमदाबाद, कोचीन, मसूलीपट्टम, चिन्सुरा और पटना में अनेक व्यापारिक केन्द्र बनाए। वे भारत में सूती वस्त्र और कच्चा रेशम, शोरा, अफीम और नील निर्यात करते थे, परन्तु शीघ्र ही वे भी अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच की स्पर्धा का शिकार हुए। डचों की कम्पनियाँ शीघ्र ही प्रभावहीन हो गई, जिसका प्रमुख कारण डच सरकार का कम्पनी के कार्यों में अत्यधिक हस्तक्षेप था। सरकारी प्रभुत्व को ज्यादा महत्व दिया गया, व्यापार को कम। यह माना जाता है कि डचों की हार का प्रमुख कारण कम्पनी का सरकारी संस्था होना था।

सर्वप्रथम डच और अंग्रेज लोग मित्रों की भाँति पूर्व में आए ताकि कैथोलिक धर्मानुयायी देश पुर्तगाल तथा स्पेन का सामना कर सकें। परन्तु शीघ्र ही यह मित्रता की भावना लुप्त हो गई तथा आपसी विरोध आरम्भ हो गया। अंग्रेजों की स्पेन समर्थक नीति ने आंग्ल-डच मित्रता पर आघात किया तथा दोनों में एक गम्भीर संघर्ष आरम्भ हो गया। अम्बोयना में हुए अंग्रेजों के हत्याकाण्ड (1623 ई०) के कारण समझौते की सब आशाओं पर पानी फिर गया। गर्म मसाले के द्वीपों में अपनी श्रेष्ठता कायम करने के लिए यह संघर्ष लम्बे समय तक चलता रहा तथा डचों ने अपनी स्थिति को वहाँ सुदृढ़ बनाए रखा।

अंग्रेजों का भारत आगमन– महारानी एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल में 1599 ई० में लन्दन में लॉर्ड मेयर की अध्यक्षता में भारत के साथ सीधा व्यापार करने के लिए एक संस्था बनाने पर विचार हुआ, जो 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' नाम से शुरू की गई। 31 दिसम्बर, 1600 ई० को महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने इस कम्पनी को एक अधिकार-पत्र प्रदान किया। प्रारम्भ में कम्पनी को साहसी लोगों की मण्डली कहा गया क्योंकि इसके सदस्य लूटने में दक्ष थे।

1608 ई० में अंग्रेजों का पहला जहाजी बेड़ा हॉकिन्स के नेतृत्व में भारत आया था। 1613 ई० में सूरत में अंग्रेजों की व्यापारिक कोठी की स्थापना की। 1615 ई० में सर टामस रो व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के उद्देश्य से मुगल सम्राट जहाँगीर के दरबार में आगरा आया और यहाँ तीन वर्ष तक रहा। प्रारम्भ में मुगल दरबारों में पुर्तगालियों का अधिक प्रभाव होने के कारण उसे अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई, किन्तु अन्ततः वह शहजादा खुर्रम से व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने में सफल हुआ। इसके बाद अंग्रेजों ने सूरत, आगरा, अहमदाबाद तथा भड़ौच में व्यापारिक कोठियाँ स्थापित करने की अनुमति प्राप्त की। 1640 ई० में अंग्रेज कम्पनी ने मद्रास (चेन्नई) में एक सुदृढ़ फोर्ट (सेंट जॉर्ज) की स्थापना की। 1642 ई० में बालासोर में भी अंग्रेजों ने एक व्यापारिक कोठी बनाई। 1668 ई० में कम्पनी को बम्बई (मुम्बई) प्राप्त हुआ जो ब्रिटिश सम्राट चार्ल्स द्वितीय को 1661 ई० में पुर्तगाली राजकुमारी ब्रेगाजा की केथरीन से विवाह करने पर दहेज के रूप में मिला था। इसी प्रकार 1651 ई० में अंग्रेजों ने एक फैक्ट्री हुगली में और इसके बाद बंगाल में, कलकत्ता (कोलकाता) और कासिम बाजार में कई कोठियाँ स्थापित कीं।

ईस्ट इण्डिया के विरोधी सौदागरों ने 17 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में एक नई कम्पनी स्थापित की, जिसका नाम 'न्यू कम्पनी' रखा गया। इस नई कम्पनी ने भी घूस व रिश्वत की नीति अपनाई। शीघ्र ही दोनों कम्पनियों में परस्पर स्वार्थवश टकराव हो गया। अन्त में 1702 ई० में दोनों कम्पनियों ने एक संयुक्त कम्पनी बनाकर अपना व्यापार तेजी से बढ़ाया और स्थानीय राजाओं व नवाबों से भी सम्बन्ध स्थापित किए। 1707 ई० में इस कम्पनी ने मुगल बादशाह फर्रुखसियार से व्यापारिक अधिकारों का एक फरमान (अधिकार-पत्र) प्राप्त किया। अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों शक्तियों ने भारत के देशी राजाओं के पारस्परिक झगड़ों तथा उत्तराधिकार के मामले में हस्तक्षेप कर भूमि, धन व अन्य व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कर लीं। अंग्रेजों का डचों तथा फ्रांसीसियों से व्यापारिक संघर्ष हुआ, जिसमें अंग्रेजों को सफलता प्राप्त हुई। मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् तो अंग्रेजों का भारत के राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रभाव बढ़ा। हॉलैण्ड तथा पुर्तगाल यूरोप के दुर्बल राष्ट्रों में थे। अतः वे अंग्रेजों के आगे न टिक सके और व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता से बाहर हो गए। अब अंग्रेजों की केवल फ्रांसीसीयों से व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा थी। दक्षिण भारत में फैली राजनीतिक अव्यवस्था के कारण दोनों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ जाग्रत हो उठीं और राजनीतिक प्रभुत्व के लिए दोनों के बीच तीन युद्ध (1746-1763 ई०) हुए। यूरोप में भी 1756-63 ई० तक दोनों में सप्तवर्षीय संघर्ष चला, जिसमें फ्रांस का पराभव हुआ। अन्त में भारत में अंग्रेजों को निर्णायक सफलता मिली। धीरे-धीरे अंग्रेजों का भारतीय व्यापार पर ही नहीं सम्पूर्ण भारत पर पूर्णरूपेण अधिकार हो गया।

2. भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में फ्रांसीसियों की अपेक्षा अंग्रेज क्यों सफल हुए? विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।

उ०– भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में फ्रांसीसियों की अपेक्षा अंग्रेज निम्नलिखित कारणों से सफल रहे—

(i) **अंग्रेजी कम्पनी का स्वरूप–** ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक प्राइवेट कम्पनी थी, जिसमें ब्रिटिश सरकार किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती थी। प्राइवेट होने के कारण इस कम्पनी के सदस्य अत्यधिक परिश्रमी थे, जबकि फ्रांसीसी कम्पनी एक सरकारी कम्पनी थी। अतः प्रत्येक निर्णय के लिए फ्रांसीसी कम्पनी फ्रांसीसी सरकार पर निर्भर रहती थी।

(ii) **अंग्रेजी कम्पनी का व्यापारिक तथा आर्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ होना–** अंग्रेजी कम्पनी व्यापारिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टि से श्रेष्ठ थी। अंग्रेजों के पास व्यापार हेतु पूर्वी समुद्र-तट और बंगाल का समुद्र प्रान्त था, जहाँ से उन्हें अत्यधिक व्यापारिक लाभ होता था, जिससे उन्हें आर्थिक संकट का बिलकुल भी भय नहीं रहता था। जबकि फ्रांसीसियों के पास ऐसा कोई व्यापारिक स्थान न था, जहाँ से समुचित मात्रा में व्यापारिक लाभ की प्राप्ति होती हो।

(iii) **अंग्रेजों की शक्तिशाली नौसेना–** अंग्रेजों की नौसेना फ्रांसीसी नौसेना की तुलना में अधिक शक्तिशाली थी। परिणामस्वरूप वे सदैव अपने व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित रखने में सफल रहे, जबकि फ्रांसीसी नौसेना कमजोर होने के कारण सैनिक और व्यापारियों को किसी प्रकार की सहायता प्रदान न कर सकी।

(iv) **मुम्बई पत्तन की सुविधा–** अंग्रेजों की समुद्री-शक्ति का स्थान मुम्बई था, जिसके कारण वे अपने जहाज मुम्बई में सुरक्षित रख सकते थे। इसके विपरीत फ्रांसीसियों की समुद्री-शक्ति का अड्डा फ्रांस के द्वीप में था, जो बहुत दूर स्थित था। अतः वे शीघ्र कोई कार्यवाही नहीं कर सकते थे।

(v) **डूप्ले की वापसी–** डूप्ले फ्रांस का एक योग्यतम गवर्नर था। उसने भारत में फ्रांसीसी प्रभाव में वृद्धि की थी, किन्तु उसे फ्रांसीसी सरकार ने थोड़ी-सी असफलता प्राप्त होने पर ही वापस बुला लिया, जिससे अंग्रेजों के उत्साह में और अधिक वृद्धि हो गई।

(vi) **ब्रिटिश अधिकारियों की योग्यता–** ब्रिटिश कम्पनी को योग्य अधिकारियों की सेवाएँ प्राप्त हुई। क्लाइव, लारेंस, आयरकूट आदि योग्य ब्रिटिश अधिकारी थे। उन्होंने अपनी योग्यता के बल पर ब्रिटिश कम्पनी को उन्नत बनाया, जबकि

फ्रांसीसी अधिकारी इतने योग्य नहीं थे। वे आपस में लड़ते-झगड़ते थे। अत: वे फ्रांसीसी कम्पनी की उन्नति में अपना योगदान न दे सके।

(vii) **फ्रांसीसियों द्वारा व्यापार की अपेक्षा राज्य-विस्तार पर बल देना–** फ्रांसीसियों की एक बड़ी भूल यह थी कि उन्होंने व्यापार की अपेक्षा राज्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा पर अधिक बल दिया। उनका सारा धन युद्धों में व्यर्थ चला गया। फ्रांसीसी सरकार यूरोप तथा अमेरिका में व्यस्त रहने के कारण डूप्ले की महत्वाकांक्षी योजनाओं का पूर्ण समर्थन करने की स्थिति में नहीं थी। दूसरी ओर अंग्रेज अपने व्यापार की कभी उपेक्षा नहीं करते थे।

(viii) **यूरोप में अंग्रेजों की विजय–** भारत में फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच होने वाला संघर्ष यूरोप में होने वाला फ्रांस और इंग्लैण्ड के बीच संघर्ष का एक भाग था। यूरोप में अंग्रेजों की विजय हुई और फ्रांसीसी पराजित हुए। इसका प्रभाव भारत में भी पड़ा। भारत में अंग्रेज जीतते गए और फ्रांसीसी पराजित होते गए।

(ix) **विलियम पिट की नीति–** 1758 ई० में इंग्लैण्ड में विलियम पिट ने युद्धमन्त्री का कार्यभार सम्भालते ही क्रान्तिकारी परिवर्तन कर कुछ इस प्रकार की नीति अपनाई कि फ्रांस यूरोपीय मामलों में बुरी तरह फँस गया और हार गया।

(x) **लैली का उत्तरदायित्व–** लैली अत्यन्त ही कटुभाषी व क्रोधी व्यक्ति था। अत: कोई भी फ्रांसीसी अधिकारी उसके साथ काम करने से हिचकिचाता था। वास्तव में वह भारत में फ्रांसीसियों के पतन के लिए अधिक उत्तरदायी था।

3. डूप्ले की नीति की समीक्षा कीजिए तथा फ्रांसीसियों की असफलता के कारणों का वर्णन कीजिए।

उ०– **डूप्ले की नीति–** डूप्ले की नीति को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है—

(i) **भारतीय शासकों के मामलों में हस्तक्षेप–** डूप्ले ने भारत की राजनीतिक स्थिति के अनुसार अनुमान लगा लिया कि सफलता प्राप्त करने के लिए राजाओं के आपसी झगड़ों में हस्तक्षेप करना, व्यापार व राजनीतिक अधिकारों के लिए लाभकारी है, अत: उसने इस नीति का अनुसरण किया। हैदराबाद और कर्नाटक के झगड़ों में उसे सफलता प्राप्त भी हुई।

(ii) **फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना–** डूप्ले फ्रांसीसी सरकार तथा फ्रांसीसी व्यापारियों के लाभ हेतु यहाँ पर भारत के अन्य क्षेत्रों में भी साम्राज्य स्थापित करने की नीति में विश्वास करता था और साम्राज्य स्थापना के लिए वह अत्यधिक सक्रिय हो गया था।

(iii) **व्यापारिक नीति में परिवर्तन–** डूप्ले प्रारम्भ में अपने देश की समृद्धि के लिए भारत में व्यापार की वृद्धि करने आया। उसने फ्रांसीसी कम्पनी को भारत में सुदृढ़ नींव पर खड़ा करने का प्रयास किया, परन्तु बाद में वह समझ गया था कि अंग्रेजों के विरुद्ध सफल होने के लिए राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना भी अनिवार्य है। अत: व्यापार की वृद्धि के लिए वह राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा में जुट गया। इस प्रकार डूप्ले ने फ्रांसीसी कम्पनी की व्यापारिक नीति में परिवर्तन किया तथा दक्षिणी भारत में फ्रांस के राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना की ओर ध्यान दिया।

(iv) **भारतीय सैन्य-बल पर प्रयोग–** डूप्ले फ्रांसीसी सेनाओं की दुर्बलताओं से भली-भाँति परिचित था। अत: उसने सैन्य-बल का लाभ उठाने की नीति अपनाई थी। उसने भारतीय राजाओं की सेनाओं को पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षण देना शुरू किया।

(v) **उपहार ग्रहण करना–** धन की अभिवृद्धि के लिए डूप्ले ने भारतीय राजाओं से उपहार ग्रहण करने की नीति अपनाई। यह नीति राजनीतिक दृष्टिकोण से डूप्ले द्वारा लिया गया अविवेकपूर्ण निर्णय था।

फ्रांसीसियों की असफलता के कारण– फ्रांसीसियों की असफलता के निम्नलिखित कारण हैं—

(i) **गोपनीयता–** डूप्ले अपनी भावी योजना को अन्य समकक्ष अधिकारियों से छिपाकर रखता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कम्पनी और फ्रांसीसी सरकार उसकी समय पर सहायता न कर सकी और इस तरह डूप्ले की गोपनीय योजना की यह नीति फ्रांसीसियों के पतन का प्रमुख कारण बन गई।

(ii) **व्यापार की दयनीय दशा–** फ्रांसीसियों का व्यापार भी पतनोन्मुख था। ब्रिटिश व्यापारी बहुत चतुर व दक्ष थे। इनका एकमात्र मुम्बई का व्यापार ही सारे फ्रांसीसी व्यापार की तुलना में पर्याप्त था। व्यापारिक अवनति ने भी फ्रांसीसियों का मनोबल कम कर दिया। यह स्थिति फ्रांसीसियों के लिए अंग्रेजों से बराबरी करने में प्रतिकूल सिद्ध हुई।

(iii) **चारित्रिक दुर्बलता–** डूप्ले अहंकारी व्यक्ति था। वह अति महत्वाकांक्षी था तथा उसका स्वभाव षड्यन्त्रप्रिय था। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ तथा प्रबन्धक था परन्तु योग्य सेनानायक न था। इसके विपरीत उसका प्रतिद्वन्द्वी क्लाइव योग्य राजनीतिज्ञ तथा प्रबन्धक तो था ही साथ ही कुशल सेनानायक भी था।

(iv) **फ्रांसीसी सरकार का असहयोग–** डूप्ले ने भारतीय राज्यों में अपने हस्तक्षेप की बात कम्पनी के डायेक्टरों से छिपाकर अपनी योजना उनके सामने स्पष्ट नहीं की। इस कारण उसको फ्रांसीसी सरकार से कोई सहायता नहीं मिल सकी बल्कि डायरेक्टर उसकी नीति को शंका की दृष्टि से देखने लगे। मजबूरन डूप्ले को अपनी ही अपर्याप्त शक्ति पर निर्भर रहना पड़ा। फ्रांस की तत्कालीन सरकार ने इन परिस्थितियों में अमेरिका में ही अपने उपनिवेश स्थापित करने की ओर ध्यान दिया भारत की ओर नहीं, क्योंकि भारत की स्थिति को डूप्ले ने छिपाए रखा।

(v) **फ्रांसीसी सरकार का अपने प्रतिनिधियों से दुर्व्यवहार–** फ्रांसीसी सरकार अपने प्रतिनिधियों के प्रति समुचित स्नेह और

आदर का व्यवहार नहीं करती थी। इससे उनका मनोबल टूट जाता था, जिससे वे कार्यो को आत्मिक भाव से न करके उसे सरकारी समझकर असावधानी बरतते थे। डूप्ले तथा लैली के प्रति दुर्व्यवहार किया गया था। डूप्ले को वापस बुला लिया गया तथा लैली को बाद में मृत्युदण्ड दिया गया।

(vi) चाँदा साहब का पक्ष लेना– डूप्ले को एक भागे हुए तथा मराठों की कैद में वर्षो रहने वाले चाँदा साहब का पक्ष लेना उसकी अदूरदर्शिता थी। चाँदा साहब का कर्नाटक की राजनीति से सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका था और वहाँ उसका कोई प्रभाव नहीं था। डूप्ले को मुहम्मद अली का पक्ष लेना चाहिए था, जिसका कर्नाटक की जनता पर प्रभाव था और जिसे जनता द्वारा वास्तव में गद्दी का अधिकारी समझा जाता था।

(vii) अति महत्वाकांक्षी होना– डूप्ले एक ही समय में हैदराबाद और कर्नाटक दोनों स्थानों पर हस्तक्षेप कर सफलता पाना चाहता था, जबकि फ्रांसीसी साधन दोनों स्थानों पर एक साथ सफलता प्राप्त करने के लिए अपर्याप्त थे। उसने अत्यधिक महत्वाकांक्षी होने के कारण दोनों स्थानों पर एक साथ हस्तक्षेप किया और दोनों ही स्थानों पर वह असफल रहा।

4. अंग्रेज तथा फ्रांसीसियों के मध्य हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए।

उ०– भारतीय व्यापार की प्रतिद्वन्द्विता एवं उपनिवेश स्थापना का प्रयास तथा भारत में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापना के प्रश्न पर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में संघर्ष हो गया। 16वीं तथा 17वीं शताब्दियों में जब मुगलों का चरम उत्कर्ष का काल था तथा केन्द्रीय शक्ति सुदृढ़ थी, यूरोप के व्यापारी विभिन्न छोटे तथा बड़े भारतीय शासकों के दरबारों में प्रार्थी के रूप में आते थे परन्तु अनुकूल परिस्थितियों में उनकी व्यावसायिक प्रवृत्ति धीरे-धीरे साम्राज्यवादी मनोवृत्ति में बदल गई। औरंगजेब की मृत्यु के कुछ समय उपरान्त ही मुगल साम्राज्य, केन्द्र में होने वाले राजमहलों के षड्यन्त्रों तथा अपने सूबेदारों की स्वार्थपूर्ण देशद्रोहिता के कारण पतनोत्मुख हो चला था। इसके अतिरिक्त 1739 ई० में नादिरशाह तथा 1761 ई० में अहमदशाह अब्दाली के भयंकर आक्रमणों ने दिल्ली के शाही दरबार की दुर्बलता सबके सामने स्पष्ट कर दी। पेशवाओं के नेतृत्व में मराठे अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहे थे जिससे देश की शिथिल केन्द्रीय व्यवस्था नष्ट होने के निकट पहुँच गई थी।

(i) व्यापारिक एकाधिकार की स्थापना का प्रयास– फ्रांसीसी तथा अंग्रेज दोनों ही प्रारम्भ में व्यापारिक एकाधिकार स्थापित करने में संलग्न थे।

दक्षिण भारत में दोनों विदेशी जातियों ने अपनी-अपनी बस्तियाँ स्थापित कर ली थीं। अत: अंग्रेज तथा फ्रांसीसी संघर्ष अनिवार्य हो गया। दोनों ही राष्ट्रों ने पूर्व में आक्रामक नीति का अनुसरण किया। प्रारम्भ में इन्होंने आत्मरक्षा की भावना से प्रेरित होकर सेना का निर्माण किया और किलेबन्दी भी की। फिर भारतीय राजाओं और नबाबों के पारस्परिक झगड़ों में हस्तक्षेप किया तथा अपने हित की पूर्ति के लिए अपनी सेना से उनकी सहायता करने लगे। इन संघर्षों में फ्रांसीसी यदि एक ओर होते थे तो अंग्रेज ठीक उसके विपक्षी की ओर। इस प्रकार वे दोनों आपस में लड़ने लगते थे और अपनी-अपनी शक्ति एवं क्षमता का प्रदर्शन करते थे।

(ii) डूप्ले की महत्वाकांक्षा– भारतीय राजनीति में प्रथम राजनीतिक हस्तक्षेप का श्रीगणेश फ्रांसीसियों के गवर्नर डूप्ले ने किया। डूप्ले फ्रांसीसी गवर्नरों में सर्वाधिक साम्राज्यवादी एवं महत्वाकांक्षी था। उसने भारत में फ्रांसीसी व्यापार को उन्नत करने के लिए देशी राजाओं की राजनीति में हस्तक्षेप करना और उन्हें अपने प्रभाव में लाना आवश्यक समझा। अंग्रेज डूप्ले की इस नीति को सहन न कर सके और वे भी भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे। परिणामस्वरूप दोनों शक्तियों के बीच संघर्ष हुआ।

(iii) यूरोप में ऑस्ट्रिया का उत्तराधिकार युद्ध– 1742 ई० में यूरोप में अंग्रेज और फ्रांसीसी परस्पर संघर्षरत थे। दोनों के बीच संघर्ष का मुख्य कारण 1740 ई० में ऑस्ट्रिया और प्रशा के मध्य युद्ध का होना था। इस युद्ध में अंग्रेज ऑस्ट्रिया की ओर तथा फ्रांसीसी प्रशा की ओर थे। यूरोप में हुए दोनों के बीच संघर्ष का प्रभाव भारत में भी पड़ा, जिससे भारत में दोनों के बीच संघर्ष हुआ।

(iv) भारत की राजनीतिक दशा– औरंगजेब के पतन के पश्चात् भारत में अनेक नवीन राज्य एवं शक्तियों का उदय हुआ। इनमें से कोई भी राज्य अथवा शक्ति ऐसी न थी, जो सम्पूर्ण भारत पर अपना नियन्त्रण कायम रखने में सक्षम हो। अत: ऐसी स्थिति में अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों को ही व्यापार के साथ-साथ भारत में अपनी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ करने का अवसर प्राप्त हुआ।

(v) उत्तराधिकार के संघर्ष में कम्पनी की भागीदारी– हैदराबाद के निजाम-उल-हक की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार हेतु नासिरजंग और मुजफ्फरजंग के मध्य संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में व्यापारिक लाभ की कामना से अंग्रेजों ने नासिरजंग और फ्रांसीसियों ने मुजफ्फरजंग का साथ दिया। अत: कहा जा सकता है कि उत्तराधिकार के संघर्ष में दोनों कम्पनियों का भाग लेना दोनों के बीच संघर्ष का मुख्य कारण था।

5. बंगाल में ब्रिटिश शासन की शुरुआत पर एक टिप्पणी कीजिए।

उ०– **बंगाल में ब्रिटिश शासन की शुरुआत–** प्लासी और बक्सर के युद्ध भारतीय इतिहास के निर्णायक युद्ध थे, जिसके परिणामस्वरूप बंगाल में ब्रिटिश राज्य की नींव पड़ी और भारतीय इतिहास में एक नए अध्याय का आरम्भ हुआ।

बंगाल एक समृद्धिशाली प्रान्त था। उस समय यह मुगलों के अधीन था। व्यापारिक दृष्टिकोण से बंगाल काफी अग्रसर था। अंग्रेजों ने सन् 1651 ई० में अपनी प्रथम व्यापारिक कोठी हुगली में स्थापित की। उस समय वहाँ का सूबेदार शाहजहाँ का पुत्र शाहशुजा था। उसकी स्वीकृति के बाद उन्होंने अपनी कोठियों का विस्तार कासिम बाजार व पटना तक कर लिया। मुगल सम्राट फर्रुखसियार ने 1717 ई० में अंग्रेजों को अत्यधिक सुविधाएँ दीं। उसने उन पर लगे सभी व्यापारिक कर हटा दिए, जिसका अंग्रेजों ने पूर्णरूप से दुरुपयोग किया। उन्होंने कम्पनी के साथ स्वयं का व्यापार भी बिना कर दिए करना शुरू कर दिया।

वस्तुत: भारत में अंग्रेजी राज का प्रभुत्व सर्वप्रथम बंगाल से ही शुरू हुआ। मुगलों द्वारा अंग्रेजों को दी गई छूट अन्तत: उन्हीं के साम्राज्य के पतन का कारण बन गई। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुर्शिदकुली खाँ को बंगाल का सूबेदार बनाया गया। वह एक ईमानदार व योग्य व्यक्ति था। उसके काल के दौरान बंगाल उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। उस समय बंगाल मुगल काल का सबसे समृद्धिशाली प्रान्त था। 1727 ई० में मुर्शिदकुली खाँ की मृत्यु हो गई और उसके दामाद शुजाउद्दीन मोहम्मद खान शुजाउद्दौला असदजंग को बंगाल व उड़ीसा का कार्यभार सौंप दिया गया। उसके काल में भी बंगाल ने काफी उन्नति की। शुजाउद्दौला की मृत्यु के उपरान्त 1739 ई० में उसके पुत्र सरफराज ने बंगाल, बिहार व उड़ीसा का राज्य सँभाला। उसने अलाउद्दौला हैदरजंग की उपाधि प्राप्त की।

1739 ई० में बिहार के नाजिम अलीवर्दी खाँ ने अलाउद्दौला की हत्या कर दी और बंगाल का सूबेदार बन बैठा। वह भी योग्य शासक था। उसके काल में मराठों ने बंगाल में छापे मारने शुरू कर दिए, जिससे मुक्ति पाने के लिए उसने मराठों से सन्धि कर ली। मराठों को उड़ीसा व 12 लाख रुपए उसने चौथ के रूप में दे दिए। तदुपरान्त बंगाल की आंतरिक स्थिति को सुधारकर वहाँ पर शान्ति स्थापित कर दी।

अलीवर्दी खाँ के कोई पुत्र न था। अत: उसने अपनी सबसे छोटी पुत्री के पुत्र सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। राज्यारोहण के समय वह 25 वर्ष का अनुभवशून्य युवक था तथा हठी एवं आलसी होने के कारण उसकी कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ गई थीं। **सर शफात अहमद खाँ** के अनुसार– ''सिराजुद्दौला अदूरदर्शी, हठी और दृढ़ था। उसको वृद्ध अलीवर्दी खाँ के लाड़-प्यार ने बिलकुल बिगाड़ दिया था। गद्दी पर बैठने पर भी उसमें कोई सुधार न हुआ। वह झूठा था, कायर था, नीच और कृतघ्न था। उसमें अपने पूर्वजों के कोई गुण न थे और अपने जो गुण थे उनको प्रयोग में लाने की शक्ति उसमें नहीं थी।'' वह भी अंग्रेजों की कुटिल नीति का उसी तरह शिकार बना जिस तरह दक्षिण के नवाब तथा कुछ अन्य राजा बने थे।

6. बक्सर के युद्ध का वर्णन कीजिए तथा उसके परिणामों की विवेचना कीजिए।

उ०– **बक्सर का युद्ध (22 अक्टूबर, 1764 ई०)–** अंग्रेजों ने अपदस्थ मीरकासिम के स्थान पर मीरजाफर को पुन: बंगाल का नवाब बना दिया। अंग्रेजों के इस रवैये से असन्तुष्ट होकर मीरकासिम ने मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय एवं नवाब शुजाउद्दौला से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध एक शक्तिशाली संघ का निर्माण किया। इनकी संयुक्त सेना में 40-50 हजार सैनिक थे। कम्पनी की सेना में 7027 सैनिक थे और उसका नेतृत्व मेजर मुनरो कर रहा था। इतिहास प्रसिद्ध यह लड़ाई बक्सर नामक स्थान पर 22 अक्टूबर, 1764 को हुई। इस युद्ध में अंग्रेज विजयी हुए। पराजित मीरकासिम भाग गया। शाहआलम ने अंग्रेजों की शरण ली। इस युद्ध में अंग्रेजों के 847 सैनिक मरे या हताहत हुए, जबकि तीनों की संयुक्त सेना के लगभग 2000 सैनिक मरे या हताहत हुए। परिणामस्वरूप पराजित मीरकासिम इलाहाबाद पहुँचा। वह 12 वर्षों तक भटकता रहा, अन्तत: 1777 ई० में दिल्ली के निकट उसकी मृत्यु हो गई।

बक्सर के युद्ध के कारण– मीरकासिम और अंग्रेजों के मध्य बक्सर युद्ध के निम्नलिखित कारण थे–

(i) **अंग्रेजों की बेईमानी–** यद्यपि मीरकासिम ने कम्पनी को यह आज्ञा दी थी कि कलकत्ता (कोलकाता) में ढाली गई मुद्राएँ तौल और धातु में नवाब की मुद्राओं के समान हों परन्तु कम्पनी घटिया मुद्राएँ ढालती रही तथा जब व्यापारियों ने उन मुद्राओं को लेने से इनकार किया तो कम्पनी की प्रार्थना पर नवाब ने व्यापारियों को दण्ड दिया। फलस्वरूप व्यापारी वर्ग भी कासिम से असन्तुष्ट हो गया।

(ii) **कम्पनी का असंयत व्यवहार–** मीरकासिम की इतनी ईमानदारी के व्यवहार से भी कम्पनी सन्तुष्ट नहीं थी क्योंकि वह तो नवाब को कठपुतली के समान नचाना चाहती थी। परन्तु मीरजाफर के विपरीत मीरकासिम स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति था, वह अंग्रेजों के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था।

(iii) **राजधानी परिवर्तन–** जब मीरकासिम ने देखा कि मुर्शिदाबाद में अंग्रेजों का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि वह उनके चंगुल से मुक्त नहीं हो सकता तो उसने अपनी राजधानी मुंगेर बदल ली, यद्यपि इस राजधानी परिवर्तन से अनेक अंग्रेज मीरकासिम से असन्तुष्ट हो गए तथा उसे पदच्युत करने का षड्यन्त्र रचने लगे।

(iv) **मीरजाफर से अंग्रेजों का समझौता–** अंग्रेजों ने पुन: मीरजाफर को गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया। मीरजाफर से गुप्त सन्धि की गई जिसके द्वारा मीरकासिम द्वारा दी गई सभी सुविधाएँ कायम रखी गईं परन्तु नवाब की सैनिक संख्या कम कर दी गई। कम्पनी की नमक के अतिरिक्त सभी वस्तुओं पर चुंगी माफ कर दी गई तथा भारतीयों के लिए 25 प्रतिशत चुंगी लगाने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त क्षति पूर्ति के लिए भी मीरजाफर ने वचन दिया।

(v) **दस्तक प्रथा का दुरुपयोग–** इस समय तक मीरकासिम तथा अंग्रेजों के सम्बन्ध बिलकुल बिगड़ चुके थे। इसका कारण

व्यापार से सम्बन्धित था। मुगल सम्राट द्वारा दी गई व्यापारिक सुविधाओं का अंग्रेज दुरुपयोग कर रहे थे। दस्तक लेकर सम्पूर्ण देश में अंग्रेज व्यापारी बिना चुंगी दिए व्यापार कर रहे थे तथा अनेक ऐसी वस्तुओं का व्यापार उन्होंने आरम्भ कर दिया था, जिसके लिए उन्हें आज्ञा प्राप्त नहीं थी।

(vi) भारतीयों के साथ अंग्रेजों का व्यवहार– भारतीय व्यापारियों के प्रति उनका व्यवहार अभद्रतापूर्ण था। उनसे बलपूर्वक माल खरीद लिया जाता था तथा उनसे माल पर चुंगी वसूल की जाती थी। कम्पनी मनमाने मूल्य पर कृषकों की खड़ी फसल तथा व्यापारियों का माल खरीद लेती थी, जिसके कारण भारतीय जनता बहुत दु:खी थी। मीरकासिम ने इस विषय पर कम्पनी को अनेक पत्र लिखे परन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिला।

बक्सर के युद्ध के परिणाम– राजनीतिक दृष्टि से बक्सर का युद्ध प्लासी से अधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक था और इसके दूरगामी परिणाम हुए—

(i) सैनिक महत्व– बक्सर के युद्ध ने प्लासी के युद्ध के द्वारा आरम्भ किए गए कार्य को पूर्ण किया। प्लासी के युद्ध में तो युद्ध का अभिनय-मात्र हुआ था तथा अंग्रेजों को विजय सैनिक योग्यता के कारण नहीं बल्कि कूटनीति के कारण मिली थी, परन्तु बक्सर युद्ध ने यह निश्चित कर दिया कि अंग्रेज युद्ध में भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

(ii) अंग्रेजों को दीवानी अधिकार– इस युद्ध के द्वारा बंगाल तथा बिहार अंग्रेजों के पूर्ण नियन्त्रण में आ गए तथा सम्राट शाहआलम द्वितीय ने बंगाल व बिहार की दीवानी उन्हें सौंप दी।

(iii) कम्पनी की राजनीतिक प्रतिष्ठा– अवध भी कम्पनी के प्रभाव में आ गया। इस विजय से कम्पनी का राजनीतिक महत्व स्थापित हो गया। अब वह मात्र व्यापारिक संस्था ही नहीं थी अपितु शासनकर्ता के रूप में उभरी।

(iv) मीरजाफर का पुन: नवाब बनना– बक्सर के युद्ध में विजय प्राप्त करके अंग्रेजों ने पुन: वृद्ध मीरजाफर को बंगाल का नवाब बना दिया। मीरजाफर ने अंग्रेजों को बिना चुंगी दिए तथा भारतीयों को 25 प्रतिशत चुंगी पर व्यापार की पुन: व्यवस्था कर दी। उसकी सेना 6 हजार सवार और 12 हजार पैदल निश्चित कर दी गई। युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में नवाब ने काफी धन कम्पनी को दिया तथा एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट भी अपने दरबार में रखना स्वीकार कर लिया। नवाब को कठपुतली बनाकर अंग्रेजों ने बंगाल की धन-सम्पदा को लूटना जारी रखा। मीरजाफर का कोष रिक्त था तथा वह असहाय नवाब अंग्रेजों के चंगुल में पूर्णतया फँसा हुआ था। उसका अन्तिम समय अत्यन्त दु:खपूर्ण था। अन्त में 5 जनवरी, 1765 ई० को मृत्यु ने ही उसे इन संकटों से मुक्त किया।

7. बंगाल दोहरा-शासन (द्वैध-शासन) कब लागू हुआ? उसके लाभ व हानियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– **बंगाल में दोहरा-शासन (द्वैध-शासन)–** 1765 ई० में लॉर्ड क्लाइव जब दूसरी बार बंगाल का गवर्नर बनकर आया तो उसने बंगाल में 'दोहरे अथवा द्वैध शासन' की स्थापना की। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत कम्पनी ने राजस्व सम्बन्धी सभी कार्य अपने हाथ में ले लिए और प्रशासनिक कार्य नवाब के हाथों में रहने दिए। क्लाइव द्वारा बंगाल में प्रशासनिक कार्यों के इस तरह विभाजित करने की प्रणाली को इतिहास में 'दोहरे अथवा द्वैध शासन' प्रणाली के नाम से जाना जाता है। बंगाल में यह प्रणाली 1765 से 1772 ई० तक लागू रही। इस प्रणाली से आरम्भ में अनेक लाभ हुए किन्तु इस प्रणाली में अनेक दोष विद्यमान थे। अत: 1772 ई० में वारेन हेस्टिंग्स ने इसे समाप्त कर दिया।

दोहरे-शासन से लाभ

(i) कम्पनी ने बिना उत्तरदायित्व लिए बंगाल पर अंग्रेजी शिकंजा कस दिया, किन्तु प्रशासन का दायित्व नवाब पर डाल दिया। उपनायबों के माध्यम से राजस्व कम्पनी के कोष में जमा होता रहा।

(ii) कम्पनी की आर्थिक व सैनिक स्थिति सुदृढ़ हो गई।

(iii) फ्रांसीसियों व डचों की ईर्ष्या से कम्पनी बच गई व ब्रिटिश संसद का हस्तक्षेप भी नहीं बढ़ सका।

(iv) क्लाइव ने बंगाल का प्रशासन अपने हाथों में न लेकर कम्पनी को संभावित खतरे से बचा लिया।

(v) कम्पनी को लाभ की स्थिति में रखने हेतु उसे केवल व्यापारिक कम्पनी बनाए रखा।

(vi) दोहरी-शासन प्रणाली से भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव और अधिक मजबूत हो गई। शासन सत्ता की वास्तविक बागडोर अब अंग्रेजों के हाथ में आ गई और नवाब अब नाममात्र का शासक रह गया।

दोहरे-शासन से हानियाँ

(i) दोहरे शासन से न्याय-व्यवस्था खोखली हो गई, नवाब तो न्यायाधीशों को समय पर वेतन भी न दे सका। अत: गुलाम हुसैन के अनुसार दोहरे शासन में न्यायाधीशों व राजकर्मचारियों ने न्याय के बहाने अपार धन कमाया।

(ii) भू-राजस्व में वृद्धि के साथ-साथ भूमि एक वर्ष के ठेके पर दी जाने लगी। भूमि की उर्वरता की उपेक्षा से भूमि अनुपजाऊ हो गई और किसान भूखों मरने लगे।

इकाई-4

8

अंग्रेजी कम्पनी का विस्तार– साम्राज्यवादी नीति
(Expansion of British Company : Imperialistic Policy)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1744 ई० 2. 1773 ई० 3. 1774 ई० 4. 1780 ई० 5. 1784 ई०
6. 1786 ई० 7. 1790-92 ई० 8. 1798 ई० 9. 1828 ई० 10. 1835 ई०
11. 1848 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 164 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 164 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 165 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 165 व 166 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लॉर्ड कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– कार्नवालिस ने भारत आकर यहाँ के कृषकों की स्थिति का आकलन किया तथा स्थायी बन्दोबस्त की स्थापना की। यह स्थायी बन्दोबस्त ब्रिटिश राज्य के अन्त तक रहा। इस प्रबन्ध के द्वारा भारत की भूमि जमींदारों की मान ली गई तथा उन्हें कृषकों से एक निश्चित धनराशि प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। वह धनराशि कृषकों को भी मालूम थी तथा यदि कोई जमींदार कृषक से अधिक धन वसूल करना चाहता तो कृषक को अदालत में जाकर न्याय प्राप्त करने का अधिकार था। जमींदारों को एक निश्चित धनराशि प्रतिवर्ष कर के रूप में सरकार को देनी पड़ती थी। इस प्रकार सरकार की आय निश्चित एवं स्थायी हो गई। उसमें कमी अथवा वृद्धि नहीं की जा सकती थी। जमींदारों को अपनी भूमि विक्रय करने का भी अधिकार प्रदान किया गया। अत: जब तक जमींदार निश्चित लगान को देते रहेंगे उनकी भूमि को जब्त नहीं किया जाएगा। जमींदार किसान को पट्टा देंगे जिसमें उसके लगान की मात्रा लिखी होगी तथा उससे अधिक धन वसूल करने का अधिकार जमींदार को नहीं होगा।

2. लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधि क्या थी? इसके गुणों का वर्णन कीजिए।

उ०– कम्पनी को सर्वोच्च शक्ति बनाने के उद्देश्य से लॉर्ड वेलेजली ने एक नई नीति को प्रतिपादित किया जो सहायक संधि के नाम से जानी जाती है। सहायक संधि की प्रमुख शर्तें निम्न प्रकार थीं—

(i) सहायक सन्धि स्वीकार करने वाला देशी राज्य अपनी विदेश-नीति को कम्पनी के सुपुर्द कर देगा।
(ii) वह बिना कम्पनी की अनुमति के किसी अन्य राज्य से युद्ध, सन्धि या मैत्री नहीं कर सकेगा।
(iii) इस सन्धि को स्वीकार करने वाले देशी राजाओं के यहाँ एक अंग्रेजी सेना रहती थी, जिसका व्यय राजा को उठाना होता था।
(iv) देशी राजाओं को अपने दरबार में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना होता था।
(v) यदि सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले देशी राजाओं के मध्य झगड़ा हो जाता है, तो अंग्रेज मध्यस्थता कर जो भी निर्णय देंगे वह देशी राजाओं को स्वीकार करना पड़ेगा।
(vi) कम्पनी उपर्युक्त शर्तों के बदले सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य की बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा की गारन्टी लेती थी तथा देशी शासकों को आश्वासन देती थी कि वह उन राज्यों के आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगी। इस प्रकार सहायक सन्धि द्वारा राज्यों की विदेश नीति पर कम्पनी का सीधा नियन्त्रण स्थापित हो गया। यह वेलेजली की साम्राज्यवादी पिपासा को शान्त करने का अचूक अस्त्र बन गया।

सहायक सन्धि के गुण– सहायक सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई। उन्हें इस सन्धि से निम्नलिखित लाभ हुए—

(i) कम्पनी के साधनों में वृद्धि
(ii) कम्पनी के सैन्य व्यय में कमी
(iii) कम्पनी के राज्य की बाह्य आक्रमण से सुरक्षा
(iv) फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त
(v) कम्पनी के प्रदेशों में शान्ति
(vi) वेलेजली के साम्राज्यवादी उद्देश्यों की पूर्ति

3. पिण्डारियों के दमन का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– लॉर्ड हेस्टिंग्स के समय में पिण्डारियों ने भीषण उपद्रव मचा रखा था। कम्पनी के अधीन क्षेत्रों में पिण्डारियों की लूटमार से अंग्रेज चिन्तित हो उठे। अत: गर्वनर जनरल लॉर्ड हेस्टिंग्स ने पिण्डारियों को समूल नष्ट करने का निश्चय किया और एक विशाल सेना तैयार की। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभक्तकर पिण्डारियों को चारों ओर से घेर लिया। असंख्य पिण्डारियों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा अनेक प्राणरक्षा हेतु पलायन कर गए। उनके सभी दल बिखर गए। पिण्डारियों के नेता अमीर खाँ ने अधीनता स्वीकार कर ली तथा करीम खाँ ने गोरखपुर जिले में छोटी सी जागीर लेकर अपने आप को अलग कर लिया। वासिल मुहम्मद को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया गया, जहाँ उसने आत्महत्या कर ली। उनके सबसे वीर नेता चीतू ने जंगल में शरण ली और वहीं पर उसे चीते ने खा लिया। बचे-खुचे लोगों ने कृषि-पेशा अपना लिया। इस प्रकार लॉर्ड हेस्टिंग्स ने पिण्डारियों का पूर्णतया दमन कर दिया।

4. लॉर्ड बैंटिंग के चार सामाजिक सुधार लिखिए।

उ०– लॉर्ड बैंटिंग के चार सामाजिक सुधार निम्नलिखित हैं—

(i) शिक्षा-सम्बन्धी सुधार (ii) सती प्रथा का अन्त (iii) नर-बलि प्रथा का अन्त (iv) दास प्रथा का अन्त।

5. रणजीत सिंह कौन था? उसके चरित्र के कोई दो गुण बताइए।

उ०– रणजीत सिंह का जन्म 2 नवम्बर, 1780 में एक जाट परिवार में हुआ था। इनके पिता महसिंह सुकरचकिया मिस्ल के सरदार थे। उनकी माँ का नाम राजकौर था, जो जींद के शासक गणपति सिंह की पुत्री थी। छोटी-सी उम्र में चेचक की वजह से महाराजा रणजीत सिंह की एक आँख की रोशनी जाती रही। 1792 ई० में जब रणजीत सिंह की आयु केवल 12 वर्ष थी, गुजरात में उनके पिता की मृत्यु हो गई, अत: उनकी माता राजकौर ने उन्हें सिंहासन पर बैठा दिया और स्वयं उनकी संरक्षिका बन गई। 12 अप्रैल, 1801 को रणजीत ने महाराजा की उपाधि ग्रहण की। गुरु नानक के एक वंशज ने उनकी ताजपोशी सम्पन्न कराई। उन्होंने लाहौर को अपनी राजधानी बनाया और सन् 1802 में अमृतसर की ओर रुख किया। कुशल कूटनीतिज्ञ एवं वीरता रणजीत सिंह के चरित्र के दो गुण थे।

6. लॉर्ड डलहौजी ने यातायात तथा संचार-व्यवस्था में क्या सुधार किए?

उ०– लॉर्ड डलहौजी ने भारत में रेल, सड़क और तार विभाग को अत्यन्त महत्व दिया। भारत में रेलवे व्यवस्था का प्रारम्भ करने का श्रेय लॉर्ड डलहौजी को ही प्राप्त है। उसने ग्रांड ट्रंक रोड का पुनर्निमाण कराया तथा रेल एवं डाक व तार की व्यवस्था की। 1853 ई० में बम्बई से थाणे तक पहली रेलवे लाइन बनी। लॉर्ड डलहौजी ने सम्पूर्ण भारत के लिए रेलवे लाइन की योजना बनाई जो बाद में सम्पन्न हो सकी। तार लाइन का निर्माण भी सर्वप्रथम लॉर्ड डलहौजी के काल में हुआ। 1853 ई० से 1856 ई० तक विस्तृत क्षेत्र में तार लाइन बिछा दी गई, जिससे कलकत्ता (कोलकाता) और पेशावर तथा बम्बई (मुम्बई) और मद्रास (चेन्नई) के मध्य निकट सम्पर्क हो सका।

7. टीपू सुल्तान का पतन कैसे हुआ?

उ०– तृतीय मैसूर युद्ध में अंग्रेजों ने टीपू सुल्तान की शक्ति पर घातक प्रहार किए। सन् 1799 ई० में लॉर्ड वेलेजली ने टीपू सुल्तान के राज्य पर चारों ओर से आक्रमण कर दिया। जनरल हैरिस ने मलावल्ली के स्थान पर टीपू को पराजित किया। सदासीर के युद्ध में भी टीपू पराजित हुआ। टीपू ने भाग कर अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम में शरण ली। अंग्रेजी सेना ने दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। टीपू अत्यन्त वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ किले के फाटक पर ही वीरगति को प्राप्त हो गया। इस प्रकार 4 मई, 1799 ई० को श्रीरंगपट्टम का पतन हो गया।

8. लॉर्ड डलहौजी की राज्य हड़प नीति क्या थी? संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उ०– जिस प्रकार वेलेजली ने 'सहायक संधि' द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार किया था, ठीक उसी प्रकार लॉर्ड डलहौजी ने राज्य हड़प नीति द्वारा भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार किया। लॉर्ड डलहौजी की वास्तविक प्रसिद्धि का कारण उसकी साम्राज्यवादी नीति थी। साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण में उसने तीन उपाय किए। पहला युद्ध, दूसरा कुशासन एवं तीसरा राज्य हड़पनीति या गोद निषेद नीति। उस समय अनेक ऐसे राज्य थे, जिनके शासक सन्तान हीन थे। डलहौजी ने दत्तक पुत्र को गोद लेने के अधिकार को छीनकर ऐसे सन्तान हीन शासकों के राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. ''क्लाइव को ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है।'' इस कथन के आलोक में क्लाइव की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– रॉबर्ट क्लाइव कम्पनी में एक सामान्य लिपिक से सेवा प्रारम्भ करके गर्वनर के पद तक पहुँचने में सफल रहा। वह निर्भीक सेनानायक था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी जो एक व्यापारिक संस्था मात्र थी, उसे क्लाइव ने राजनीतिक संस्था में परिवर्तित करके ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का सूत्रपात किया। अंग्रेजों ने उसके कार्यों की बड़ी प्रशंसा की है। लॉर्ड कर्जन ने लिखा है, ''क्लाइव, अंग्रेज जाति में महान् आत्मा का व्यक्ति था। वह उन व्यक्तियों में से था जो मानव के भाग्य निर्माण के लिए इस विश्व में अवतरित होते हैं।'' **विंसेंट स्मिथ** ने भी लिखा है, ''क्लाइव ने जिस योग्यता और दृढ़ता का परिचय भारत में ब्रिटिश राज्य की

नींव डालने में दिया, उसके लिए वह ब्रिटिश जनता के मध्य सदैव के लिए याद किया जाएगा।'' अपनी योग्यता वह अर्काट के घेरे एवं चाँदा साहब की विजय के दौरान दिखा चुका था। मीरजाफर के साथ षड्यन्त्र रचकर बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में परास्त कर बंगाल में कम्पनी की राजनीतिक प्रभुता स्थापित करने वाला क्लाइव ही था।

क्लाइव का मूल्यांकन करते हुए **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** ने लिखा है— ''उसने नवाब को नाममात्र का शासक बना दिया, उसे भलाई करने के साधनों तथा शक्ति से वंचित कर दिया और स्वयं उत्तरदायित्व लेने से दूर भागा। उसकी योजनाओं में न कोई नई बात थी और न मौलिकता थी, उसने डूप्ले तथा बुसी का पदानुगमन किया था और उसकी सफलता अनुकूल परिस्थितियों तथा विश्वासघात के कारण थी, न कि उसकी प्रतिभा के कारण।''

हालाँकि क्लाइव का यह मूल्यांकन सर्वथा उचित प्रतीत होता है और भारतीयों के दृष्टिकोण से उसके कृत्य अक्षम्य हैं तथापि उसने अपने देश का महान् हित किया। उसके विरोधियों ने भी अन्त में यह बात स्वीकार कर ली कि उसने जो कुछ भी छल-कपट, विश्वासघात तथा बेईमानी की, वह अपने राष्ट्र के हित के लिए की। सर्वप्रथम दक्षिणी भारत में कर्नाटक के युद्धों में विजय प्राप्त कराने में उसका महत्वपूर्ण हाथ रहा तथा बाद में प्लासी के युद्ध द्वारा उसने बंगाल में जिस क्रान्ति का सम्पादन किया, उससे ब्रिटिश साम्राज्य की भारत में स्थापना सम्भव हो सकी। परन्तु इन सफलताओं का कारण उसका युद्धकौशल न होकर उसकी कूटनीति ही है। **चार्ल्स विल्सन** ने ठीक ही कहा है— ''क्लाइव अपनी योजनाओं में योग्यतापूर्ण संयोजन की भी उपेक्षा करता जान पड़ता है।'' बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी मुगल सम्राट से प्राप्त करके उसने कम्पनी का हित किया। प्लासी का युद्ध, जो भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का बीजारोपण करता है, उसी के द्वारा सम्पन्न किया गया। यद्यपि कुछ इतिहासकार उसे ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक नहीं मानते। इस सम्बन्ध में **मार्विन डेविस** का कथन है— ''जिस प्रकार बाबर नहीं बल्कि अकबर मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाला था, उसी प्रकार भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित करना क्लाइव का नहीं बल्कि उसके उत्तराधिकारियों का कार्य था। उसकी प्रतिभा इतनी सीमित थी कि इतने बड़े कार्य को वह कर ही नहीं सकता था। उसमें इतनी संवेदना, कल्पना-शक्ति, ज्ञान, संयम, धैर्य और अध्यवसाय नहीं थे कि वह एक नई और महान् व्यवस्था की स्थापना कर सकता।'' यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि क्लाइव के उत्तराधिकारियों और विशेषकर **वारेन हेस्टिंग्स** को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव सुदृढ़ करने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ा किन्तु इससे क्लाइव के कार्य के महत्व को कम नहीं किया जा सकता।

2. वारेन हेस्टिंग्स की प्रारम्भिक कठिनाईयों व सुधारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उ०- **(i) हेस्टिंग्स की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ**– वारेन हेस्टिंग्स को 1772 ई० में कर्टियर के पश्चात् बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया था, उस समय भारत में अंग्रेजी कम्पनी की स्थिति अच्छी नहीं थी। बंगाल में अव्यवस्था व्याप्त थी। संक्षेप में उसके सम्मुख निम्नलिखित प्रमुख कठिनाइयाँ थीं—

(क) **बंगाल में अराजकता**– बंगाल में उस समय चारों ओर अराजकता का साम्राज्य व्याप्त था। अंग्रेजी कम्पनी और बंगाल के नवाब आपस में लड़ते रहते थे। दुर्भाग्य से इसी समय बंगाल में एक अकाल पड़ा, जिससे बंगाल की आन्तरिक समस्या और बढ़ गई।

(ख) **द्वैध शासन**– क्लाइव द्वारा लागू किए गए द्वैध शासन में अनेक दोष विद्यमान थे, जिससे बंगाल की दशा दयनीय हो गई थी। बंगाल की जनता अंग्रेजों को घृणा की दृष्टि से देखने लग गई थी। ऐसी स्थिति में कम्पनी का बंगाल में प्रभुत्व कायम रखना बहुत मुश्किल था।

(ग) **रिक्त कोष**– कम्पनी के कर्मचारियों की अकर्मण्यता और भ्रष्टाचार से कम्पनी का कोष खाली हो गया था। ऐसी विकट परिस्थिति में बंगाल की व्यवस्था को सम्भालना मुश्किल था।

(घ) **विरोधियों द्वारा उत्पन्न समस्याएँ**– अंग्रेजों के विरोधी मराठों ने अपनी शक्ति को पुन: संगठित कर उत्तर तथा दक्षिण में अपना प्रभुत्व जमा लिया था। शाहआलम भी मराठों के संरक्षण में चला गया। इधर हैदरअली अंग्रेजों के लिए सिरदर्द बना हुआ था। निजाम भी अंग्रेजों से रुष्ट था।

(ii) वारेन हेस्टिंग्स के सुधार– वारेन हेस्टिंग्स प्रारम्भ में अनेक आन्तरिक एवं बाह्य कठिनाइयों से घिरा हुआ था, भारत को सुदृढ़ करने के लिए अधिक आवश्यकता आन्तरिक सुधारों की थी। हेस्टिंग्स ने 1772 से 1774 ई० तक कम्पनी की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक सुधार किए। उसके द्वारा किए गए सुधार निम्नलिखित हैं—

(क) **लगान सम्बन्धी सुधार**– वारेन हेस्टिंग्स ने पंचवर्षीय प्रबन्ध स्थापित किया। भूमि की बोली लगाई जाती थी। जो व्यक्ति सबसे अधिक लगान देने को तत्पर होता, उसे पाँच वर्ष के लिए भूमि ठेके पर दे दी जाती थी। यद्यपि इस व्यवस्था का कृषकों पर बुरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि भूमिपति बलपूर्वक किसानों से धन वसूल करते थे, परन्तु कम्पनी की आय में इस व्यवस्था से वृद्धि हुई। लगान वसूल करने के लिए प्रत्येक जिले में एक कलेक्टर की नियुक्ति की गई, जिसकी सहायता के लिए एक भारतीय दीवान होता था। हेस्टिंग्स ने अनेक निरर्थक करों को हटा दिया।

(ख) **आर्थिक सुधार**– जिस समय वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर बना था, कम्पनी का राजकोष रिक्त था। अत: आर्थिक सुधारों की नितान्त आवश्यकता थी। उसने बंगाल के नवाब की पेंशन घटाकर 16 लाख रुपए कर दी तथा दिल्ली के

बादशाह शाहआलम द्वितीय की पेंशन बन्द कर दी, क्योंकि वह मराठों के संरक्षण में चला गया था। शाहआलम द्वितीय से कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले लेकर अवध के नवाब शुजाउद्दौला को 50 लाख रुपए में बेच दिए गए। नवाब शुजाउद्दौला से उसने एक सन्धि की तथा बनारस का जिला और 40 लाख रुपए के बदले में उसे सैनिक सहायता देने का वचन दिया। इन सुधारों से भी कम्पनी की आर्थिक स्थिति पूर्णतया तो दृढ़ नहीं हो सकी परन्तु हेस्टिंग्स के आर्थिक सुधार सराहनीय थे।

(ग) **शासन सम्बन्धी सुधार–** वारेन हेस्टिंग्स ने सर्वप्रथम क्लाइव द्वारा स्थापित द्वैध शासन व्यवस्था का अन्त किया। मुहम्मद रजा खाँ तथा सिताबराय पर अभियोग चलाकर उन्हें पदच्युत कर दिया गया तथा द्वैध शासन का अन्त कर दिया गया। बंगाल के नवाब से शासन सम्बन्धी अधिकार छीनकर उसे पेंशन दे दी गई। हेस्टिंग्स ने कलकत्ता को केन्द्र बनाया तथा राजकोष मुर्शिदाबाद से हटाकर कलकत्ता ले गया। भारतीय कलेक्टरों के स्थान पर उसने अंग्रेज कलेक्टर नियुक्त किए।

(घ) **न्याय सम्बन्धी सुधार–** न्याय के क्षेत्र में हेस्टिंग्स ने महत्वपूर्ण सुधार किए। प्रत्येक जिले में एक फौजदारी और एक दीवानी अदालत स्थापित की गई तथा दोनों अदालतों के क्षेत्र निर्धारित कर दिए गए। अपील की दो उच्च अदालतें सदर निजामत अदालत तथा सदर दीवानी अदालत कलकत्ता में स्थापित की गईं। न्यायाधीशों को नकद वेतन देने की व्यवस्था की गई, जिससे वे ईमानदारी से कार्य कर सकें। प्रत्येक जिले में एक फौजदार की नियुक्ति की गई, जिसका कार्य अपराधियों को पकड़कर न्यायालय के समक्ष उपस्थित करना था। हिन्दू-मुस्लिम कानूनों को संकलित करने का भी वारेन हेस्टिंग्स ने प्रयास किया। फौजदारी अदालतों में भारतीय न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई, जो देश के नियमों से परिचित होने के कारण उत्तम ढंग से न्याय कर सकते थे।

(ङ) **सार्वजनिक सुधार–** भारतीयों की दशा को सुधारने के लिए भी हेस्टिंग्स ने अथक प्रयास किया–

(अ) **द्वैध शासन व्यवस्था का अन्त–** द्वैध शासन का अन्त करके उसने बंगाल के निवासियों पर महान् उपकार किया।

(ब) **डाकुओं का दमन–** इस समय राजनीतिक अव्यवस्था के कारण देश में चारों ओर डाकुओं का बाहुल्य हो गया था। हेस्टिंग्स ने डाकुओं का निर्दयतापूर्वक दमन कराया। अनेक डाकुओं को फाँसी पर लटका दिया गया।

(स) **संन्यासियों का रूप धारण किए डाकुओं का विनाश–** इस समय देश में साधुओं का वेश धारण कर डाकुओं ने पर्यटन का बहाना बनाकर लूटमार कर अराजकता फैला रखी थी। हेस्टिंग्स ने उनका भी कठोरतापूर्वक दमन कराया।

(द) **पुलिस का संगठन–** पुलिस अफसरों के अधिकार बढ़ा दिए गए तथा प्रत्येक जिले में एक पुलिस अफसर की नियुक्ति की गई, जिस पर जिले की सुव्यवस्था का दायित्व होता था।

(च) **व्यापारिक क्षेत्र में सुधार–** कम्पनी का मुख्य उद्देश्य भारत में व्यापार की उन्नति कर स्वयं को सुदृढ़ बनाना था। व्यापारिक दृष्टिकोण से कम्पनी की स्थिति खराब थी। अत: हेस्टिंग्स ने दस्तक प्रथा का अन्त कर कर्मचारियों के निजी व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हेस्टिंग्स ने जमींदारों द्वारा स्थापित समस्त चुंगी चौकियों को समाप्त कर केवल कलकत्ता, हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद और पटना में चुंगी चौकियाँ स्थापित की। सभी सामान चाहे वह यूरोपियन हो या भारतीय समान दर से चुंगी की व्यवस्था की गई। इन सुधारों से व्यापार को प्रोत्साहन मिला और आय में वृद्धि हुई। कलकत्ता में व्यापारियों को आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए एक बैंक की स्थापना की। तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हेस्टिंग्स ने तिब्बत में एक व्यापारिक मिशन भेजा। उसने कलकत्ता में टकसाल की भी स्थापना की।

3. लॉर्ड कार्नवालिस के सुधारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उ०– लॉर्ड कार्नवालिस के सुधारों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं–

(i) भूमि का स्थायी बन्दोबस्त
(ii) न्याय-सम्बन्धी सुधार
(iii) व्यापारिक सुधार
(iv) शासन-सम्बन्धी सुधार

(i) भूमि का स्थायी बन्दोबस्त– अब तक कम्पनी वार्षिक ठेके के आधार पर लगान वसूल करती थी। सबसे ऊँची बोली बोलने वाले को ही जमीन दी जाती थी। इससे कम्पनी और किसान दोनों को ही परेशानी हो रही थी। अत: कार्नवालिस ने 1790 ई० में यह योजना पेश की कि जमींदारों को भू-स्वामी स्वीकर कर निश्चित लगान के बदले निश्चित अविध के लिए उन्हें जमीन दे दी जाए। संचालकों की अनुमति से 1790 ई० में बंगाल के जमीदारों के साथ 'दससाला' प्रबन्ध स्थापित किया गया। बाद में 1793 ई० में बंगाल और बिहार में इस व्यवस्था को चिर-स्थायी व्यवस्था या स्थायी बन्दोबस्त के नाम से घोषित किया गया। इस व्यवस्था के अनुसार, जमींदार भू-स्वामी बन गए। किसानों की स्थिति रैयतमात्र ही रह गई। जमींदारों

को निश्चित अवधि के भीतर वसूल किए गए लगान का 10/11 हिस्सा कम्पनी को देना था और 1/11 भाग अपने खर्च के लिए रखना था। लगान की राशि निश्चित कर दी गई। इस व्यवस्था के अन्तर्गत हानि और लाभ दोनों ही विद्यमान थे।

लाभ– इस बन्दोबस्त से अंग्रेजों ने जमींदारों को भूमि का स्वामी बना दिया। इससे दो लाभ हुए-प्रथम, राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजों को भारत में एक ऐसा वर्ग प्राप्त हो गया, जो प्रत्येक स्थिति में अंग्रेजों का साथ देने को तैयार था। द्वितीय, इससे आर्थिक दृष्टि से लाभ हुआ। जमींदारों ने कृषि में स्थायी रुचि लेना आरम्भ किया क्योंकि कृषि के उत्पादन में वृद्धि होने से अधिकांश लाभ उन्हीं का था। सरकार को उन्हें निश्चित लगान देना था, जबकि उत्पादन में वृद्धि होने से वे स्वयं किसानों से अधिक लगान ले सकते थे। इस कारण कृषि की उन्नति से धीरे-धीरे बंगाल और बिहार पुन: धनवान सूबे बन गए। इस व्यवस्था से कम्पनी की आय भी निश्चित हो गई और उसे योजनाएँ लागू करने में आसानी हुई। इस प्रकार अब कम्पनी के कर्मचारियों को लगान की व्यवस्था करने से मुक्ति मिल गई और वे अधिक स्वतन्त्रता से न्याय, शासन और कम्पनी के व्यापार की ओर ध्यान दे सकते थे।

हानि– इस बन्दोबस्त में किसानों के हित का कोई ध्यान नहीं रखा गया था। उनका भूमि पर कोई अधिकार न रहा और लगान के विषय में वे पूर्णत: जमींदारों की दया पर छोड़ दिए गए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत बिचौलियों की संख्या में वृद्धि हुई और किसानों का शोषण बढ़ा। इसी कारण इस व्यवस्था के अन्तर्गत उच्च-स्तर पर सामन्तवादी शोषण और निम्न-स्तर पर दासता की भावना को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

(ii) न्याय-सम्बन्धी सुधार– न्याय के क्षेत्र में कार्नवालिस ने अनेक महत्वपूर्ण सुधार किए—

(क) कलेक्टरों को मजिस्ट्रेटों के अधिकार– कार्नवालिस ने 1787 ई० में उन जिलों को छोड़कर, जहाँ पर उच्च न्यायालय स्थापित थे, न्याय के अधिकार पुन: कलेक्टरों को प्रदान कर दिए तथा कुछ फौजदारी मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार भी कलेक्टरों को दिया गया। फौजदारी के क्षेत्र में भी कार्नवालिस ने सुधार किए। फौजदारी की मुख्य अदालत मुर्शिदाबाद के स्थान पर पुन: कलकत्ता में स्थापित की गई, जिसके अध्यक्ष गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल के सदस्य होते थे।

(ख) जिला अदालतों का अन्त– कार्नवालिस ने जिले की अदालतों को समाप्त करके कलकत्ता, ढाका, पटना तथा मुर्शिदाबाद में प्रान्तीय अदालतों की स्थापना करवाई। 5,000 रुपए से अधिक मूल्य के मामलों की अपील सपरिषद् सम्राट के यहाँ ही हो सकती थी।

(ग) कार्नवालिस कोडा– 1793 ई० में कार्नवालिस कोड के अनुसार जजों की नियुक्ति की गई तथा उन्हें न्याय सम्बन्धी अधिकार प्रदान किए गए। फौजदारी मुकदमों में मुस्लिम कानून प्रयोग में लाया गया। अंग-भंग के स्थान पर कठोर कैद की सजा देने का प्रावधान किया गया।

(घ) निचली (लोअर) अदालतों की स्थापना– चार जिलों की अदालतों के अतिरिक्त निचली अदालतों की भी स्थापना की गई, जिनके अधिकारी मुंसिफ होते थे। मुंसिफ अदालत को 50 रुपए तक के मुकदमे सुनने का अधिकार था।

(ङ) दौरा अदालतों का पुनर्गठन– दौरा करने वाली अदालतों का पुनर्गठन कराया गया तथा उनमें तीन न्यायाधीश नियुक्त किए गए, जो जिलाधीश के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनते थे।

(च) दरोगाओं की नियुक्ति– देश की शान्ति एवं सुरक्षा के लिए प्रत्येक जिले में कई दरोगाओं की नियुक्ति की गई, जो मजिस्ट्रेट के अधीन होते थे।

(iii) व्यापारिक सुधार– कार्नवालिस ने व्यापार के क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार किए—

(क) कार्नवालिस ने कम्पनी की आय बढ़ाने के लिए व्यापार बोर्ड का पुनर्गठन किया। बोर्ड के सदस्यों की संख्या 12 से घटाकर 5 कर दी।

(ख) प्रत्येक व्यापारी केन्द्र पर एक-एक रेजीडेण्ट की नियुक्ति की गई, जिसका मुख्य कार्य यह देखना था कि कम्पनी का व्यापार उचित ढंग से हो रहा है या नहीं। ठेकेदारों से माल खरीदने की व्यवस्था समाप्त कर दी गई तथा रेजीडेण्ट उत्पादकों से सीधा सम्पर्क स्थापित कर माल खरीदने लगे।

(ग) जुलाहों से माल खरीदने के सम्बन्ध में यह नियम बना दिया गया कि कम्पनी जितना माल खरीदना चाहेगी, उसका पूरा मूल्य पेशगी के तौर पर दिया जाएगा तथा जुलाहे उतना ही माल देने हेतु बाध्य होंगे, जितना रुपया उन्होंने पेशगी लिया है।

(घ) भारतीय कारीगरों और उत्पादकों की सुरक्षा के लिए भी 1778 ई० में विभिन्न कानून बनाए गए।

(iv) शासन-सम्बन्धी सुधार– कम्पनी में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कार्नवालिस ने शासन-सम्बन्धी अनेक सुधार किए—

(क) योग्यता के आधार पर नियुक्ति– कम्पनी के कर्मचारी धन कमाने में लगे रहते थे तथा कर्त्तव्य की उपेक्षा करते थे। इस समय बनारस के रेजीडेण्ट का प्रतिमास वेतन तत्कालीन सिक्के की दर के आधार पर 1,000 रुपए अथवा

1,350 रुपए वार्षिक होता था, जो कि इस पद के अनुरूप काफी अच्छा वेतन था, परन्तु फिर भी लॉर्ड कार्नवालिस के साक्ष्य के आधार पर वह परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से व्यक्तिगत व्यापार तथा भ्रष्टाचार द्वारा एक मोटी धनराशि 40,000 रुपए वार्षिक अपने वेतन के अतिरिक्त कमाता था। कार्नवालिस ने कलेक्टरों तथा जजों के भ्रष्ट होने पर खेद प्रकट किया और इन दोषों को दूर करने के लिए कम्पनी में सिफारिशों के स्थान पर योग्यता के आधार पर कर्मचारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई।

(ख) उच्च सरकारी पदों से भारतीय वंचित– कार्नवालिस को भारतीयों पर विश्वास नहीं था तथा उसने 500 पौण्ड वार्षिक से अधिक वेतन वाले पदों पर यूरोपियन्स को रखना आरम्भ किया। इस प्रकार उच्च पदों के द्वार भारतीयों के लिए बन्द कर दिए गए।

(ग) वेतन में वृद्धि– रिश्वतखोरी तथा भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए उसने कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी, जिससे वे लोग ईमानदारी से कार्य कर सकें।

4. तृतीय मैसूर युद्ध के कारण व घटनाओं पर एक टिप्पणी लिखिए। श्रीरंगपट्टम की संधि की शर्तें लिखिए।

उ०– तृतीय मैसूर युद्ध के कारण–

(i) टीपू ने विभिन्न आन्तरिक सुधारों द्वारा अपनी स्थिति को मजबूत करने की कोशिश की, जिसके कारण अंग्रेजों, निजाम एवं मराठों को भय उत्पन्न हो गया।

(ii) 1787 ई० में फ्रांस एवं टर्की में टीपू द्वारा अपने दूत भेजकर उनकी मदद प्राप्त करने की कोशिश की गई, जिससे अंग्रेजों में शंका उत्पन्न हो गई।

(iii) मंगलौर सन्धि टीपू व अंग्रेजों के मध्य एक अस्थायी युद्ध-विराम था, क्योंकि दोनों की महत्वाकांक्षाओं व स्वार्थों में टकराव था। अत: दोनों गुप्त रूप से एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध की तैयारी कर रहे थे।

(iv) अंग्रेजों द्वारा टीपू पर यह आरोप लगाया गया कि उसने अंग्रेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों से गुप्त समझौता किया है।

(v) कार्नवालिस और टीपू के बीच संघर्ष के कारणों के सम्बन्ध में इतिहासकारों के दो मत हैं। कुछ का मानना है कि कम्पनी ने भारत में साम्राज्य-विस्तार की नीति के कारण टीपू से संघर्ष किया। कुछ का कहना है कि टीपू ने स्वयं ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी थीं, जिससे संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया था।

(vi) टीपू ने ट्रावनकोर के हिन्दू शासक पर आक्रमण कर दिया, जिसको अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त था। टीपू की इस कार्यवाही पर अंग्रेजों ने युद्ध की घोषणा कर दी।

घटनाएँ– 29 दिसम्बर, 1789 ई० को टीपू ने ट्रावनकोर के राजा पर आक्रमण कर दिया। कार्नवालिस ने कुछ प्रदेशों का लालच देकर 1 जून, 1790 ई० को मराठों व 4 जुलाई, 1790 ई० को निजाम से सन्धि कर ली। इस प्रकार कार्नवालिस ने चतुरता से दोनों शक्तियों को साथ लेकर तीसरी भारतीय शक्ति को कुचलने की चाल चली। कार्नवालिस 1791 ई० में बंगलौर (बंगलुरु) पर अधिकार करने के बाद टीपू की राजधानी श्रीरंगपट्टम के नजदीक पहुँच गया। टीपू ने भी आगे बढ़कर कोयम्बटूर पर अधिकार कर लिया परन्तु शीघ्र ही टीपू पराजित होने लगा। अन्त में अंग्रेजों ने उसकी राजधानी श्रीरंगपट्टम को भी घेरकर 1792 ई० में उस पर अधिकार कर लिया। 23 मार्च, 1792 को दोनों पक्षों के बीच श्रीरंगपट्टम की सन्धि हो गई।

श्रीरंगपट्टम की सन्धि– मार्च 1792 ई० में टीपू श्रीरंगपट्टम की सन्धि करने के लिए बाध्य हो गया। इस समय यदि कार्नवालिस चाहता तो टीपू के समस्त राज्य को छीन सकता था। परन्तु उसे भय था कि मराठों तथा निजाम के साथ विभाजन करने की विकट समस्या उत्पन्न हो जाएगी, अत: उसने टीपू का सम्पूर्ण राज्य तो नहीं छीना परन्तु उसे शक्तिहीन बनाकर छोड़ दिया। सन्धि के द्वारा टीपू का आधा राज्य छीन लिया गया तथा तीनों शक्तियों को वितरित कर दिया गया। सबसे बड़ा भाग कम्पनी को मिला। कम्पनी को मालाबार, कुर्ग तथा डिण्डीगान के प्रदेश मिले, निजाम को कृष्णा नदी के तटीय प्रदेश दिए गए तथा कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदी के मध्य का भाग मराठों को प्राप्त हुआ। युद्ध के व्यय के रूप में टीपू को 30 लाख रुपए तथा अपने दो पुत्र बन्धक के रूप में देने पड़े।

5. वेलेजली की सहायक संधि की नीति पर प्रकाश डालिए।

उ०– वेलेजली की सहायक संधि नीति– वेलेजली एक घोर साम्राज्यवादी गवर्नर था। कम्पनी शासन के विस्तार के लिए उसने जो सरल और प्रभावशाली अस्त्र व्यवहार में लिया, वह सहायक सन्धि के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार की सन्धि की व्यवस्था भारत में सर्वप्रथम फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले ने की थी। आवश्यकतानुसार वह भारतीय नरेशों को सैनिक सहायता देता तथा बदले में उनसे धन प्राप्त करता था। बाद में क्लाइव एवं कार्नवालिस ने भी इसका सहारा लिया, परन्तु इस व्यवस्था को सुनिश्चित एवं व्यापक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय वेलेजली को ही है। सहायक सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं–

(i) सहायक सन्धि स्वीकार करने वाला देशी राज्य अपनी विदेश-नीति को कम्पनी के सुपुर्द कर देगा।

(ii) वह बिना कम्पनी की अनुमति के किसी अन्य राज्य से युद्ध, सन्धि या मैत्री नहीं कर सकेगा।

(iii) इस सन्धि को स्वीकार करने वाले देशी राजाओं के यहाँ एक अंग्रेजी सेना रहती थी, जिसका व्यय राजा को उठाना होता था।

(iv) देशी राजाओं को अपने दरबार में एक ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना होता था।

(v) यदि सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले देशी राजाओं के मध्य झगड़ा हो जाता है, तो अंग्रेज मध्यस्थता कर जो भी निर्णय देंगे वह देशी राजाओं को स्वीकार करना पड़ेगा।

(vi) कम्पनी उपर्युक्त शर्तों के बदले सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य की बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा की गारन्टी लेती थी तथा देशी शासकों को आश्वासन देती थी कि वह उन राज्यों के आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप नहीं करेगी। इस प्रकार सहायक सन्धि द्वारा राज्यों की विदेश नीति पर कम्पनी का सीधा नियन्त्रण स्थापित हो गया। यह वेलेजली की साम्राज्यवादी पिपासा को शान्त करने का अचूक अस्त्र बन गया।

सहायक सन्धि के गुण– सहायक सन्धि अंग्रेजों के लिए बड़ी लाभकारी सिद्ध हुई। उन्हें इस सन्धि से निम्नलिखित लाभ हुए—

(i) कम्पनी के साधनों में वृद्धि– इस सन्धि द्वारा अंग्रेजों को विभिन्न भारतीय शक्तियों से जो धन और प्रदेश मिले, उनसे कम्पनी के साधनों का बहुत विस्तार हुआ। कम्पनी, भारत में अब सर्वोच्च सत्ता बन गई। अब उसका देशी राज्यों की बाह्य नीति पर पूर्णरूप से नियन्त्रण स्थापित हो गया।

(ii) सैन्य व्यय में कमी– इस सन्धि के द्वारा वेलेजली ने अपनी सेनाओं को देशी राजाओं के यहाँ रखा। इस सेना का व्यय देशी राजाओं को देना पड़ता था। इससे कम्पनी की आर्थिक स्थिति मजबूत हो गई।

(iii) कम्पनी के राज्य की बाह्य आक्रमण से सुरक्षा– इस सन्धि के अनुसार देशी राजाओं के यहाँ अंग्रेजी सेना रहती थी। इससे लाभ यह हुआ कि कम्पनी का राज्य बाह्य आक्रमणों से पूर्ण रूप से सुरक्षित हो गया और कम्पनी अनेक युद्ध करने से बच गई।

(iv) फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त– इस सन्धि के अनुसार कोई भी देशी राजा अपने यहाँ बिना अंग्रेजों की स्वीकृति के किसी विदेशी को अपनी सेवा में नियुक्त नहीं कर सकता था। इससे भारत में फ्रांसीसी प्रभाव का अन्त हो गया।

(v) कम्पनी के प्रदेशों में शान्ति– इस सन्धि के अनुसार देशी रियासतों के आपसी झगड़े समाप्त हो गए, जिससे वहाँ के लोग शान्तिपूर्वक रहने लगे। अंग्रेजी साम्राज्य के अधिक सुरक्षित हो जाने के कारण वहाँ के नागरिकों का जीवन अधिक समृद्ध और सुरक्षित हो गया।

(vi) वेलेजली के उद्देश्यों की पूर्ति– लॉर्ड वेलेजली घोर साम्राज्यवादी था। इस सन्धि ने उसकी साम्राज्य-विस्तार की भूख को शान्त कर दिया।

सहायक सन्धि के कुप्रभाव (दोष)– सहायक सन्धि जहाँ कम्पनी के लिए वरदान सिद्ध हुई, वहीं भारतीय रियासतों पर इसका अत्यन्त ही बुरा प्रभाव पड़ा। इसने देशी राज्यों की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी तथा उन्हें पूर्णत: कम्पनी पर आश्रित रहने के लिए बाध्य कर दिया।

(i) देशी राजाओं का शक्तिहीन होना– इस सन्धि से देशी राजा शक्तिहीन और निर्बल हो गए। उनके राज्य की बाह्य नीति पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। देशी राजा बिना अंग्रेजों की अनुमति के न तो किसी से सन्धि कर सकते थे और न ही युद्ध कर सकते थे। वास्तव में वेलेजली की सहायक सन्धि ने देशी राजाओं को शक्तिहीन बना दिया।

(ii) आर्थिक संकट– कम्पनी की सेना रखने वाले राज्यों को सेना का सम्पूर्ण व्यय देना पड़ता था। इस कारण उनको आर्थिक संकट का भी सामना करना पड़ा।

(iii) बेकारी की समस्या– देशी राज्यों को अपने यहाँ अनिवार्य रूप से अंग्रेजी सेना रखनी पड़ती थी। अत: देशी राजाओं ने अपनी स्थायी सेना भंग कर दीं, जिसके कारण बर्खास्त सैनिक बेरोजगार हो गए और वे असामाजिक और आपराधिक गतिविधियों में भाग लेकर चारों तरफ अव्यवस्था एवं अशान्ति में वृद्धि करने लगे।

(iv) देशी राजाओं का विलासी और निष्क्रिय होना– आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा की गारन्टी प्राप्त होने पर देशी राज्य कम्पनी के समर्थक और सहायक बन गए। उनकी राष्ट्रीयता एवं आत्मगौरव की भावना समाप्त हो गई। उनका सारा समय भोग-विलास में व्यतीत होने लगा तथा प्रजा पर अत्याचार बढ़ गए।

सहायक सन्धि की नीति का क्रियान्वयन– वेलेजली ने इस सन्धि को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का तुरन्त निश्चय कर लिया तथा सर्वप्रथम अपने मित्र राज्यों को सहायक सन्धि स्वीकार करने पर बाध्य किया। जिन शक्तियों से युद्ध करना पड़ा, उन पर विजय प्राप्त करके भी बलपूर्वक सहायक सन्धि लागू की गई तथा जब वेलेजली भारत से लौटा, वह लगभग सभी प्रमुख शक्तिशाली राज्यों में सहायक सन्धि लागू कर चुका था।

6. लॉर्ड डलहौजी के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– लॉर्ड डलहौजी के चरित्र का मूल्यांकन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है—

(i) अंग्रेजी शासन का वफादार– लॉर्ड डलहौजी अपने मूल राष्ट्र ब्रिटेन के प्रति समर्पित था। उसके राष्ट्र-प्रेम ने लॉर्ड डलहौजी की अन्तर्राष्ट्रीयता अथवा मानवता की भावनाओं को संकुचित कर दिया। भारतीयों के प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त कटु, बर्बर एवं अमानुषिक था। उनकी भावनाओं अथवा भलाई पर उसने कभी भी कोई ध्यान नहीं किया। उसने जो भी सुधार किए, उनका उद्देश्य अंग्रेजों और उनकी सरकार का हित था।

(ii) **इच्छा-शक्ति का धनी–** लॉर्ड डलहौजी में अद्भुत इच्छा-शक्ति थी। जिस बात को वह एक बार निश्चित कर लेता था, उससे कभी डिगता नहीं था तथा उसकी पूर्ति के प्रयास में वह निरन्तर संलग्न रहता था। उसे अपने देश एवं उसकी प्रतिष्ठा से अगाध प्रेम था तथा उसकी वृद्धि करने में उसने उचित-अनुचित का भी ध्यान नहीं रखा। उसके कार्यों से उसके देश की ख्याति बढ़ी। उसको आर्थिक एवं राजनीतिक लाभ प्राप्त हुए तथा उसका साम्राज्य विस्तार हुआ।

(iii) **परिश्रमी–** लॉर्ड डलहौजी घोर परिश्रमी था तथा दिन-रात के अथक परिश्रम से उसने न केवल भारत में अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की वरन् अनेक राज्यों को अपनी कूटनीति से ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसमें क्रियात्मक प्रतिभा थी। गोद-निषेध नीति के समान उच्चकोटि की नीति को जन्म देने का श्रेय लॉर्ड डलहौजी को ही है।

(iv) **प्रतिभाशाली व्यक्ति–** लॉर्ड डलहौजी अत्यन्त प्रतिभशाली, कर्त्तव्यपरायण एवं क्रियाशील व्यक्ति था। भारत में आकर शीघ्र ही वह यहाँ की परिस्थितियों से अवगत हो गया तथा भारत के छोटे-छोटे शक्तिहीन राज्यों को समाप्त करके भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को विशाल एवं संगठित बनाने का कार्य उसने आरम्भ कर दिया।

(v) **एकपक्षीय तर्क को आधार बनाने वाला शासक–** लॉर्ड डलहौजी में तर्कशीलता की भावना अत्यन्त प्रबल थी तथा तर्क का आश्रय लेकर वह प्रत्येक कार्य करता था। देशी नरेशों के राज्यों का अपहरण भी उसने तर्क के आधार पर ही किया, यद्यपि उसका तर्क एकपक्षीय ही था।

(vi) **स्वेच्छाचारी–** लॉर्ड डलहौली की सबसे बड़ी दुर्बलता थी कि वह योग्य व्यक्तियों के परामर्श को भी नहीं मानता था। इसलिए वह किसी का भी कृपापात्र न बन सका। उसके अधीन कर्मचारी उसके दुर्व्यवहार के कारण उससे भयभीत रहते थे और हृदय से उनका प्रेम उसे प्राप्त न था। यदि अपने सहयोगियों के साथ उसका व्यवहार अधिक सभ्यतापूर्ण होता तो उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में और भी अधिक सफलता मिल सकती थी।

(vii) **आधुनिक भारत का निर्माता–** लॉर्ड डलहौजी ने जो सुधार भारत में किए, उसके आधार पर उसे आधुनिक भारत का निर्माता कहा जा सकता है। उसके सुधार इतने क्रान्तिकारी थे कि भारतवासी उनसे भयभीत हो उठे और वे सोचने लगे कि इन सुधारों के द्वारा उनके धर्म में हस्तक्षेप किया जा रहा है। किन्तु कुछ समय पश्चात् भारतीयों को उन सुधारों की उपयोगिता का अहसास हो सका।

(viii) **महान् साम्राज्यवादी–** लॉर्ड डलहौजी महान् साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल था तथा भारत में उसने सदैव इसी नीति का अनुसरण किया। उसके काल में उसकी यह नीति सर्वथा सफल रही किन्तु भारतीयों में उसकी नीति के कारण अंग्रेजों के प्रति अविश्वास एवं घृणा की भावनाएँ प्रबल हो गईं और उसके लौटते ही भारत में महान् क्रान्ति का विस्फोट हुआ।

अंग्रेज विद्वानों ने लॉर्ड डलहौजी का मूल्यांकन करते हुए उसकी बहुत प्रशंसा की है। उसे भारत के उच्चतम कोटि के चार प्रमुख साम्राज्यवादी गवर्नर जनरलों में स्थान प्राप्त है। क्लाइव के द्वारा प्रारम्भ किए गए साम्राज्य निर्माण के कार्य को पूर्ण करने वाला लॉर्ड डलहौजी ही था। शक्तिहीन देशी राजाओं को समाप्त करके उसने भारत में एक सुदृढ़ राज्य स्थापित किया तथा भारत को प्राकृतिक सीमाएँ प्रदान कीं। उसने सेना का पुनर्संगठन किया, जो गदर को निष्फल बनाने में समर्थ हो सकी। उसमें केवल विजेता के ही गुण नहीं थे वरन् वह एक कुशल निर्माता एवं शासक भी था। अन्य किसी गवर्नर-जनरल में एकसाथ ही तीन गुणों का उचित सम्मिश्रण मिलना दुर्लभ है। जहाँ तक उसकी साम्राज्यवादी नीति का प्रश्न है, **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** की यह बात नितान्त उचित लगती है कि ''साम्राज्यवाद का प्रेत जनमत की परवाह नहीं करता। वह तो तलवार की धार से अपना लक्ष्य पूरा करता है।''

इसी प्रकार **वी०ए० स्मिथ** के अनुसार— ''लॉर्ड डलहौजी एक महान् विजेता और कुशल निर्माणकर्त्ता ही नहीं था, बल्कि वह एक उच्चकोटि का सुधारक भी था। एक विजेता और साम्राज्य विस्तारक के रूप में लॉर्ड डलहौजी ने भारतीयों पर कुठाराघात किया, परन्तु एक सुधारक के रूप में उसका नाम आज भी बड़े गौरव के साथ लिया जाता है।''

7. 'लॉर्ड बैंटिक की नीति उदार थी।' इस कथन के आलोक में उसके सुधारों का वर्णन कीजिए।

उ०– **लॉर्ड विलियम बैंटिंक की नीति–** स्वभाव और मानसिक दृष्टिकोण से वह उदार विचारों वाला शासक था। **पी०ई० रॉबर्ट्स** के अनुसार— ''लार्ड विलियम बैंटिंक अपने समय का सर्वथा उदार विचारों वाला व्यक्ति था। उसका युग सहानुभूतिपूर्ण तथा संसदीय सुधारों का युग था तथा वह उसके सर्वथा अनुरूप था।'' वह शान्तिप्रिय था और सुधार-कार्य की उसमें प्रबल इच्छा थी। वह उन्मुक्त व्यापार एवं उन्मुक्त प्रतियोगिता की नीति का समर्थक था और उसका विश्वास था कि राज्य को जनता के जीवन में कम-से-कम हस्तक्षेप करना चाहिए। फिर भी लोकहितकारी कार्यों का सम्पादन करने में वह किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करता था। वह सुधारों का प्रबल पक्षपाती था तथा उदार विचार वाला होने के कारण अंग्रेजों की उग्र एवं साम्राज्यवादी नीति का विरोधी था।

बैंटिंक के सुधार– बैंटिंक ने निम्नलिखित सुधार किए हैं—

(i) **प्रशासनिक और न्यायिक सुधार–** सर्वप्रथम बैंटिंक ने प्रशासनिक सुधारों की तरफ ध्यान दिया। वस्तुत: लॉर्ड कार्नवालिस के पश्चात् किसी भी गवर्नर जनरल ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया। प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिए बैंटिंक ने अग्रलिखित कार्य किए—

(क) अभी तक कम्पनी के महत्वपूर्ण पदों पर ज्यादातर अंग्रेज अधिकारी नियुक्त थे। बैंटिंक ने अब भारतीयों को भी योग्यता के आधार पर प्रशासनिक सेवा में भर्ती करना आरम्भ कर दिया।

(ख) बैंटिंक ने लगान-सम्बन्धी सुधार करते हुए जमीन की किस्म एवं उपज के आधार पर लगान की राशि तय कर दी। इस व्यवस्था का काम एक बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के जिम्मे सौंपा गया। यह व्यवस्था 30 वर्षों के लिए लागू की गई। इससे कम्पनी, जमींदार तथा किसान तीनों को लाभ हुए।

(ग) बैंटिंक ने पुलिस-व्यवस्था में भी सुधार किए। उसने पटेलों एवं जमींदारों को भी पुलिस-सम्बन्धी अधिकार प्रदान किए। अपराधियों पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से प्रत्येक जिले में पुलिस की स्थायी ड्यूटी लगाई गई।

(घ) 1832 ई० में बैंटिंक ने इलाहाबाद में सदर दीवानी अदालत तथा सदर निजामत अदालत की स्थापना की। इसका उद्देश्य पश्चिमी प्रान्तों की जनता को राहत पहुँचाना था।

(ङ) 1832 ई० में बैंटिंक ने एक कानून पारित कर बंगाल में जूरी प्रथा को आरम्भ किया, जिससे यूरोपियन जजों को सहायता देने के लिए जूरी के रूप में भारतीयों की सहायता प्राप्त की जा सके।

(च) बैंटिंक ने न्यायालयों में देशी भाषा के प्रयोग पर अधिक बल दिया, इससे पूर्व न्यायालयों में फारसी भाषा का प्रयोग अधिक होता था।

(छ) बैंटिंक के शासन में **लॉर्ड मैकॉले** द्वारा दण्ड संहिता का निर्माण किया गया। इस प्रकार कानूनों को एक स्थान पर संगृहीत कर दिया गया, जिससे न्याय-प्रणाली में पर्याप्त सुधार हुआ।

(ii) शिक्षा-सम्बन्धी सुधार– लॉर्ड बैंटिंक ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण सुधार किए। मैकाले ने 2 फरवरी, 1835 ई० के अपने स्मरण-पत्र में प्राच्य शिक्षा की खिल्ली उड़ाई एवं अपनी योग्यता प्रस्तुत की, जिसका उद्देश्य यह था कि भारत में ''एक ऐसा वर्ग बनाया जाए, जो रंग तथा रक्त से तो भारतीय हो, परन्तु प्रवृत्ति, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि से अंग्रेज हो।'' बैंटिंक ने मैकाले की यह नीति (योजना) स्वीकार कर ली। फलस्वरूप भारत में अंग्रेजी को प्रोत्साहन दिया गया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए अनुदान दिए गए तथा कलकत्ता में एक मेडिकल कॉलेज की स्थापना की गई। इससे भारतीय पाश्चात्य ज्ञान के सम्पर्क में आए।

(iii) सती प्रथा का अन्त– भारत में सती प्रथा एक घोर सामाजिक बुराई थी, जिसका काफी समय से चलन था। 4 दिसम्बर, 1829 ई० को बैंटिंक ने एक कानून पारित कर सती प्रथा को नर हत्या का अपराध घोषित कर दिया। सती प्रथा को समाप्त करने में बैंटिंक को महान समाज सुधारक राजा राममोहन राय का भरपूर सहयोग मिला।

(iv) ठगों का दमन– उन्नीसवीं सदी के पहले चार दशकों तक बनारसी ठगों का देशभर में खासकर उत्तर भारत के कई इलाकों में बड़ा आतंक था। ठगी के इस महाजाल को पूरी तरह से नेस्तनाबूद करने में बैंटिंक व स्लीमैन समेत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कई सिपहसालारों के भी पसीने छूट गए थे। अत: बैंटिंक द्वारा ठगों का दमन करना भी महत्वपूर्ण कार्य था। मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् ठगों के प्रभाव में काफी वृद्धि हो चुकी थी। इन्हें जमींदार तथा उच्च अधिकारियों का संरक्षण प्राप्त था। ठगों के अत्याचारों से जनता त्रस्त थी। ठगों का अन्त करने के लिए बैंटिंक ने कर्नल स्लीमैन के साथ बड़े ही व्यवस्थित ढंग से कार्यवाही प्रारम्भ की। उसने एक के बाद एक, दूसरे गिरोह को पकड़ा और उन्हें कठोर सजाएँ दीं। उसने लगभग 2,000 ठगों को बन्दी बनाया। इनमें से उसने 1,300 को मृत्युदण्ड दिया। 500 ठगों को जबलपुर स्थित सुधार-गृह में भेज दिया गया तथा शेष को देश से निष्कासित कर दिया। बैंटिंक के इस कठोर कदम से 1837 ई० तक संगठित तौर पर काम करने वाले ठगों के गिरोहों का सफाया हो गया।

(v) नर-बलि की प्रथा का अन्त– भारत के कुछ हिस्सों में नर-बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। यह प्रथा असभ्य एवं जंगली जातियों के बीच व्याप्त थी। वे अपने देवता को प्रसन्न करने के लिए निरपराध व्यक्तियों को भी पकड़कर उनकी बलि चढ़ा दिया करते थे। एक कानून बनाकर बैंटिंक ने इस कुप्रथा को बन्द करवा दिया।

(vi) दास प्रथा का अन्त– भारत में दास प्रभा भी प्राचीनकाल से ही प्रचलित थी। दासों की खरीद-बिक्री होती थी। उनसे जानवरों की तरह व्यवहार किया जाता था। बैंटिंक ने 1832 ई० में कानून बनाकर दास प्रथा को भी समाप्त कर दिया।

(vii) हिन्दू उत्तराधिकार कानून में सुधार– हिन्दू उत्तराधिकार नियम में यह दोष व्याप्त था कि अगर कोई व्यक्ति अपना धर्म बदल लेता है तो उसे पैतृक सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा। बैंटिंक ने घोषणा की कि ''धर्म-परिवर्तन करने की स्थिति में उसे पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। उसे नियमानुसार पैतृक सम्पत्ति का भाग मिलेगा।''

(viii) बाल-वध निषेध– सती प्रथा के समान बाल-वध की भी कुप्रथा प्रचलित थी। अनेक स्त्रियाँ अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए अपने बच्चों की बलि चढ़ाने की मनौतियाँ मानती थीं और उनकी बलि चढ़ा देती थीं। राजपूतों में तो कन्या का जन्म ही अपमान का द्योतक था। अत: कन्या के जन्म लेते ही उसकी हत्या कर दी जाती थी। इसलिए बैंटिंक ने बंगाल रेग्यूलेशन ऐक्ट के द्वारा इस कुप्रथा को बन्द करवा दिया।

(ix) जनहितोपयोगी कार्य– बैंटिंक ने जनहित की सुविधा के लिए भी अनेक कार्य करवाए। नहरों, सड़कों, कुओं आदि का निर्माण भी करवाया।

(x) **आर्थिक सुधार–** बैंटिंक जिस समय भारत आया, कम्पनी की स्थिति ठीक नहीं थी। बर्मा (म्यांमार) युद्ध ने कम्पनी का कोष करीब-करीब रिक्त कर दिया था। उसने आर्थिक सुधार करते हुए असैनिक अधिकारियों के वेतन और भत्ते बन्द कर दिए। अनावश्यक पदों की समाप्ति कर दी। कलकत्ता (कोलकाता) से 400 मील की सीमा में निवास करने वाले सैनिक अधिकारियों को केवल आधा भत्ता दिया जाना निश्चित कर दिया, इससे कम्पनी को लगभग 1,20,000 पौण्ड की वार्षिक बचत हुई। धन की बचत के लिए उसने उच्च पदों पर कम वेतन देकर भारतीयों को नियुक्त कर दिया, जिससे भारतीयों का अंग्रेजों के प्रति असन्तोष भी कम हो गया। बैंटिंक ने लगान मुक्त भूमि का सर्वेक्षण कर उसे जब्त कर लिया तथा उस पर लगान लगा दिया। बैंटिंक के इस कार्य से कम्पनी को करीब 3 लाख रुपए की अतिरिक्त राशि प्राप्त होने लगी

8. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

(क) बेसिन की संधि

(ख) गोरखा युद्ध

(ग) रणजीत सिंह का शासन-प्रबन्ध

(घ) प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध

(ङ) द्वितीय ब्रह्मा युद्ध

(च) नवीन चार्टर एक्ट

उ०–(क) **बेसिन की संधि–** पेशवा बाजीराव द्वितीय ने दिसम्बर 1802 ई० में बेसीन की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए, जिसके द्वारा पेशवा, जो मराठों का नेता माना गया था, सहायक सन्धि को मानने को प्रस्तुत हो गया। पेशवा ने एक सहायक अंग्रेजी सेना रखने की स्वीकृति दे दी, जिसके व्यय के लिए 26 लाख रुपए वार्षिक आय का एक प्रदेश कम्पनी को दे दिया गया। सूरत पर से भी पेशवा ने अपना दावा त्याग दिया तथा अपनी बाह्य नीति के अनुसरण के लिए उसने अंग्रेजों का नियन्त्रण स्वीकार कर लिया। इसके बदले में अंग्रेजों ने पेशवा की सहायता करने का वचन दिया। **सर आर्थर वेलेजली** के अनुसार– ''यह सन्धि एक शून्य (पेशवा की शक्ति) से की गई थी।''

बेसीन की सन्धि लॉर्ड वेलेजली की सबसे बड़ी कूटनीतिक विजय थी। पेशवा, जो मराठों का सरदार था, के अंग्रेजों के संरक्षण में आने का अभिप्राय था, सम्पूर्ण मराठों का अंग्रेजों के सरंक्षण में आ जाना। मराठा जाति, जो एकमात्र भारतीय जाति थी, जिससे अंग्रेजों की शक्ति के विनाश की आशा की जा सकती थी, इस सन्धि द्वारा अंग्रेजों के संरक्षण में आ गई। सिन्धिया इस समय भारत का सबसे शक्तिशाली सरदार था, जिसने मुगल सम्राट तक को दहला रखा था तथा दक्षिण में पेशवा का जो सबसे बड़ा समर्थक था, उसका बेसीन की सन्धि को स्वीकार कर लेना बड़ा महत्व रखता था, क्योंकि इस प्रकार उत्तरी तथा दक्षिणी भारत को अंग्रेजों ने अपने संरक्षण में ले लिया। भारतीय तथा अंग्रेज दोनों इतिहासकारों ने ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में विस्तार के इतिहास में इस सन्धि को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है। वेलेजली ने यह सोचा था कि पेशवा द्वारा बेसीन की सहायक सन्धि कर लिए जाने पर मराठा सरदार अंग्रेजों की प्रभुता स्वीकार कर लेंगे किन्तु उसकी यह धारणा गलत साबित हुई।

बेसीन की सन्धि का समाचार सुनकर मराठा सरदार अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उनका मानना था कि पेशवा ने उनके परामर्श के बिना ही मराठों तथा देश की स्वतन्त्रता को अंग्रेजों के हाथ बेच दिया है। अत: उसका प्रतिकार करने के लिए उन्होंने युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दी। परन्तु इस संकटकाल में भी मराठे संगठित नहीं हो सके। होल्कर ने मराठा संघ में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया परन्तु सिन्धिया तथा भोंसले संगठित हो गए। गायकवाड़ इस युद्ध में तटस्थ रहा।

(ख) **गोरखा युद्ध–** हेस्टिंग्स को सर्वप्रथम नेपाल के गोरखों के साथ युद्ध करना पड़ा। हिमालय की तराई में फैले हुए नेपाल राज्य के निवासी 'गोरखा' कहलाते हैं। पूर्व में सिक्किम से पश्चिम में सतलुज तक इनका राज्य फैला हुआ था। गोरखा जाति अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थी।

(i) **गोरखा शक्ति का उदय–** चौदहवीं शताब्दी में यहाँ राजपूतों का राज्य था, परन्तु धीरे-धीरे यह राज्य छिन्न-भिन्न होकर शक्तिहीन हो गया। 17 वीं शताब्दी में पृथ्वीनारायण नामक गोरखा सरदार के नेतृत्व में नेपाल को पुन: संगठित किया गया, तब से गोरखा शक्ति का निरन्तर विकास होने लगा। अंग्रेज भी नेपाल से अपने व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे परन्तु इस उद्देश्य में उन्हें सफलता नहीं मिली। 1802 ई० में जब कम्पनी के हाथ में गोरखपुर का जिला आ गया तो कम्पनी के राज्य की सीमाएँ नेपाल राज्य को स्पर्श करने लगीं तथा तभी से दोनों में संघर्ष होने लगे क्योंकि दोनों राज्यों की कोई सीमा निश्चित नहीं थी।

(ii) **आक्रामक गतिविधियाँ–** सर जॉर्ज बार्लो तथा लॉर्ड मिण्टो की अहस्तक्षेप की नीति से उत्साहित होकर गोरखों ने कम्पनी के सीमान्त प्रदेशों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया तथा कुछ प्रदेश छीन भी लिए। शिवराज तथा बुटवल के प्रदेशों पर गोरखों का अधिकार होने के कारण युद्ध आवश्यक हो गया तथा 1814 ई० में नेपाल के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी गई।

(iii) **युद्ध की घटनाएँ–** चार सेनाएँ भेजकर लॉर्ड हेस्टिंग्स ने नेपाल को चारों ओर से घेर लिया परन्तु गोरखों की वीरता देखकर अंग्रेजों के छक्के छूट गए। बल से जब विजय प्राप्त नहीं हो सकी तब अंग्रेजों ने छलपूर्वक गोरखों को मिलाने का प्रयास किया। गोरखों के सेनापति को बहुत प्रयास करने पर भी अंग्रेज अपना मित्र बनाने में असमर्थ रहे। छापामार

रणपद्धति के द्वारा गोरखों ने अंग्रेजों को कई स्थानों पर पराजित किया। पहाड़ी प्रदेशों में मार्गों की कठिनाई के कारण अंग्रेज आगे बढ़ने में असमर्थ रहे तथा उनकी सेनाएँ पीछे हटने लगीं।

पी० ई० रॉबर्ट्स के अनुसार– ''यद्यपि गोरखों की संख्या केवल 12,000 थी तथा अंग्रेजी सेना 34,000 के लगभग थी। फिर भी यह 1814-15 ई० का अभियान भयानक रूप से असफल होता लग रहा था। जावा की लड़ाई का नायक जनरल गिलेस्पी एक पहाड़ी किले पर मारा गया। जनरल मार्टिण्डेल ज्याटेक में रोक दिया गया। मुख्यत: पल्पा और राजधानी काठमाण्डू पर हुए हमले असफल कर दिए गए और केवल जनरल ऑक्टर लोनी ही सुदूर पश्चिम में अपनी स्थिति बनाए रख सका।''

(iv) **कूटनीति की सफलता और सिगौली की सन्धि–** अन्तत: धन का लोभ देकर अंग्रेजों ने अनेक गोरखों को अपनी सेना में भर्ती कर लिया। फलस्वरूप विवश होकर नेपाल के राजा ने सन्धि करना स्वीकार किया। 1816 ई० में सिगौली की सन्धि हो गई, जिसके द्वारा कुमायूँ तथा गढ़वाल के समस्त प्रदेश अंग्रेजों को प्राप्त हुए तथा नेपाल के राजा ने काठमाण्डू में ब्रिटिश रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया। नेपाल के राज्य को स्वतन्त्र रहने दिया गया परन्तु बाह्य देशों के निवासियों को वह अपने यहाँ नौकरी नहीं दे सकता था।

(v) **गोरखा युद्ध के लाभ–** गोरखों के साथ मित्रता स्थापित करने से कम्पनी को अनेक लाभ हुए। सर्वप्रथम गोरखा जाति के समान शक्तिशाली एवं वीर जाति का सहयोग अंग्रेजों को प्राप्त हुआ था। अंग्रेजों ने गोरखों की पृथक् सेना का निर्माण किया, जिसने आवश्यकता पड़ने पर विशेष रूप से 1857 ई० की क्रान्ति में अंग्रेजों की महान् सेवा की। सिगौली सन्धि के द्वारा जो पर्वतीय प्रदेश अंग्रेजों को प्राप्त हुए, वहाँ अल्मोड़ा, शिमला, नैनीताल, रानीखेत आदि प्रमुख पहाड़ी नगरों का निर्माण कराया गया, जहाँ पर गर्मी से बचने के लिए अंग्रेजों ने निवास स्थान बनाए।

(ग) महाराजा रणजीत सिंह का शासन-प्रबन्ध–

(i) **राज्य एवं शासन का संगठन–** महाराजा रणजीत सिंह ने अपने विशाल साम्राज्य के लिए एक सुव्यवस्थित शासन पद्धति का निर्माण किया तथा यह सिद्ध कर दिया कि वे केवल एक कूटनीतिक विजेता ही नहीं वरन् कुशल शासक भी हैं। महाराजा रणजीत सिंह से पूर्व सिक्खों के संघ को 'खालसा' कहते थे। इसमें अनेक मिस्लें होती थीं, जिनके मुखिया 'सरदार' कहलाते थे। सभी सरदार आन्तरिक क्षेत्र में स्वतन्त्र थे तथा खालसा का कार्य सामूहिक उन्नति करना था। खालसा के संचालन के लिए एक गुरुमठ होता था, जिसकी बैठक प्रतिवर्ष अमृतसर में होती थी। किन्तु रणजीत सिंह के राज्य से पूर्व सरदार बहुधा उद्दण्ड और अनियन्त्रित थे तथा खालसा के महत्व की प्राय: अवहेलना करते थे।

(ii) **निरंकुश राजतन्त्र–** महाराजा रणजीत सिंह ने पंजाब में सिक्खों का एकछत्र राजतन्त्रात्मक साम्राज्य निर्मित किया तथा स्वेच्छाचारी सरदारों पर जुर्माना करके तथा उनकी सम्पत्ति छीनकर उन्हें निर्बल बना दिया। उन्होंने उत्तराधिकार नियम भंग कर दिया तथा सरदार की मृत्यु के उपरान्त उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति हड़पने की नीति प्रचलित की। महाराजा ने एक विशाल सेना का संगठन करके सामन्तों को भयभीत किया। रणजीत सिंह स्वयं सामन्तों की सेना का निरीक्षण भी करते थे, जिस कारण सामन्त महाराजा से आतंकित रहते थे। महाराजा ने निरंकुश एवं स्वच्छ शासन पद्धति को अपनाया परन्तु प्रजाहित का उन्होंने सदैव ध्यान रखा। उनकी स्वेच्छाचारी नीति पर नियन्त्रण रखने के लिए भी अनेक संस्थाएँ थी। प्रथम अकालियों का संगठन तथा कुलीन वर्ग जिस पर उनकी सेना की वास्तविक शक्ति आधारित थी। उन्होंने हिन्दू एवं मुसलमानों को समान रूप से उच्च पद दिए तथा योग्यता का सदा सम्मान किया।

(iii) **शासन व्यवस्था–** उनके उच्चकोटि के सुव्यवस्थित शासन की अंग्रेजों ने भी प्रशंसा की है। सुविधा के लिए उन्होंने अपने राज्य को चार प्रान्तों में विभाजित किया था। ये प्रान्त कश्मीर, लाहौर, मुल्तान तथा पेशावर थे। इनका शासन नाजिम के हाथ में होता था, जिसकी नियुक्ति स्वयं महाराजा करते थे। नाजिम के नीचे कदीर होते थे। मुकद्दम, पटवारी, कानूनगो उनकी सहायता के लिए होते थे। इन सभी पदाधिकारियों को मासिक वेतन दिया जाता था। प्रान्तों पर केन्द्र का पूर्ण संरक्षण एवं नियन्त्रण था।

(iv) **राजस्व प्रबन्ध–** रणजीत सिंह के साम्राज्य में भूमि कर या राजस्व व्यवस्था अविकसित तथा अवैज्ञानिक थी। जागीरदार ही सरकार और जनता के बीच की कड़ी होते थे। राज्य द्वारा लगान की कोई निश्चित दर निश्चित नहीं की गई थी। सामान्यतया लगान उत्पादन का 33% से 40% तक होता था, यह भूमि की उर्वरता के अनुसार लिया जाता था। लगान वसूल करने के लिए सरकार की ओर से मुकद्दम तथा पटवारी होते थे। चुंगी के द्वारा भी राज्य को काफी आय होती थी। विलासिता एवं आवश्यकता की वस्तुओं पर चुंगी समान रूप से लगाई जाती थी, जिससे कर का भार सम्पूर्ण जनता समान रूप से वहन करे।

(v) **सैन्य प्रबन्ध–** महाराजा रणजीत सिंह ने सैनिक शक्ति पर आधारित राज्य होने के कारण एक विशाल सेना का संगठन किया। **रैपल ग्रिफिन** के अनुसार, ''महाराजा एक बहादुर सिपाही थे–दृढ़, अल्पव्ययी, चुस्त, साहसी तथा धैर्यशील।'' उनसे पहले अश्वारोही सेना का विशेष महत्व था परन्तु महाराजा ने तोपखाना तथा पैदल सेना में अत्यधिक वृद्धि की। सैन्य शिक्षण के लिए उन्होंने शिक्षित यूरोपियनों की नियुक्ति की। परिणामस्वरूप रणजीत सिंह की सेना इतनी

शक्तिशाली हो गई कि अंग्रेज भी उनसे भयभीत रहते थे। उनकी सेना में लगभग 40000 अश्वारोही तथा 40,000 पैदल तथा तोपखाना था। सैनिकों को नकद वेतन मिलता था। उनकी एक विशेष सेना फौज-ए-खास कहलाती थी। इसके संगठन का भार फ्रांसीसी सेनापति वेण्टुरा तथा एलॉर्ड के ऊपर था। उन्होंने ही इस सेना का संगठन फ्रांसीसी प्रणाली के आधार पर किया। महाराजा रणजीत सिंह ने मराठों की छापामार रण-पद्धति का परित्याग कर दिया तथा सामन्ती संगठन के आधार पर राज्य की सेना की व्यवस्था की। इस प्रकार उनकी रण-कुशल सेना अत्यन्त शक्तिशाली बन गई तथा उसी के बल पर इतना विस्तृत साम्राज्य निर्मित करने में वे सफल रहे। इसी आधार पर महाराजा रणजीतसिंह को एक कुशल प्रशासक, साहसी, योग्य तथा कार्यकुशल प्रबन्धक माना गया है।

(vi) न्याय-व्यवस्था– रणजीत सिंह ने प्राचीन न्याय-पद्धति को ही अपनाया था। उनके राज्य में लिखित कानून तथा दण्ड-व्यवस्था का सर्वथा अभाव था। अधिकांशत: ग्रामीण जनता स्वयं ही अपने झगड़ों का निर्णय कर लेती थी। कस्बों में कारदार न्याय-विभाग के कर्मचारी होते थे तथा नगरों में नाजिम न्याय का कार्य करते थे। केन्द्र में सर्वोच्च न्यायालय 'अदालत-उल आला' होती थी। जिसका प्रधान पद महाराजा स्वयं ग्रहण करते थे। अपराधियों को अधिकतर जुर्माने का दण्ड मिलता था। प्राणदण्ड बहुत कम दिया जाता था। कारागार के दण्ड की कोई व्यवस्था नहीं थी। महाराजा रणजीत सिंह स्वयं न्यायप्रिय थे तथा उनका न्याय निष्पक्ष होता था। मन्त्रियों को अपने विभागों के मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार होता था। महाराजा स्वयं भी राजधानी में प्रतिदिन अपना दरबार लगाते थे और मुकदमों की सुनवाई करते थे। अपराधों के लिए दण्ड प्राय: कठोर दिए जाते थे। भ्रष्टाचार और घूसखोरी के अपराधों का दण्ड रणजीत सिंह स्वयं दिया करते थे। कभी-कभी वे अपने कर्मचारियों को राज्य का दौरा करने तथा जनता की शिकायतें सुनने के लिए भेजा करते थे। राज्य की न्याय-व्यवस्था काफी खर्चीली थी और मुकदमों का निर्णय भी प्राय: विलम्ब से होता था। अत: जनसाधारण न्यायालयों की शरण लेने में कतराते थे।

(घ) प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध– प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध होने के निम्नलिखित कारण थे—

(i) रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सेना और शासन में जो अनुशासनहीनता और अव्यवस्था फैल गई थी, उसका लाभ उठाकर अंग्रेज कम्पनी ने राजनीतिक व सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पंजाब को अपने साम्राज्य में मिलाने का निश्चय किया।

(ii) राजा दिलीप सिंह की माता झिन्दन अत्यन्त महत्वाकांक्षी और षड्यन्त्रकारी स्त्री थी। सेना ने ही दिलीप सिंह को गद्दी पर बिठाया था और उसे संरक्षिका नियुक्त किया था। शासन पर सेना का ही वास्तविक प्रभुत्व था, जिसे हटाकर झिन्दन स्वयं वास्तविक शासक बनना चाहती थी। अत: उसने सेना के चंगुल से निकलने का यह उपाय निकाला कि उसे अंग्रेजों से उलझाकर शक्तिहीन कर दिया जाए।

(iii) प्रथम अफगान युद्ध के समय अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य की सीमा पर एक विशाल सेना एकत्रित कर रखी थी। सेना की संख्या में वे लगातार वृद्धि कर रहे थे, परिणामस्वरूप सिक्खों में अंग्रेजों के विरुद्ध रोष व्याप्त हो गया था।

(iv) सिक्ख साम्राज्य के कुछ प्रमुख पदाधिकारी अंग्रेजों से गुप्त पत्र-व्यवहार कर रहे थे, जिससे उन्हें सिक्खों की सैनिक कार्यवाहियों और तैयारियों का पहले से ही पता लग रहा था। इन विश्वासघातियों से अंग्रेजों को युद्ध छेड़ने का प्रोत्साहन मिला। उधर रानी झिन्दन ने भी सिक्ख सेना को अंग्रेजों के विरुद्ध भड़का रखा था।

युद्ध की घटनाएँ– दिसम्बर 1845 ई० में सिक्ख सेना ने सतलुज नदी पार करके अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। प्रथम संघर्ष मुदकी नामक स्थान पर हुआ, जिसमें कुछ सिक्ख नेताओं के विश्वासघात के कारण सिक्खों की हार हुई, यद्यपि वे बहुत वीरता से लड़े। 21 दिसम्बर को फिरोजशाह नामक स्थान पर दूसरा युद्ध हुआ, इसमें भी अंग्रेजों की जीत हुई। तीसरा और अन्तिम संघर्ष सुबराव के मैदान में हुआ, इसमें भी सिक्खों की आपसी फूट और विश्वासघात के कारण पराजय हुई। इन तीनों युद्धों में सिक्ख बहुत वीरता से लड़े और उन्होंने अंग्रेजों को अपार क्षति पहुँचाई, लेकिन कुछ प्रमुख सिक्ख नेताओं व सेनापतियों के विश्वासघात के कारण उनको पराजय का मुख देखना पड़ा। इसके अतिरिक्त पंजाब की अन्य सिक्ख रियासतों ने अंग्रेजों का ही साथ दिया।

लाहौर की सन्धि– 1 मार्च, 1846 ई० में दोनों पक्षों के बीच सन्धि हुई, जिसकी शर्तें निम्नलिखित थीं—

(i) दिलीप सिंह को पंजाब का राजा और उसकी माता झिन्दन को उसकी संरक्षिका बना रहने दिया गया। अंग्रेजों ने यह आश्वासन दिया कि वे सिक्ख राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, लेकिन दिलीप सिंह की रक्षा के लिए लाहौर में एक ब्रिटिश सेना रखने की शर्त स्वीकार कर ली गई।

(ii) सतलुज नदी के बाईं ओर के सब क्षेत्र अंग्रेजों को मिले, जिसमें सतलुज व व्यास के मध्य के सब इलाके और काँगड़ा प्रदेश सम्मिलित थे।

(iii) युद्ध के हर्जाने के रूप में अंग्रेजों ने डेढ़ करोड़ रुपयों की माँग की। सिक्खों के पास इतना रुपया नहीं था, अत: उन्होंने कश्मीर की रियासत डोगरा राजा गुलाब सिंह को 75 लाख रुपए में बेच दी और वह रुपया अंग्रेजों को दे दिया। गुलाब सिंह को अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

(iv) सिक्ख सेना की संख्या 30 हजार घुड़सवार व पैदल निश्चित कर दी गई।

(v) सिक्खों ने वचन दिया कि बिना कम्पनी की आज्ञा के वे किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकर नहीं रखेंगे।

(vi) पंजाब से अंग्रेजी सेना को गुजरने का अधिकार दिया गया।

(vii) लाहौर में सर हेनरी लारेंस को रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया।

लाहौर की सन्धि अस्थायी सिद्ध हुई। हेनरी लारेंस ने राजमाता झिन्दन और लाल सिंह पर कश्मीर में विद्रोह कराने का आरोप लगाकर पदच्युत कर दिया और सिक्खों से 16 दिसम्बर, 1846 ई० को भैरोवाल की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार पंजाब का प्रशासन चलाने के लिए अंग्रेजों के समर्थक आठ सिक्ख सरदारों की एक संरक्षण समिति बनाई गई और हेनरी लारेंस को इसका अध्यक्ष बनाया गया। एक अंग्रेजी सेना लाहौर में रखी गई, जिसके व्यय के लिए 22 लाख रुपए वार्षिक दरबार द्वारा देना निश्चित कर दिया गया। लाल सिंह को बन्दी बनाकर देहरादून भेज दिया गया तथा झिन्दन को डेढ़ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर बनारस भेज दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों ने पंजाब में अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(ङ) द्वितीय ब्रह्मा युद्ध– सामरिक दृष्टि से बर्मा की स्थिति महत्वपूर्ण होने के कारण डलहौजी इसे जीतने के लिए लालायित था। 1852 ई० में ब्रह्मा के साथ अंग्रेजों का द्वितीय युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेजी सेना का नेतृत्व जनरल गॉडविन और ऑस्टिन ने किया। इस युद्ध के निम्नलिखित कारण थे—

(i) अंग्रेजों का दुर्व्यवहार– ब्रह्मा के निवासी प्रथम युद्ध की पराजय से असन्तुष्ट थे तथा अंग्रेज रेजीडेण्ट का व्यवहार उनके लिए असह्य था। याण्डबू की सन्धि के फलस्वरूप रंगून में बहुत–से अंग्रेज व्यापारी बस गए थे तथा व्यापार में अत्यधिक लाभ होने पर भी वे लोग प्राय: चुंगी देने में आनाकानी करते थे।

(ii) ब्रह्मा के उत्तराधिकारी का असन्तोष– ब्रह्मा के राजा का उत्तराधिकारी याण्डबू की सन्धि को स्वीकार करने को तत्पर नहीं था तथा रेजीडेण्ट के स्थान पर अंग्रेजों का राजदूत रखने को सहमत था। अंग्रेज व्यापारियों की मनमानी से भी वह अत्यन्त क्रुद्ध था। इसी समय कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने ब्रह्मावासियों की हत्या कर डाली। अत: उन पर अभियोग चलाया गया। यद्यपि न्यायालय ने उनके साथ अत्यन्त उदारतापूर्ण व्यवहार किया और उनको साधारण जुर्माने का दण्ड देकर ही मुक्त कर दिया।

(iii) लॉर्ड डलहौजी की नीति– अंग्रेज व्यापारियों ने लॉर्ड डलहौजी से ब्रह्मा की सरकार की शिकायत की। इस पर लॉर्ड डलहौजी ने एकदम यह घोषणा कर दी कि ब्रह्मा की सरकार ने याण्डबू की सन्धि भंग की है। अत: अंग्रेज व्यापारियों की क्षतिपूर्ति के लिए वह एक बड़ी धनराशि अदा करे। लॉर्ड डलहौजी का यह व्यवहार एकदम स्वेच्छाचारी था। इस पर भी ब्रह्मा की सरकार ने युद्ध रोकने के लिए 9,000 रुपए कम्पनी को दिए तथा अंग्रेजों की माँग पर रंगून के गवर्नर को भी पदच्युत कर दिया। परन्तु लॉर्ड डलहौजी तो युद्ध के लिए तैयार बैठा था। अत: उसने सेनाएँ भेजकर ब्रह्मा के विरुद्ध युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं।

युद्ध की घटनाएँ– रंगून में रह रहे अंग्रेजों की सुरक्षा के बहाने लैम्बर्ट ने रंगून को घेर लिया तथा ब्रह्मा के राजा के जहाज को पकड़ लिया। अपनी सुरक्षा के लिए बर्मियों को गोली चलाने के लिए विवश होना पड़ा। इस क्षतिपूर्ति के लिए ब्रह्मा की सरकार से दस लाख रुपया हर्जाना माँगा गया तथा निश्चित अवधि तक यह रकम न पहुँचने पर लॉर्ड डलहौजी ने युद्ध की घोषणा कर दी।

शीघ्र ही अंग्रेजी सेनाओं ने रंगून पर आक्रमण कर दिया। रंगून को अंग्रेजों ने बुरी तरह लूटा तथा वहाँ की जनता का भीषण संहार किया। तत्पश्चात् इरावती नदी के डेल्टा पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। अक्टूबर 1852 ई० तक प्रोम भी अंग्रेजों के हाथ में आ गया। इस समय लॉर्ड डलहौजी स्वयं सैन्य संचालन कर रहा था। प्रोम विजय करते ही दक्षिण ब्रह्मा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

युद्ध के परिणाम– दक्षिण ब्रह्मा ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। बंगाल की खाड़ी का पूर्वी तट पूर्णतया अंग्रेजों के प्रभुत्व में आ गया तथा शेष ब्रह्मा का समुद्री मार्गों से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया। इस प्रान्त में अंग्रेजों को आर्थिक लाभ भी हुआ तथा उनका व्यापार भी ब्रह्मा के साथ तेजी से बढ़ने लगा।

(च) नवीन चार्टर एक्ट– 1853 ई० में 20 वर्ष पूरे हो जाने पर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने पुन: एक नवीन चार्टर कम्पनी के लिए पारित किया। नवीन चार्टर के द्वारा निम्नलिखित संशोधन किए गए—

(i) शासनावधि में वृद्धि– इस बार 20 वर्ष की अवधि हटाकर यह नियम बनाया गया कि कम्पनी को भारत का शासन तब तक चलाने का अधिकार है, जब तक पार्लियामेण्ट यह अधिकार अपने हाथ में न ले ले। इससे कम्पनी पर पार्लियामेण्ट का प्रभुत्व बढ़ गया।

(ii) प्रतियोगिता परीक्षा की व्यवस्था– कम्पनी डायरेक्टरों की संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गई। इनमें से 6 डायरेक्टर्स सम्राट द्वारा मनोनीत होते थे। कम्पनी की उच्च नौकरियों की नियुक्ति का अधिकार डायरेक्टरों से छीन लिया गया। अब उसके लिए प्रतियोगिता परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य कर दिया गया।

(iii) **अध्यक्ष को मन्त्रिमण्डल की सदस्यता–** बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल के अध्यक्ष को ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का सदस्य बना दिया गया तथा उसके अधिकारों में वृद्धि की गई।

(iv) **व्यवस्थापिका सभा–** एक व्यवस्थापिका सभा का निर्माण किया गया। गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 12 कर दी गई और अब इसमें गवर्नर जनरल की कौंसिल के 4 सदस्य, प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधि, सेनापति तथा सर्वोच्च न्यायालय के 2 न्यायाधीश होते थे।

(v) **बंगाल का पृथक्करण–** बंगाल का शासन गवर्नर जनरल से लेकर एक पृथक् लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को सौंपा गया।

इस प्रकार डलहौजी आधुनिकीकरण में विश्वास रखा था। कूटनीति और सैनिक प्रतिभा के सहारे उसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अधिकतम विस्तार किया। **सर रिचर्ड टेम्पल** के अनुसार, ''भारत के प्रशासन के लिए इंग्लैण्ड द्वारा भेजे गए प्रतिभा-सम्पन्न लोगों में उसके आगे कोई निकल ही नहीं पाया, उसके समकक्ष भी शायद ही कोई ठहरता हो।''

9. लॉर्ड डलहौजी द्वारा किए गए सुधारों का वर्णन कीजिए।
या लॉर्ड डलहौजी के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– लॉर्ड डलहौजी ने निम्नलिखित सुधार किए थे—

(i) **प्रशासनिक सुधार–** डलहौजी ने आठ वर्ष के अपने कार्यकाल में बहुत तेजी के साथ शासन सुधार के कार्य किए। 1854 ई० में बंगाल प्रान्त के शासन का भार लेफ्टिनेण्ट गवर्नर को सौंप दिया गया। अत: डलहौजी के केन्द्रीय शासन को अलग-अलग विभागों के आधार पर सुसंगठित किया तथा वह प्रत्येक विभाग का स्वयं निरीक्षण किया करता था। उसने अपनी अद्भुत कार्यक्षमता द्वारा कम्पनी के प्रशासन को स्फूर्ति प्रदान की और इसे पहले की अपेक्षा अधिक कुशल बनाया। प्रत्येक प्रान्त में कमिश्नरी तथा चीफ कमिश्नरों की नियुक्ति की गई और इन्हें गवर्नर-जनरल तथा उसकी कौंसिल के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। प्रान्तीय सरकारों का काम मुख्यत: शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना, कर वसूलना तथा फौजदारी के मुकदमों का निर्णय करना था। इस शासन पद्धति का उद्देश्य जनसाधारण की स्थिति में सुधार करना नहीं था। लॉर्ड डलहौजी के समय जो लोकहितकारी कार्य किए गए थे, वे प्रान्तीय सरकारों द्वारा नहीं बल्कि वे केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्पन्न हुए। प्रान्तीय सरकारों का संगठन इस तरीके से किया गया था कि इसमें कम-से-कम अफसरों से ही काम चल जाता था। जिले के प्रमुख अधिकारी को प्रशासक, राजस्व, न्याय तथा पुलिस इन सभी विभागों से सम्बन्धित कर्त्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता था। कमिश्नरों और जिलाधीशों के सामने कोई निश्चित कानून नहीं थे। वह साधारणतया गवर्नर जनरल के आदेश के अनुसार कार्य करता था। लॉर्ड डलहौजी के सुधारों का मुख्य उद्देश्य केन्द्र की सत्ता को सुदृढ़ बनाना था।

(ii) **रेल, डाक और तार विभाग की स्थापना–** लॉर्ड डलहौजी ने रेल, डाक और तार विभाग को अत्यन्त महत्व दिया। रेलवे व्यवस्था का प्रारम्भ करने का श्रेय लॉर्ड डलहौजी को ही प्राप्त है। उसने सर्वप्रथम यातायात के साधनों की सुविधा की ओर ध्यान दिया। उसने ग्राण्ड ट्रंक रोड़ का पुनर्निर्माण कराया तथा रेल एवं डाक तथा तार की व्यवस्था की। 1853 ई० में बम्बई से थाणे तक पहली रेलवे लाइन बनी और फिर 1856 ई० में मद्रास असाकुलम तक अन्य रेलवे लाइनें बिछाई गईं। लॉर्ड डलहौजी ने सम्पूर्ण भारत के लिए रेलवे लाइन की योजना बनाई थी, जो कि बाद में सम्पन्न हो सकी। यह ध्यान रखना चाहिए कि रेलवे लाइनों के निर्माण में लॉर्ड डलहौजी का उद्देश्य ब्रिटिश उद्योग-धन्धों की उन्नति करना था, भारत की आर्थिक प्रगति की उसे चिन्ता नहीं थी। तार लाइन का निर्माण भी सर्वप्रथम लॉर्ड डलहौजी के काल में हुआ। 1853 ई० से 1856 ई० के समय में विस्तृत क्षेत्र में तार की लाइनें बिछा दी गईं, जिससे कलकत्ता और पेशावर तथा बम्बई और मद्रास के मध्य निकट सम्पर्क हो सका।

डलहौजी ने डाक-व्यवस्था की जाँच के लिए 1850 ई० में एक कमीशन नियुक्त किया और उसकी रिपोर्ट के आधार पर इसको पूर्णरूप से पुनर्गठित किया। इस विभाग के सुचारु रूप से संचालन हेतु डायरेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। डाक-व्यवस्था को सुधारने का श्रेय भी डलहौजी को ही दिया जाता है। उसने 'पेनी पोस्टेज प्रथा' भारत में लागू की, जिसके अनुसार दो पैसे के टिकट के द्वारा भारत के किसी भी भाग में एक लिफाफे द्वारा समाचार भेजा जा सकता था, जिसका वजन 1/2 तोला तक हो सकता था। एक पैसे में एक पोस्टकार्ड देश के किसी भी कोने में भेजा जा सकता था।

(iii) **शिक्षा सम्बन्धी सुधार–** लॉर्ड डलहौजी के समय में शिक्षा में सुधार करने के लिए सर चार्ल्स वुड के नेतृत्व में एक कमीशन नियुक्त किया गया, जिसकी रिपोर्ट 1854 ई० में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधार किए गए। सर्वप्रथम तीनों प्रेसीडेंसियों में एक-एक विश्वविद्यालय की स्थापना की गई, जिसका कार्य परीक्षा लेना था। इण्टरमीडिएट तथा डिग्री कक्षाओं के लिए कॉलेजों की व्यवस्था की गई तथा प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए अनेक स्कूल खोले गए। प्राथमिक शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा रखा गया। शिक्षा के निरीक्षण के लिए प्रत्येक प्रान्त में एक डायरेक्टर जनरल की नियुक्ति की गई। लॉर्ड डलहौजी के काल में स्त्री शिक्षा के लिए भी कुछ संस्थाएँ गठित की गईं।

(iv) **सेना में सुधार–** लॉर्ड डलहौजी ने सैनिक क्षेत्र में भी अनेक सुधार किए। लॉर्ड डलहौजी से पूर्व सेना का प्रमुख केन्द्र बंगाल था किन्तु पंजाब के ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित हो जाने के कारण उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों की रक्षा करना भी अंग्रेजों के लिए अनिवार्य हो गया। फलत: पश्चिम में भी सेना का केन्द्र बनाया गया तथा मेरठ में अंग्रेजों के तोपखाने की स्थापना

की गई। शिमला में सेना की छावनियाँ बनाई गईं, जहाँ पर गवर्नर जनरल अपनी कौंसिल के साथ रहता था, जिससे सेना से उसका निकट सम्पर्क रह सके। लॉर्ड डलहौजी को भारतीयों पर बिलकुल विश्वास नहीं था। अत: उसने गोरखों की एक पृथक् बटालियन बनाई तथा भारतीय सैनिकों को विभिन्न भागों में नियुक्त कर दिया। लॉर्ड डलहौजी ने तो ब्रिटिश सरकार से यह अनुरोध भी किया था कि भारत में अंग्रेज सैनिकों की संख्या बढ़ा दी जाए, जिससे भारतीय सेना द्वारा विद्रोह की कोई आशंका न रहे।

(v) **सार्वजनिक कार्य–** लार्ड डलहौजी से पूर्व सार्वजनिक कार्य सेना के एक बोर्ड के द्वारा होता था, जिससे नागरिक विभाग के कार्यों की उपेक्षा होती थी किन्तु इस व्यवस्था को समाप्त करके डलहौजी ने सार्वजनिक निर्माण कार्य के लिए एक स्वतन्त्र विभाग निर्मित किया जिसका प्रधान अधिकारी चीफ इंजीनियर होता था। उसकी सहायता के लिए अनेक पदाधिकारी होते थे। लॉर्ड डलहौजी से पहले सरकारी राजस्व का 10% भी सार्वजनिक निर्माण के कार्य में व्यय नहीं किया जाता था किन्तु उसने 2 करोड़ से लेकर 3 करोड़ रुपए तक इस कार्य के लिए व्यय किए, जबकि उसके समय में सरकारी आमदनी 20 करोड़ रुपए थी। सार्वजनिक निर्माण विभाग ने पुन: सड़कें, नहरें तथा पुल बनवाने का उत्तरदायित्व ग्रहण किया।

देश की भौतिक समृद्धि तथा राज्य की आय में वृद्धि हेतु नहरों और सड़कों की कितनी अधिक उपयोगिता है, इसे डलहौजी भली-भाँति समझता था। अत: सिंचाई की सबसे महत्वपूर्ण योजना, जिसका प्रारम्भ 1851ई० में किया गया था और जो 1859 ई० में पूरी हुई, ऊपरी दोआब की नहर थी। जो रावी, सतलज और व्यास नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश में खुदवाई गई। अपर गंगा नहर 1854 ई० में बनकर तैयार हुई। इसके अतिरिक्त मद्रास क्षेत्र में भी सिंचाई के लिए नहरों की योजना कार्यान्वित हुई। लॉर्ड डलहौजी ने ढाका से अराकान तथा कलकत्ता से लेकर शिमला तक सड़कें बनवाई थीं। भारत की ऐतिहासिक सड़क ग्राण्ड ट्रंक रोड के पुनर्निर्माण का कार्य डलहौजी के कार्यकाल में ही सम्पन्न हुआ। यह स्मरण रखना चाहिए कि लॉर्ड डलहौजी ने सड़कों और पुलों का निर्माण केरल और पंजाब प्रान्त तक ही सीमित न रखा बल्कि सम्पूर्ण देश में नहरों, सड़कों एवं पुलों का निर्माण किया गया।

(vi) **व्यावसायिक सुधार–** लॉर्ड डलहौजी ने स्वतन्त्र व्यापार नीति को अपनाया तथा भारत का व्यापार सबके लिए खोल दिया गया। व्यापार के क्षेत्र में अंग्रेजों का लाभ ही कम्पनी का उद्देश्य था। उसने प्रकाश स्तम्भों की मरम्मत कराई तथा बन्दरगाहों को विस्तृत एवं विशाल करवाया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के समुद्रतट का सम्पूर्ण व्यापार अंग्रेज पूँजीपतियों के हाथ में चला गया। भारत के व्यवसाय नष्ट हो गए तथा अत्यन्त तीव्र गति से भारत में विदेशों का माल आने लगा, जिससे भारत का आर्थिक शोषण हुआ और भारतीयों की आर्थिक दशा निरन्तर दयनीय होती गई।

या लॉर्ड डलहौजी के चरित्र का मूल्यांकन के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 6 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

9

कम्पनी की शासन-नीति एवं वैधानिक विकास (1773-1858 ई०)
(Administrative Policy of Company and Constitutional Development 1773-1858 AD)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1773 ई०　2. 1784 ई०　3. 1793 ई०　4. 1833 ई०　5. 1853 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या—174 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 174 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 175 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 175 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट की दो विशेषताएँ लिखिए।

उ०– 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट की दो विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(i) इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी के भारतीय प्रशासन का केन्द्रीकरण किया गया। प्रादेशिक सरकारों की बहुत-सी शक्तियाँ छीनकर गवर्नर की कौंसिल को प्रदान की गई।

(ii) इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया और उसे सुविधापूर्वक अपना हिसाब-किताब चुकाने तथा माल आदि समेटने का आदेश दिया गया।

2. 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट का वैधानिक महत्व बताइए।

उ०- सन् 1833 ई० का चार्टर ऐक्ट भारत के संवैधानिक इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है। इसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी के प्रशासन में बड़े एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन किए और भारतीयों के प्रति उदार नीति अपनाने की भी घोषणा की। इसके अतिरिक्त, इस ऐक्ट ने कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार को पूर्णता समाप्त कर दिया।

3. पिट्स इण्डिया ऐक्ट, 1784 ई० की दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उ०- पिट्स इण्डिया ऐक्ट, 1784 ई० की दो विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(i) इस ऐक्ट द्वारा कमिश्नरों की एक समिति बनाई गई, जिसका भारत के शासन सेना तथा लगान सम्बन्धी कार्यों पर नियन्त्रण होता था। इस समिति के सदस्यों को इंग्लैण्ड का सम्राट मनोनित करता था।

(ii) संचालक मंडल को नियन्त्रण बोर्ड के अधीन कर दिया गया। भारत में गोपनीय आज्ञा भेजने के लिए तीन सदस्यों की एक गुप्त समिति का गठन हुआ।

4. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की दो प्रमुख धाराओं का उल्लेख कीजिए।

उ०- रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की दो प्रमुख धाराएँ निम्नवत् हैं—

(i) कम्पनी के डायरेक्टरों का कार्यकाल एक वर्ष की जगह 4 वर्ष कर दिया गया तथा उनकी संख्या बढ़ाकर 24 कर दी गई। इनमें से एक-चौथाई सदस्यों की प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करने की व्यवस्था की गई।

(ii) इस ऐक्ट द्वारा यह निश्चित किया गया कि कम्पनी का कोई भी कर्मचारी भविष्य में लाइसेंस लिए बिना व्यापार नहीं करेगा और वह किसी से भेंट अथवा उपहार भी नहीं लेगा।

5. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दो दोष लिखिए।

उ०- रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दो दोष निम्नवत् हैं—

(i) यद्यपि कम्पनी पर इंग्लैण्ड की सरकार ने अपना अधिकार कर लिया, तदापि व्यावहारिक रूप से उससे कोई लाभ नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल को अपने ही कार्यों से फुरसत नहीं थी।

(ii) 'रेग्यूलेटिंग ऐक्ट' द्वारा कम्पनी के कर्मचारियो के व्यक्तिगत व्यापार करने, उपहार अथवा भेंट लेने पर तो प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, परन्तु उनकी आय में वृद्धि के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। अत: प्रशासन में रिश्वत व भ्रष्टचार का समावेश हो गया था।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए तथा उसके गुण-दोष की विवेचना कीजिए।

उ०- **रेग्यूलटिंग ऐक्ट की विशेषताएँ-** इस ऐक्ट की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) कम्पनी के डायरेक्टरों का कार्यकाल एक वर्ष की जगह 4 वर्ष कर दिया गया तथा उनकी संख्या बढ़ाकर 24 कर दी गई। इनमें से एक-चौथाई सदस्य प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करेंगे।

(ii) कम्पनी के संचालकों के चुनाव में वही व्यक्ति मत देने का अधिकारी होगा, जिसके पास कम्पनी के 1,000 पौण्ड के शेयर होंगे।

(iii) बंगाल के गवर्नर को अब गवर्नर जनरल कहा जाने लगा तथा उसका कार्यकाल 5 वर्ष निश्चित कर दिया। बम्बई (मुम्बई) तथा मद्रास (चेन्नई) के गवर्नर उसके अधीन कर दिए गए।

(iv) शासन कार्य में गवर्नर जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक कौंसिल बनाई गई। कौंसिल के सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष रखा गया तथा यह भी कहा गया कि कौंसिल के निर्णय बहुमत के आधार पर होंगे।

(v) गवर्नर जनरल का वेतन 25,000 पौण्ड प्रतिवर्ष निश्चित किया गया।

(vi) ऐक्ट में यह भी निश्चित किया गया कि कम्पनी का कोई भी कर्मचारी भविष्य में लाइसेंस लिए बिना निजी व्यापार नहीं करेगा और वह किसी से भेंट अथवा उपहार भी नहीं लेगा।

(vii) कलकत्ता (कोलकाता) में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई, जिसमें मुख्य न्यायाधीश व तीन अन्य न्यायाधीश होंगे। इनके फैसलों के विरुद्ध केवल इंग्लैण्ड स्थित प्रिवी कौंसिल में ही अपील की जा सकती थी।

(viii) कम्पनी के संचालकों व भारत में स्थित कम्पनी के बीच में जो भी पत्र-व्यवहार होगा, उसकी एक प्रति इंग्लैण्ड की सरकार के पास भेजी जाएगी।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष- 'रेग्यूलेटिंग ऐक्ट' द्वारा इंग्लैण्ड की सरकार ने भारत में वैधानिक विकास का सूत्रपात किया, किन्तु यह अनेक दोषों के कारण एक अपूर्ण कानून था। इसके मुख्य दोष निम्न प्रकार थे—

(i) यद्यपि कम्पनी पर इंग्लैण्ड की सरकार ने अपना अधिकार कर लिया, तथापि व्यावहारिक रूप से उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को अपने ही कार्यो से फुरसत नहीं मिलती थी।

(ii) यद्यपि इस अधिनियम के अनुसार गवर्नर जनरल ब्रिटिश सरकार का सर्वोच्च अधिकारी था, परन्तु वह कौंसिल के बहुमत की कृपा पर निर्भर था। इस कानून के अनुसार गवर्नर जनरल 'कार्यकारिणी' के निर्णयों को स्वीकार करने के लिए बाध्य था। उसको यह अधिकार नहीं दिया गया था कि वह अपनी 'कार्यकारिणी' (कौंसिल) के बहुमत को अस्वीकार कर सके। ऐसी स्थिति में वह अनेक बार उपयुक्त कार्यों को करना चाहकर भी नहीं कर पाता था। चार सदस्यों में से तीन सदस्य समकालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के प्रत्येक कार्य में बाधा डालते थे। इन सदस्यों ने उस पर अनेक झूठे आरोप भी लगाए थे, जिसके कारण वारेन हेस्टिंग्स को कई बार त्याग-पत्र तक देने के विषय में सोचना पड़ा। अत: इस कानून का मुख्य दोष यही था कि इसमें गवर्नर जनरल के अधिकार सीमित रखे गए थे, जबकि वह शासन-प्रबन्ध में सर्वोच्च अधिकारी था।

(iii) मद्रास और बम्बई प्रान्तों के केवल विदेशी मामले ही गवर्नर जनरल और उसकी 'कार्यकारिणी' के अधीन रखे गए थे, आन्तरिक मामलों में वहाँ की स्थानीय सरकारें अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र थीं। यह एक व्यावहारिक दोष था।

(iv) सर्वोच्च न्यायालय से सम्बन्धित अनेक तथ्य अस्पष्ट थे। कानून में यह विस्तृत रूप से वर्णित नहीं किया गया था कि न्यायालय किस प्रकार के मुकदमों का निर्णय करेगा। न्याय करने में न्यायालय ब्रिटिश कानूनों का पालन करेगा या भारतीय कानूनों का, यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त न्यायालय और गवर्नर जनरल तथा 'कार्यकारिणी' में समन्वय स्थापित नहीं किया गया था। अधिकार क्षेत्र के मामले में इनमें प्राय: संघर्ष हो जाता था।

(v) 'रेग्यूलेटिंग ऐक्ट' द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत व्यापार करने, उपहार एवं भेंट लेने पर तो प्रतिबन्ध लगा दिया गया था, परन्तु उनकी आय में वृद्धि के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। अतएव प्रशासन में रिश्वत व भ्रष्टचार का समावेश हो गया था।

(vi) इस अधिनियम में कम्पनी के संचालकों के चुनाव में मतदाता बनने की योग्यता का मापदण्ड 500 पौण्ड से 1,000 पौण्ड कर दिए जाने से कम्पनी पर कुछ धनी व्यक्तियों का ही आधिपत्य हो गया।

'रेग्यूलेटिंग ऐक्ट' की त्रुटियों को **भारतीय संवैधानिक सुधारों पर प्रतिवेदन** में निम्न प्रकार वर्णित किया गया है—

''इसने (1773 ई० के ऐक्ट ने) ऐसा गवर्नर जनरल बनाया, जो अपनी कौंसिल के समक्ष अशक्त था। इसने ऐसी 'कार्यकारिणी' बनाई जो सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अशक्त थी और ऐसा न्यायालय बनाया, जिस पर देश की शान्ति तथा हित का कोई स्पष्ट उत्तरदायित्व नहीं था।''

एडमण्ड बर्क ने 'रेग्यूलेटिंग ऐक्ट' को एक अधूरा कदम बताया है, जिसने कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को अस्पष्ट ही छोड़ दिया। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि यह कानून अनेक दोषों से परिपूर्ण था, तथापि इंग्लैण्ड के संवैधानिक इतिहास में 'रेग्यूलेटिंग ऐक्ट' का महत्वपूर्ण स्थान है।

ऐक्ट के गुण– यद्यपि रेग्यूलेटिंग ऐक्ट में अनेक दोष विद्यमान थे, तथापि यह सर्वथा गुणरहित भी नहीं था। यह पहला अवसर था जब कम्पनी पर संसद के नियन्त्रण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। इस ऐक्ट के आधार पर ही धीरे-धीरे कम्पनी पर कठोर नियन्त्रण किया गया और इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप 1858 ई० तक तो कम्पनी की सत्ता ही समाप्त कर दी गई। अत: इस अधिनियम के परिणाम बड़े ही दूरगामी व स्थायी सिद्ध हुए। कम्पनी के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, निजी व्यापार तथा उपहार लेने पर लगाया गया प्रतिबन्ध भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। यद्यपि इस ऐक्ट में गुण व दोष दोनों ही विद्यमान थे। इस ऐक्ट के बारे में **सप्रे** ने ठीक ही लिखा है, ''यह अधिनियम संसद द्वारा कम्पनी के कार्यों में प्रथम हस्तक्षेप था, अत: उसकी नम्रतापूर्वक आलोचना की जानी चाहिए।''

2. ''रेग्यूलेटिंग ऐक्ट एक अधूरा कानून था।'' स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरी प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष का अवलोकन कीजिए।

3. पिट्स इण्डिया ऐक्ट ने रेगयूलेटिंग ऐक्ट के दोषों को किस सीमा तक दूर किया? क्या इसे रेग्यूलेटिंग ऐक्ट का पूरक कहना उचित है?

उ०– रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोषों को दूर करने के लिए फाक्स ने 1783 ई० में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के समक्ष एक इण्डिया बिल प्रस्तुत किया परन्तु यह बिल अस्वीकृत हो गया। अन्त में 1784 ई० में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री **विलियम पिट** ने कुछ संशोधन के साथ इण्डिया बिल पारित किया। इसे ही **पिट्स इण्डिया ऐक्ट** कहा जाता है। इस ऐक्ट के द्वारा रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनेक दोष दूर कर दिए गए। इस ऐक्ट में निम्नालिखित प्रावधान किए गए—

(i) सर्वप्रथम गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या घटाकर तीन कर दी गई, जिसमें एक सेनापति भी सम्मिलित होना निश्चित हुआ।

(ii) बम्बई तथा मद्रास के गवर्नरों को सन्धि, युद्ध तथा लगान के सम्बन्ध में पूर्णतया गवर्नर जनरल के अधीन कर दिया गया।

(iii) गृह-सरकार में भी इस ऐक्ट द्वारा कुछ संशोधन किए गए।

(iv) कमिश्नरों की एक समिति बनाई गई, जिसका भारत के शासन, सेना तथा लगान सम्बन्धी कार्यों पर नियन्त्रण होता था। इस समिति के सदस्यों को इंग्लैण्ड का सम्राट मनोनीत करता था।

(v) संचालक मण्डल को नियन्त्रण बोर्ड के अधीन कर दिया गया। भारत में गोपनीय आज्ञाएँ भेजने के लिए एक गुप्त समिति का गठन हुआ, जिसमें तीन सदस्य होते थे।

पिट के इण्डिया ऐक्ट में भी कुछ दोष थे। इसके द्वारा द्वैध शासन प्रणाली का जन्म हुआ। संचालक मण्डल तथा नियन्त्रण बोर्ड दोनों के नियन्त्रण तथा अनुशासन में गवर्नर जनरल को कार्य करना पड़ता था। यह व्यवस्था 1886 ई० तक चलती रही। परन्तु इस ऐक्ट को रेग्यूलेटिंग ऐक्ट का पूरक माना जा सकता है क्योंकि रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनेक दोषों को इस ऐक्ट ने दूर कर दिया था।

4. भारत शासन अधिनियम, 1858 ई० पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उ०– भारत शासन अधिनियम, 1858 ई०– इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित थे–

(i) गृह सरकार

(क) नियन्त्रण परिषद् तथा निदेशक मण्डल समाप्त कर दिए गए और उनका स्थान 'भारत सचिव' ने ले लिया।

(ख) भारत में सचिव की सहायता के लिए 15 सदस्यों की एक 'भारत परिषद्' होगी।

(ग) इन सदस्यों में से कम-से-कम आधे ऐसे व्यक्ति होने चाहिए, जो भारत में कम-से-कम दस वर्ष तक सेवा कर चुके हों।

(घ) भारत में सचिव परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करेगा।

(ङ) भारत में सचिव प्रतिवर्ष भारत की प्रगति की रिपोर्ट संसद के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

(ii) भारत सरकार

(क) भारत के शासन का उत्तरदायित्व ब्रिटिश क्राउन ने अपने ऊपर ले लिया है और इसकी घोषणा रानी के द्वारा भारतीय राजा-महाराजाओं के समक्ष कर दी जाएगी।

(ख) कम्पनी की सभी सन्धियाँ, समझौते और देनदारियाँ क्राउन पर लागू होंगी।

(ग) भारत के बाहर सैनिक कार्यवाहियों के लिए भारतीय कोष से ब्रिटिश संसद की अनुमति के बिना धन व्यय नहीं किया जाएगा।

अधिनियम का मूल्यांकन– इसमें सन्देह नहीं कि 1858 ई० का अधिनियम आधुनिक भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। वास्तव में 1858 के भारत-शासन अधिनियम ने भारतीय इतिहास में एक युग को समाप्त कर दिया और भारत में एक नए युग का आरम्भ हुआ। **रेम्जे म्योर** के अनुसार, ''भारतीय साम्राज्य का क्राउन को जो हस्तान्तरण किया गया, उसमें ऊपरी दृष्टि से जितना परिवर्तन दिखाई देता था, उतना वास्तव में नहीं था, बल्कि उससे बहुत कम था। वस्तुत: क्राउन कम्पनी के हाथों में प्रादेशिक प्रभुत्व आने के समय से ही उसके मामलों पर अपने नियन्त्रण को निरन्तर कड़ा करता आया था।''

10

सामाजिक चेतना व राष्ट्रीय भावना का विकास
(Development of Social and National Consciousness)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1774 ई० 2. 1824 ई० 3. 1833 ई० 4. 1836 ई० 5. 1875 ई० 6. 1883 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 182 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 183 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 183 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 183 व 184 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. धार्मिक सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– आर्य समाज ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता का दावा करके हिन्दू सम्मान के गौरव की रक्षा की तथा हिन्दू जाति में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान को जन्म दिया। इससे भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में सहयोग मिला। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने हिन्दुओं को उपदेश देकर उन्हें अत्यन्त सरलता से प्राचीन धर्म की विशेषताओं, भारतीय संस्कृति की अच्छाईयों और शुद्ध जीवन के लाभों से परिचित कराया तथा उनकी सुप्त चेतना को जाग्रत किया।

2. ब्रह्म समाज और आर्य समाज के प्रमुख सिद्धान्तों की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

उ०– मूर्तिपूजा का विरोध, एकेश्वरवाद में अटल विश्वास, बुद्धिवादी दृष्टिकोण तथा मानव धर्म, ये ब्रह्म समाज के प्रमुख सिद्धान्त थे। आर्य समाज ने निराकार परमेश्वर की सत्ता को महत्व दिया और मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तथा बाहरी दिखाने का डटकर विरोध किया। ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज दोनों ही छुआछूत, बाल विवाह, कन्या वध सती प्रथा अंधविश्वास आदि कुरीतियों का खण्डन कर भारत को धर्म, समाज, शिक्षा एवं राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3. ब्रह्म समाज और आर्य समाज के सिद्धान्तों की किन्हीं दो विभिन्नताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– ब्रह्म समाज और आर्य समाज के सिद्धान्तों की दो विभिन्नताएँ निम्न प्रकार हैं—

(i) ब्रह्म समाज के अनुसार सभी धर्मों के उपदेश सत्य हैं, उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जबकि आर्य समाज के अनुसार वेद सब सत्य विधाओं की पुस्तक हैं। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है।

(ii) ब्रह्म समाज के सिद्धान्तों का प्रभाव समाज के शिक्षित और उदार-वर्ग तक ही सीमित है जबकि आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रभाव समाज के छोटे तथा निम्न से निम्न वर्ग तक है।

4. 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण की किन्हीं दो प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– 19 वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण की दो प्रमुख विशेषताएँ—

(i) 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलनों ने भारत में समाज, धर्म, साहित्य और राजनीतिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया।

(ii) पुनर्जागरण से भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ भारतीय विदेशी दासता से मुक्ति पाने हेतु अंग्रेजों से संघर्ष करने को तत्पर हो गए।

5. स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन एवं कार्यों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार में 1824 ई० के हुआ था। इनके बचपन का नाम मूलशंकर था। 21 वर्ष की अवस्था में मन की अशांति को दूर करने तथा ज्ञान की खोज में ग्रह-त्याग दिया। पाणिनी व्याकरण के विद्वान विरजानन्द से शिक्षा ग्रहण कर संस्कृत व्याकरण, दर्शन, धर्मशास्त्र और वेदों का ज्ञान प्राप्त किया। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय लोग अनेक रुढ़ियों और आडम्बरों के कारण पतन की ओर उन्मुख हो रहे थे। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना कर, उनका उद्धार किया। उन्होंने हिन्दुओं को प्रेम, स्वतन्त्रता, सच्ची ईश्वर-भक्ति एवं हिन्दू संस्कृति के प्रति सम्मान का भाव रखने की प्रेरणा दी। शिक्षा के क्षेत्र में दयानन्द सरस्वती का उल्लेखनीय योगदान रहा। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया।

6. स्वामी दयानन्द की प्रमुख कृतियों के नाम लिखिए।

उ०– स्वामी दयानन्द की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) सत्यार्थ प्रकाश
(ii) वेदभाष्य भूमिका
(iii) वेदभाष्य।

7. स्वामी विवेकानन्द की प्रसिद्धि के क्या कारण थे?

उ०– शिकागों में सर्व-धर्म विश्व सम्मेलन में प्राप्त प्रतिष्ठा, रामकृष्ण मिशन की स्थापना और समाज सेवा स्वामी विवेकानन्द की प्रसिद्धि के कारण थे।

8. भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारणों का विश्लेषण कीजिए।

उ०– भारत में राष्ट्रवाद के उदय के निम्नलिखित कारण थे—

(i) धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन
(ii) राजनीतिक एकता की स्थापना
(iii) पाश्चात्य साहित्य
(iv) पाश्चात्य शिक्षा
(v) समाचार पत्रों का प्रभाव
(vi) आर्थिक शोषण
(vii) जातीय भेदभाव की नीति का प्रभाव
(viii) अन्य देशों की जागृति का प्रभाव
(ix) सरकार के असन्तोषजनक कार्य
(x) प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध

9. स्वामी दयानन्द की प्रमुख शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– स्वामी दयानन्द की प्रमुख शिक्षाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) सब सत्य, विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका मूल परमेश्वर है।

(ii) ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, अजन्मा, सर्वव्यापकता, अजर-अमर, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।

(iii) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं। वेदों को पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है।

(iv) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागनें में सदा उद्यत रहना चाहिए।

(v) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

(vi) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(vii) व्यक्ति के साथ उसके गुणों के अनुरूप प्रेम तथा न्याय का व्यवहार करना चाहिए।

(viii) अविद्या का नाश तथा विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(ix) प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(x) व्यक्ति को आचरण की स्वतन्त्रता व्यक्तिगत क्षेत्र में होनी चाहिए, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र में लोककल्याण को सर्वोपरि मानना चाहिए। सार्वजनिक हित के समक्ष व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्त्व नहीं है।

10. थियोसोफिकल सोसायटी के विषय से आप क्या समझते हैं?

उ०– थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना 1857 ई० में अमेरिकी कर्नल हेनरी स्टील अल्काट तथा एक रूसी महिला मैडम हेलेन पेट्रोवना ब्लेवस्ट्स्की द्वारा, न्यूयार्क में की गई। भारत में इस संस्था का मुख्यालय 1893 ई० में मद्रास के समीप अड्यार नामक स्थान पर खोला गया। भारत में इस संस्था की अध्यक्ष एक आयरिश महिला श्रीमति एनी बेसेण्ट बनी। थियोसोफिकल सोसायटी का गठन सभी प्राचीन धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के उद्देश्य से किया गया था, लेकिन इस संस्था ने प्राचीन हिन्दू धर्म को अत्यधिक गूढ़ व आध्यात्मिक माना। थियोसोफिकल सोसायटी के प्रचारकों ने हिन्दू धर्म की बहुत प्रशंसा की तथा इस धर्म के विचारों का प्रचार किया। इस संस्था ने हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। इस संस्था का विश्वास सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों में था।

11. भारत में मुस्लिम समाज के लिए कौन-कौन से सुधारवादी आन्दोलन चलाए गए?

उ०– भारत में मुस्लिम समाज के लिए निम्नलिखित सुधारवादी आन्दोलन चलाए गए—

(i) अलीगढ़ आन्दोलन (ii) बहावी आन्दोलन (iii) अहमदिया आन्दोलन (iv) देवबन्द आन्दोलन।

12. राजा राममोहन राय ने अपने विचारों का प्रचार करने के लिए कौन-सी संस्था का गठन किया?

उ०– राजा राममोहन राय ने अपने विचारों का प्रचार करने के लिए 'ब्रह्म समाज' नामक संस्था का गठन किया।

13. रामकृष्ण परमहंस कौन थे?

उ०– रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द के आध्यात्मिक गुरु थे। वे उन्नीसवीं शताब्दी के महान चिन्तक थे। उनका बचपन का नाम गदाधर चटर्जी था।

14. भारत में नवनिर्माण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– भारत में प्रथम रेलमार्ग 1803 ई० में प्रारम्भ हो गया था, जबकि भारत में इसकी व्यवस्था 1853 ई० में हुई। 1856 ई० तक भारत के विभिन्न भागों में रेल लाइनें बिछ गई। 1852 ई० में भारत में विद्युत टेलीग्राफ पद्धति का सूत्रपात हुआ। पहली टेलीग्राफ लाइन 1854 ई० में कलकत्ता से आगरा तक खोली गई, जो 1857 तक लाहौर और पेशावर तक फैल गई। टेलीग्राफ पद्धति द्वारा दूर स्थानों पर बैठे व्यक्तियों के विचारों और संदेशों के आदान-प्रदान से भारतीयों में नवचेतना का विकास हुआ। सन् 1854 ई० में लॉर्ड डलहौजी ने भारतीयों व विदेशियों के साथ नियमित डाक व्यवस्था के लिए पोस्ट ऑफिस ऐक्ट लागू किया। इसी क्रम मे डाक टिकटों का सूत्रपात हुआ। इस प्रकार ब्रिटिश शासनकाल में भारत का नवनिर्माण हुआ, जिसने भारतीयों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास कर दिया।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. समाज सुधारक एवं धर्म सुधारक के रूप में राजा राममोहन राय का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– राजा राममोहन राय का जन्म 22 मई, 1774 ई० को बंगाल के राधानगर गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्हें भारतीय राष्ट्रवाद का अग्रदूत और जनक कहा जा सकता है। वे एक ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे। उन्होंने लोगों में अपने धर्म एवं राष्ट्र की स्वतन्त्रता के प्रति चेतना उत्पन्न की और अनेक सामाजिक एवं धार्मिक सुधार भी किए।

धार्मिक सुधार– आधुनिक भारत के धार्मिक जागरण का प्रारम्भ राजा राममोहन राय से ही होता है। उन्होंने हिन्दू धर्म तथा संस्कृति को अन्धविश्वास तथा आडम्बरों के जाल से मुक्त किया। उस समय रूढ़ियों, ढोंगों तथा आडम्बरों की भारी तह ने

हिन्दुत्व के सच्चे स्वरूप को ढक लिया था। ईसाई पादरी, हिन्दू धर्म के आडम्बरों की तीव्र आलोचना कर रहे थे। अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय नवयुवक द्रुतगति से ईसाइयत की ओर दौड़ रहे थे। राजा राममोहन राय इस स्थिति को देखकर अत्यन्त दु:खी हुए। उन्होंने हिन्दू धर्म के यज्ञ-सम्बन्धी कर्मकाण्ड, मूर्तिपूजा तथा जातिवाद का खण्डन किया। उन्होंने फारसी में तुहफत-उल-मुवाहिदीन नामक पुस्तक लिखी, जिसमें मूर्तिपूजा का खण्डन तथा एकेश्वरवाद की प्रशंसा की गई थी। उन्होंने संक्षिप्त वेदान्त नामक पुस्तक में वेदान्त का टीका सहित अनुवाद किया। वे वेदान्त को हिन्दुत्व का आधार बनाना चाहते थे।

हिन्दू समाज में नए धार्मिक विचारों का प्रचार करने के उद्देश्य से उन्होंने कलकत्ता (कोलकाता) में 1815 ई० में 'आत्मीय सभा' तथा 1816 ई० में वेदान्त कॉलेज की स्थापना की और अन्त में 20 अगस्त, 1828 को शुद्ध एकेश्वरवादियों की उपासना के लिए उन्होंने कलकत्ता में ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस समाज की बैठकों में वेद तथा उपनिषदों का पाठ हुआ करता था। इसमें मूर्तिपूजा तथा अवतार के सिद्धान्तों को नहीं माना गया था। वस्तुत: राममोहन राय विश्व बन्धुत्व तथा मानस प्रेम के पुजारी थे। उनकी निष्ठा किसी सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित न थी। मूर्तिपूजा का विरोध, एकेश्वरवाद में अटल विश्वास, बुद्धिवादी दृष्टिकोण तथा मानव धर्म ये राममोहन राय के प्रमुख सिद्धान्त थे, जिनके आधार पर वे हिन्दुत्व का संशोधन करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि भारत, यूरोप से विज्ञान को ग्रहण करे और साथ ही अपने धर्म का बुद्धिसम्मत रूप संसार के सामने रखे। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आधुनिक प्रगतिवाद के बीच राजा राममोहन राय एक महान् पुल थे। इनकी मृत्यु इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल में 1833 ई० में हुई। **मिस काटेल** ने उनकी जीवनी में लिखा है— ''इतिहास में राममोहन राय का स्थान उस महासेतु के समान है, जिस पर चढ़कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश करता है।''

समाज सुधार– राजा राममोहन राय हिन्दू समाज की दशा सुधारने को बहुत उत्सुक थे। उन्होंने समाज में प्रचलित बहुविवाह तथा बालविवाह जैसी बुराइयों का खण्डन किया। स्त्री शिक्षा तथा स्त्रियों के समानाधिकार के वे प्रबल समर्थक थे। उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध शास्त्रार्थ नामक ग्रन्थ में कई निबन्ध लिखे। 1829 ई० में गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने सती प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर इसके विरुद्ध बड़ा कानून बना दिया। यह कानून राममोहन राय के आन्दोलन का ही फल था। राजा राममोहन राय द्वारा प्रकाशित 'संवाद कौमुदी' और 'मिरातुल अखबार' ने भारतीय विचारों को बदलने तथा विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक सुधार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण के महान जनक की संज्ञा दी जा सकती है।

2. आधुनिक भारत के पुनर्जागरण में स्वामी दयानन्द के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– हिन्दू धर्म और समाज में व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने में आर्य समाज का विशेष योगदान है। आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द द्वारा 1875 ई० में हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी का काल समाज में घोर असमानता और अन्याय का युग था। भारतीय लोग अनेक रूढ़ियों और आडम्बरों के कारण पतन की ओर उन्मुख हो रहे थे। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना कर, उनका उद्धार किया। उन्होंने हिन्दुओं को प्रेम, स्वतन्त्रता, सच्ची ईश्वर-भक्ति एवं हिन्दू संस्कृति के प्रति सम्मान का भाव रखने की प्रेरणा दी।

शिक्षा के क्षेत्र में दयानन्द का भी उल्लेखनीय योगदान रहा। उनके अनुयायियों के सहयोग से स्थान-स्थान पर डी०ए०वी० स्कूलों, गुरुकुलों एवं कन्या पाठशालाओं की स्थापना की गई। उन्होंने आश्रम-व्यवस्था को महत्व दिया। उनका मानना था कि वर्ण-व्यवस्था को गुण व कर्म के अनुसार ही मानना चाहिए। ये छुआछूत, बालविवाह, कन्या वध, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों के विरोधी थे। दयानन्द ने राष्ट्रीय जागरण के क्षेत्र में स्वभाषा, स्वधर्म और स्वराज्य पर बल दिया। इनका मानना था कि समस्त ज्ञान वेदों में ही नीहित हैं, इसलिए 'पुन: वेद की ओर चलो' का नारा दिया। दयानन्द पहले भारतीय थे, जिन्होंने सभी व्यक्तियों को (शूद्रों एवं स्त्रियों को भी) वेदों के अध्ययन एवं इसकी व्याख्या करने का अधिकार दिया।

आर्यसमाज का राजनीतिक जागृति में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। दयानन्द सरस्वती की जीवनी के एक लेखक ने उनके बारे में लिखा है ''दयानन्द का लक्ष्य राजनीतिक स्वतन्त्रता था। वास्तव में वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया। वे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना तथा स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना सिखाया। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया।'' **आर०सी० मजूमदार** ने लिखा है— ''आर्य-समाज प्रारम्भ से ही उग्रवादी सम्प्रदाय था। उसका मुख्य स्रोत तीव्र राष्ट्रीयता था।'' इस प्रकार आर्य समाज ने हिन्दू धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता का दावा करके हिन्दू सम्मान के गौरव की रक्षा की तथा हिन्दू जाति में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान को जन्म दिया। इससे भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में सहयोग मिला।

इस प्रकार आर्य समाज ने भारत को धर्म, समाज, शिक्षा और राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में बहुत कुछ प्रदान किया है। इसी कारण ब्रह्म समाज आन्दोलन प्राय: समाप्त हो गया है। रामकृष्ण मिशन का प्रभाव समाज के शिक्षित और उदार-वर्ग तक सीमित है, आर्य समाज अभी तक न केवल एक जीवित आन्दोलन है, अपितु हमारे समाज के छोटे और निम्न से निम्न वर्ग तक उसकी पहुँच है और एक सीमित क्षेत्र में आज भी उसे एक जन-आन्दोलन स्वीकार किया जा सकता है।

3. उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक चेतना में स्वामी विवेकानन्द के योगदान का उल्लेख कीजिए।

उ०– स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मवाद को पुनर्जन्म देकर हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करके उसे ईसाई तथा इस्लाम के

आक्रमणों एवं प्रभाव से बचाया। स्वामी जी राष्ट्रीयता के पोषक थे। उन्होंने देश के नवयुवकों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना का विकास किया और उन्हें ''उठो जागो और तब तक न रूको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो'' का सन्देश दिया।

1893 ई० में, वे शिकागो में सर्व-धर्म विश्व सम्मेलन में भाग लेने गए। वहाँ उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी में अपने विचारों और सिद्धान्तों को व्यक्त किया, जिसका वहाँ उपस्थित सभी धर्मों के लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा- ''हिन्दू धर्म अति महान् है, क्योंकि यह सभी धर्मों की अच्छाइयों को समान रूप से स्वीकार करता है।'' उन्होंने अमेरिकी लोगों की नीति की आलोचना करते हुए लिखा है— ''आप लोग अपने ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए तो भारत में असीम धन व्यय कर सकते हैं, लेकिन भारतवासियों की गरीबी और भुखमरी को दूर करने के लिए कुछ नहीं कर सकते। भारत में धर्म का अभाव नहीं, धन का अभाव है।'' उन्होंने गर्वपूर्वक घोषणा की थी कि यदि विश्वमण्डल के किसी भू-क्षेत्र को पुण्यभूमि कहा जा सकता है, तो निश्चित रूप से वह भारतवर्ष ही है।

विदेशों से लौटने के बाद विवेकानन्द ने समाजसेवा को व्यवस्थित रूप देने के उद्देश्य से 'रामकृष्ण मिशन' नाम से एक नया संगठन 5 मई 1897 में स्थापित किया। इस संगठन की ओर से दुर्भिक्ष, महामारी, बाढ़ आदि आपदाओं के समय सहायता कार्य किये गये। विवेकानन्द ने बताया कि मोक्ष संन्यास से नहीं बल्कि मानव मात्र की सेवा से प्राप्त होता है। उनका तर्क था कि शिक्षा सामाजिक बुराईयों को दूर करने का सबसे सशक्त माध्यम है। सत्य के बारे में उनका मानना था कि ''किसी बात पर यह सोचकर विश्वास न करो कि तुमने उसको किसी पुस्तक में पढ़ा है अथवा किसी ने ऐसा कहा है, अपितु स्वयं सत्य की खोज करो।''

विवेकानन्द ने कभी भी सीधे तौर पर ब्रिटिश नीतियों के विरोध में अथवा राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में प्रचार नहीं किया लेकिन सुधार, एकता, जागरण और स्वतन्त्रता के प्रति उनके सभी प्रवचनों के परिणामस्वरूप ही राष्ट्रवाद की सशक्त भावना प्रवाहित हुई। उन्होंने शिक्षित भारतीयों को सम्बोधित करते हुए कहा, ''जब तक भारत में करोड़ों लोग भूख और अज्ञान से ग्रसित होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तब तक मैं प्रत्येक उस व्यक्ति को देशद्रोही समझूँगा, जो उनके खर्च से शिक्षित होने के बाद उनके प्रति तनिक भी ध्यान नहीं देता।'' रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विवेकानन्द को 'सृजन की प्रतिभा' कहा है। वे अमेरिका में 'तूफानी हिन्दू' के नाम से प्रसिद्ध हुए। सुभाषचन्द्र बोस ने लिखा है कि ''उनमें बुद्ध का हृदय और शंकराचार्य की बुद्धि थी तथा वह आधुनिक भारत के निर्माता थे।''

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म, संस्कृति, सभ्यता, गौरव, समाज और राष्ट्रीयता के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस कारण रामकृष्णन मिशन, भारतीय पुनरुद्धार आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन गया और आधुनिक समय में वह विभिन्न क्षेत्रों में भारत की सेवा कर रहा है।

4. ''राजा राममोहन राय भारतीय पुनर्जागरण के जनक थे।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

5. स्वामी विवेकानन्द व उनके योगदान पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– **स्वामी विवेकानन्द–** स्वामी विवेकानन्द का वास्तविक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनका जन्म 12 जनवरी, 1863 ई० को कलकत्ता में एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही नरेन्द्रनाथ दत्त प्रत्येक बात को तर्क के आधार पर समझकर ही स्वीकार करते थे। छात्र जीवन में वे पश्चिमी विचार धारा के कट्टर थे। लेकिन भारतीय संस्कृति के अग्रदूत रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आने पर उनकी विचारधारा बदल गई। वे इस निर्णय पर पहुँचे कि सत्य या ईश्वर को जानने का सच्चा मार्ग, अनुरागपूर्ण साधना का मार्ग ही है। अपनी इस विचारधारा के कारण, वे रामकृष्ण परमहंस के प्रिय शिष्य बन गए।

स्वामी विवेकानन्द के योगदान– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 3 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

6. उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में समाज-सुधार आन्दोलनों की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– लगभग दो सौ वर्षों (1757-1947 ई०) तक भारत में ब्रिटिश शासन रहा। सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में अंग्रेज भारतीयों से बहुत आगे थे। यूरोप में पुनर्जागरण तथा औद्योगिक क्रान्ति ने कला, विज्ञान तथा साहित्य के क्षेत्र में दूरगामी और क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया था। इसलिए जब भारतवासी अंग्रेजों के सम्पर्क में आए तो वे भी पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। पहले तो पश्चिम सभ्यता के सम्पर्क से भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई, फिर धर्म-सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ और फिर विदेशी शासन से मुक्ति पाने हेतु भारत के लोग अंग्रेजों से संघर्ष करने के लिए प्रेरित हुए।

भारत पर अंग्रेजों की विजय से भारत का काफी भाग प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत आ गया। इससे यह सम्पर्क और दृढ़ हो गया। इसके अतिरिक्त भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रवेश ने भी पश्चिमी विज्ञान, दर्शन, साहित्य और चिन्तन से भारतीयों का परिचय कराया। इसने उन बन्धनों को तोड़ दिया, जिन्होंने पश्चिमी दुनिया के दरवाजे भारत के लिए बन्द किए हुए थे।

प्रारम्भ से ही भारतीय समाज एवं संस्कृति, परिवर्तन और निरन्तरता की प्रक्रिया से गुजरती रही है। 19 वीं शताब्दी के दौरान भारत सामाजिक-धार्मिक सुधारों और सांस्कृतिक पुनरुद्धार के एक और चरण से गुजरा। इस समय तक भारतीय यूरोपियनों और उनके माध्यम से उनकी संस्कृति के सम्पर्क में आ चुके थे। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीयों में राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई, जिसके फलस्वरूप देश में पहले धर्म व सुधार आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ।

ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों, विशेष रूप से शिक्षा और धर्म प्रचार ने भी ईसाई धर्म के आन्तरिक सिद्धान्तों की ओर बहुत-से भारतीयों को आकर्षित किया। इससे भारतीय लोगों का जीवन और चिन्तन धीरे-धीरे पश्चिमी संस्कृति और विचारों से प्रभावित हुआ। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव प्रचलित भारतीय परम्पराओं, विश्वासों और रिवाजों में देखा जा सकता है। अनेक प्रबुद्ध हिन्दुओं ने यह जान लिया कि हिन्दू और ईसाई धर्म बाहरी रूपों में एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी आन्तरिक मूल्यों में एक जैसे हैं।

इंग्लैण्ड में इस समय तक पूर्ण लोकतन्त्र की स्थापना हो चुकी थी। इसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। 1857 ई० की क्रान्ति के बाद हमारे देश में भी व्यवस्थापिका की स्थापना होने लगी और स्वायत्त शासन विकसित होने लगा। यह संवैधानिक विकास निरन्तर होता रहा और धीरे-धीरे देश लोकतन्त्र की ओर बढ़ता गया। अन्त में, हमारे देश में पूर्ण रूप से लोकतन्त्रीय शासन-व्यवस्था स्थापित हो गई।

इस प्रकार, अपने धर्म और सदियों पुरानी संस्कृति की महान् परम्पराओं को छोड़े बिना प्रबुद्ध भारतीयों ने अपने समाज को अन्धविश्वासों से मुक्त कराने के विषय में गम्भीरता से विचार किया। अत: भारतीय इतिहास में 19 वीं शताब्दी महान् मानसिक चिन्तन का युग माना जाता है। इसने अनेक सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों को जन्म दिया, जिन्होंने नए भारत के उदय को सम्भव बनाया। इन आन्दोलनों ने भारत के समाज, धर्म, साहित्य और राजनीतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया। इसी भावना और इससे प्रभावित विभिन्न प्रयत्नों को हम भारतीय पुनरुद्धार आन्दोलन के नाम से पुकारते हैं।

भारतीय पुनर्जागरण ने यूरोप की भाँति धर्म, समाज, कला, साहित्य आदि को प्रभावित किया। भारतीय सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता, प्रगति तथा पश्चिमी सभ्यता के सामने टिकने का साहस ही भारतीय पुनर्जागरण का आधार था। भारतीय जीवन का चहुँमुखी विकास उसका स्वरूप था तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक, धार्मिक एवं कलात्मक क्षेत्र में नवीन चेतना की उत्पत्ति उसका परिणाम था। आरम्भ में पुनरुद्धार आन्दोलन एक बौद्धिक परिवर्तन था, बाद में वह अनेक सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों का आधार बना और अन्तत: भारतीय जीवन का प्रत्येक अंग इससे अछूता न रहा।

7. ''ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज का प्रमुख उद्देश्य समाज सुधार था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– 'बह्म समाज' की स्थापना 20 अगस्त, 1828 ई० में राजा राममोहन राय द्वारा की गई। मूर्तिपूजा का विरोध, एकेश्वरवाद में अटल विश्वास, बुद्धिवादी दृष्टिकोण तथा मानव धर्म आदि ब्रह्म समाज के प्रमुख सिद्धान्त थे। उन्नीसवीं शताब्दी में अन्धविश्वास रूढ़ियों, ढोंगों एवं आडम्बरों ने हिन्दुत्व के सच्चे स्वरूप को ढ़क रखा था। ईसाई पादरी, हिन्दू समाज के अडम्बरों की आलोचना कर रहे थे। समाज में जाति प्रथा, छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा विवाह, निषेध, अन्धविश्वास, शिक्षा का अभाव आदि अनेक बुराइयाँ व्याप्त थी। ब्रह्म समाज ने इन सब बुराइयों का विरोध कर समाज की दशा सुधारने का महत्वपूर्ण कार्य किया। ब्रह्म समाज ने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया और सती प्रथा एवं विधवा विवाह निषेध को गैर कानूनी घोषित कर इनके विरुद्ध कड़ा कानून बनवा दिया।

महाराष्ट्र में हिन्दू समाज और धर्म सुधार लाने का सबसे अधिक सफल प्रयास 'प्रार्थना समाज' ने किया। जिसकी स्थापना डॉ० आत्माराम पाण्डुरंग ने मार्च, 1867 ई० में बम्बई में की। प्रार्थना समाज का विकास ब्रह्म समाज की छत्रछाया में हुआ था। प्रार्थना समाज ने जाति-व्यवस्था एवं अस्पृशयता की निन्दा की, अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित किया। स्त्री-पुरुष के विवाह में वृद्धि, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन, विधवा विवाह का समर्थन प्रार्थना समाज का मुख्य ध्येय था। विधवाओं का पुनर्वास तथा बाल विधवा का संरक्षण आदि का प्रयास भी प्रार्थना समाज के द्वारा किया गया। इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते है कि ''ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज का प्रमुख उद्देश्य समाज सुधार था।''

8. ''उन्नीसवीं शताब्दी सामाजिक एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण का युग था।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 6 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

9. ''आर्य समाज ने भारत को धर्म, शिक्षा एवं राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में बहुत कुछ प्रदान किया।'' स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

10. भारत में मुस्लिम आन्दोलनों का क्या प्रभाव पड़ा? विस्तृत रूप से समझाइए।

उ०– हिन्दू आन्दोलन की प्रतिक्रियास्वरूप, मुस्लिम समाज में भी अनेक सुधार आन्दोलनों की शुरूआत हुई। इन आन्दोलनों का उद्देश्य मुस्लिम समाज और इस्लाम धर्म में प्रविष्ट हो गई बुराइयों को दूर करना था। इन आन्दोलनों ने जहाँ सामाजिक बुराइयों को दूर करने में योगदान दिया, वहीं भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना के उत्थान में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत के प्रमुख मुस्लिम आन्दोलन निम्नलिखित थे—

(i) **अलीगढ़ आन्दोलन–** इस आन्दोलन के प्रवर्तक सर सैयद अहमद खाँ (1817-1893 ई०) थे। अलीगढ़ आन्दोलन ने मुस्लिमों को जागृत करने में पर्याप्त सहयोग दिया। सर सैयद अमहद खाँ ने सरकार और मुसलमानों के बीच की दूरी को समाप्त करने का प्रयत्न किया। वे न्याय विभाग में एक उच्च पद पर आसीन थे। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अंग्रेजों से सहानुभूति पाने के लिए उनसे मिल-जुलकर कार्य करना चाहिए और राजभक्ति का प्रदर्शन करना चाहिए। ऐसा कर उन्होंने अंग्रेजों की सहानुभूति प्राप्त कर ली। उन्होंने 1875 ई० में 'मोहम्मडन एंग्लो-ओरियण्टल कॉलेज' की स्थापना की।

यही कॉलेज आगे चलकर 1920 ई० में 'अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय' के रूप में प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने नारी शिक्षा का समर्थन एवं पर्दा प्रथा का विरोध किया। इस प्रकार सैयद अहमद खाँ ने मुस्लिमों की बहुत सेवा की और उनमें राजनीतिक चेतना जगाई। अलीगढ़ आन्दोलन के अन्य प्रमुख नेता चिराग अली, अल्ताफ हुसैन, नजीर अहमद तथा मौलाना शिवली नोगानी थे।

(ii) **वहाबी आन्दोलन–** भारत का वहाबी आन्दोलन अरब के वहाबी आन्दोलन से प्रभावित था। भारत में इसका प्रचलन सैयद अहमद बरेलवी (1786-1831 ई०) ने किया। इस आन्दोलन ने मुस्लिम धर्म में व्याप्त कुरीतियों की ओर मुसलमान वर्ग का ध्यान आकर्षित किया। इस आन्दोलन ने पाश्चात्य सभ्यता एवं शिक्षा की कड़ी आलोचना की और भारत में एक बार फिर से मुस्लिम शासन की स्थापना के लिए लोगों को प्रेरित किया। इस आन्दोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे- अपने धर्म का प्रचार एवं मुस्लिम समाज में सुधार करना। इसके परिणामस्वरूप अनेक लोग इस धर्म की ओर आकर्षित हुए और बहुतों ने इस धर्म को अंगीकार भी किया।

(iii) **अहमदिया आन्दोलन–** इस आन्दोलन के जन्मदाता मिर्जा गुलाम मुहम्मद (1838-1908 ई०) थे। इन्होंने कादियानी सम्प्रदाय की स्थापना की थी। इनका कथन था कि वे मुसलमानों के पैगम्बर, ईसाइयों के मसीहा और हिन्दुओं के अवतार हैं। वे पर्दा प्रथा, बहुविवाह तथा तलाक जैसी कुरीतियों का घोर विरोध करते थे। इनकी पुस्तक का नाम '*बराहीन-ए-अहमदियाँ*' है।

(iv) **देवबन्द आन्दोलन–** एक मुसलमान उलेमा, जो प्राचीन साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान थे, ने देवबन्द आन्दोलन चलाया। उन्होंने मुहम्मद कासिम तथा रशीद अहमद गंगोही के नेतृत्व में देवबन्द (सहारनपुर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में शिक्षण संस्था की स्थापना की। इस आन्दोलन के दो मुख्य उद्देश्य रहे— कुरान तथा हदीस की शिक्षाओं का प्रसार करना और विदेशी शासकों के विरुद्ध 'जेहाद' की भावना को बनाए रखना। देवबन्द आन्दोलन ने 1885 ई० में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का स्वागत किया। इनके अतिरिक्त 'नदवा-उल-उलूम' (लखनऊ, 1894 ई०, मौलाना शिवली नोगानी), 'महल-ए-हदीस' (पंजाब, मौलाना सैयद नजीर हुसैन) नामक मुस्लिम संस्थाओं ने भी मुस्लिम समाज को जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

योगदान– इन मुस्लिम आन्दोलनों ने मुसलमानों में राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना की वृद्धि की; जिसके परिणामस्वरूप मुसलमानों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ। उन्होंने पाश्चात्य रीति-रिवाजों को देखा और उसके प्रभावस्वरूप मुस्लिम समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को समाप्त कर दिया। इन आन्दोलनों के नेताओं ने नारी शिक्षा की ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया, परन्तु मुसलमानों में इस चेतना के जागने से साम्प्रदायिकता की भावना प्रबल हो गई और देश में हिन्दू-मुसलमानों के मध्य झगड़े होने लगे।

द्वितीय प्रश्न-पत्र

इकाई-1

11

1857 ई० की क्रान्ति- स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष
(Revolution of 1857 AD : Struggle for Independence)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 8 अप्रैल, 1857 ई०　2. 10 मई, 1857 ई०　3. 1858 ई०　4. 1859 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 193 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 193 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 194 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 194 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1857 ई० की क्रान्ति के स्वरूप की विवेचना कीजिए।

उ०– सन् 1857 ई० में अंग्रेजी शासकों की अत्याचारपूर्ण तथा दमनकारी नीति के विरुद्ध भारतीयों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए सशस्त्र क्रान्ति की, जिसे भारतीय इतिहास में 1857 की महाक्रान्ति, 1857 ई० की क्रान्ति, प्रथम स्वाधीनता संग्राम तथा सैनिक क्रान्ति आदि नामों से जाना जाता है। कुछ विद्वान 1857 की क्रान्ति को सैनिक क्रान्ति मानते हैं क्योंकि भारतीय सैनिक अंग्रेज अफसरों के व्यवहार से असन्तुष्ट थे इसलिए उन्होंने सशस्त्र क्रान्ति की थी। परन्तु कुछ विद्वानों ने इसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम कहा क्योंकि इस क्रान्ति का प्रारम्भ तो सैनिकों ने किया किन्तु शीघ्र ही इसने जन-क्रान्ति का रूप धारण कर लिया था। इस क्रान्ति में हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही समान रूप से भाग लिया था। आम जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध व्यापक असन्तोष था, केवल किसी अनुकूल अवसर की आवश्यकता थी, जिसे 1857 ई० की सैनिक क्रान्ति ने पूर्ण किया।

2. 1857 ई० की क्रान्ति की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए।

उ०– सन् 1857 ई० की क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण भारत में फैला परन्तु यह एक जन आन्दोलन नहीं बन सका। इसकी असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) अनुशासन तथा संगठन का अभाव
(ii) योग्य नेतृत्व का अभाव
(iii) रचनात्मक कार्यक्रम का अभाव
(iv) अंग्रेजों के भारतीय सहायक
(v) जनता के सहयोग की कमी
(vi) क्रान्ति का सामन्ती स्वरूप
(vii) क्रान्ति का स्थानीय स्वभाव
(viii) समय से पूर्व क्रान्ति का प्रारम्भ

3. 1857 ई० की क्रान्ति का तात्कालिक परिणाम क्या था?

उ०– 1857 ई० की क्रान्ति भारतीय इतिहास में एक युग परिवर्तनकारी घटना थी। यद्यपि यह क्रान्ति असफल रही, किन्तु इसके परिणाम अभूतपूर्व, व्यापक और स्थाई सिद्ध हुए। यह क्रान्ति भारतीय शासन के स्वरूप और देश के भावी विकास में मौलिक परिवर्तन लाई। संवैधानिक दृष्टि से मुगल साम्राज्य हमेशा के लिए समाप्त हो गया तथा भारत में महारानी विक्टोरिया का सीधा शासन स्थापित हो गया था। इसने भारतीय राजनीति, प्रशासन, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था एवं राष्ट्रीय भावना को गहरे रूप से प्रभावित किया। इस क्रान्ति के प्रमुख परिणाम निम्नवत् हैं—

(i) महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र एवं कम्पनी शासन का अन्त
(ii) सेना का पुनर्गठन
(iii) 'फूट डालो और राज करो' की नीति का जन्म
(iv) भारतीय रियासतों के प्रति पुरस्कार एवं दण्ड की नीति
(v) धार्मिक प्रभाव
(vi) भारतीय राष्ट्रवाद का उदय

4. भारतीयों को क्यों लगता था कि अंग्रेज उन्हें ईसाई बनाना चाहते हैं?

उ०– अंग्रेज व्यापारियों के साथ ईसाई धर्म प्रचारक भी भारत में आ बसे। सन् 1850 ई० में पास किए गए धार्मिक अयोग्यता अधिनियम द्वारा लार्ड डलहौजी ने हिन्दुओं के उत्तराधिकारी नियमों में परिवर्तन किया। अभी तक यह नियम था कि धर्म परिवर्तन करने की दशा में व्यक्ति अपनी पैतृक सम्पत्ति से वंचित हो जाता था परन्तु ईसाई धर्म अपनाने पर वह व्यक्ति अपनी पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी बना रह सकता था। सन् 1813 ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा ईसाई मिशनरियों को भारत में धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता दी गई थी जिससे वे खुले रूप में हिन्दू देवी-देवताओं व मुस्लिम पैगम्बरों की निन्दा करने लगे। ईसाई धर्म अपनाने वाले व्यक्तियों को उच्च पदों पर प्राथमिकता मिलती थी। बेरोजगारों, अनाथों, वृद्धों व विधवाओं को अनेक प्रलोभन देकर बलपूर्वक ईसाई बना लिया गया था। इस ईसाईयत के माहौल में भारतीयों को लगता था कि उन्हें ईसाई बनाया जा रहा है।

5. 1857 ई० की क्रान्ति का भारत के इतिहास में क्या महत्व है?

उ०– 1857 ई० की क्रान्ति भारतीय इतिहास की गौरवमीय गाथा है। यह क्रान्ति छल, कपट, नीचता एवं शोषण से स्थापित साम्राज्य के विरुद्ध था। सैनिक विद्रोह के रूप में आरम्भ हुई इस क्रान्ति ने समूचे भारत की जनता, कृषकों, मजदूरों, हस्त-शिल्पियों, जनजातियों, सैनिकों और रजवाड़ों को सम्मिलित कर लिया। इस क्रान्ति से भारतीय शासन के स्वरूप और देश के भावी विकास में मौलिक परिवर्तन आया। इसने भारतीय राजनीति, प्रशासन, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था एवं राष्ट्रीयवाद की भावना को प्रभावित किया।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. क्या 1857 ई० का विद्रोह भारत को अंग्रेजों के आधिपत्य से मुक्त कराने का सच्चा प्रयास था? इस विप्लव के क्या परिणाम हुए?

उ०– 1857 ई० के विद्रोह में भाग लेने वाले सभी विद्रोहियों तथा जनसाधारण का एक ही लक्ष्य था— अंग्रेजों को भारत से निकालना। उनमें अंग्रेजों के विरुद्ध सर्वव्यापी रोष था। तत्कालीन साहित्य जो समाज का दर्पण माना जाता है, में भी अंग्रेज विरोधी भावनाएँ प्रदर्शित की गई थीं। इस प्रकार 1857 ई० के संघर्ष में नि:सन्देह जनभावना अंग्रेजों के विरुद्ध थी। विद्रोहियों को संगठित करने

वाला एकमात्र तत्त्व विदेशी शासन को समाप्त करने की भावना थी। अत: इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि 1857 ई० का विद्रोह शासन को समाप्त करने के लिए हुआ था।

1857 ई० के विद्रोह के परिणाम– 1857 ई० का विद्रोह भारतीय इतिहास में एक युग परिवर्तनकारी घटना थी। यद्यपि यह विद्रोह असफल रहा, किन्तु इसके परिणाम अभूतपूर्व, व्यापक और स्थायी सिद्ध हुए। **डॉ० मजूमदार** ने लिखा है कि ''सन् 1857 ई० का महान् विस्फोट भारतीय शासन के स्वरूप और देश के भावी विकास में मौलिक परिवर्तन लाया।'' इसके द्वारा संवैधानिक दृष्टि से मुगल साम्राज्य हमेशा के लिए समाप्त हो गया। भारत में एक शताब्दी से शासन करने वाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भी समाप्ति हो गई। भारत में महारानी विक्टोरिया का सीधा शासन स्थापित हो गया। इसने भारतीय राजनीति, प्रशासन, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था एवं राष्ट्रीय भावना को गहरे रूप से प्रभावित किया। इस सम्बन्ध में **लॉर्ड क्रोमर** ने कहा था, ''काश कि अंग्रेज युवा पीढ़ी भारतीय विद्रोह के इतिहास को पढ़े, ध्यान दे, सीखे और मनन करे। इसमें बहुत-से पाठ और चेतावनियाँ निहित हैं।'' इस क्रान्ति के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हैं–

(i) **महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र और कम्पनी शासन का अन्त–** इस विद्रोह के परिणामस्वरूप महारानी विक्टोरिया के घोषणा-पत्र के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया गया और भारत के शासन को सीधे शाही ताज (क्राउन) के अन्तर्गत लिए जाने की घोषणा की गई। इसमें एक भारतीय राज्य सचिव का प्रावधान भी किया गया और उसकी सहायता के लिए 15 सदस्यों की सलाह समिति बनाई जानी थी, जिसमें से 8 सरकार द्वारा मनोनीत होने थे और शेष 7 कोर्ट ऑफ डायेक्टर्स द्वारा चुने जाने थे। यह उद्घोषणा 1 नवम्बर, 1858 को इलाहाबाद में लॉर्ड कैनिंग द्वारा की गई। इस घोषणा के तहत लॉर्ड कैनिंग की भारत में पुनर्नियुक्ति कर उसे शासन का सर्वोच्च अधिकारी बनाया गया। अब उसे गवर्नर जनरल के साथ-साथ वायसराय भी कहा जाने लगा। इस घोषणा में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का क्षेत्रीय विस्तार न करने का आश्वासन दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के अधिकारों, सम्मानों व पदों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की तथा गोद लेने की प्रथा को स्वीकार किया गया। महारानी के इस घोषणा-पत्र को भारतीय स्वतन्त्रता का मेग्नाकार्टा (अधिकार देने वाला मूल कानून) कहा जाता है। वास्तव में इस घोषणा से भारतीय जनजीवन को उन्नत करने में कोई लाभ न हुआ, बल्कि व्यवहार में सरकार की नीति आक्रामक, हिंसात्मक, तर्क-विरोधी और पक्षपातपूर्ण रही।

(ii) **सेना का पुनर्गठन–** अंग्रेजों की सेना में भारी संख्या में भारतीय थे। इन्हीं भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति की थी। अत: अब अंग्रेजी सेना में भारतीय सैनिकों की संख्या भी कम कर दी गई तथा उनकी 77वीं रेजीमेन्ट भंग कर दी गई। विद्रोह से पहले यूरोपीय सैनिकों की संख्या जो 40,000 थी अब 65,000 कर दी गई और भारतीय सेना की संख्या जो पहले 2,38,000 थी अब 1,40,000 निश्चित कर दी गई। तोपखाने पर पूर्णत: अंग्रेजी नियन्त्रण कर दिया गया। भारतीय सैनिकों के पुनर्गठन में जातीयता एवं साम्प्रदायिकता आदि तत्वों को ध्यान में रखकर भारतीय रेजीमेन्टों को गोरखा, पठान, डोगरा, राजपूत, सिक्ख, मराठे आदि में बाँट दिया गया। इस सम्बन्ध में एक अंग्रेज अधिकारी का मत था कि, ''भारत में ऐसी सेना होनी चाहिए जो वास्तव में भारतीय न हो।'' भारतीयों को सूबेदार की रैंक से ऊपर कोई रैंक नहीं दिए जाने का भी निर्णय किया गया।

(iii) **'फूट डालो और राज करो' की नीति का जन्म–** अंग्रेजों ने मुसलमानों के प्रति घृणा की नीति अपनाते हुए दिल्ली की जामा मस्जिद और फतेहपुर मस्जिद मुसलमानों की नमाज के लिए बन्द कर दी। मुसलमानों को राजनीतिक व आर्थिक लाभ के पदों से वंचित कर सेना, प्रशासनिक सेवाओं और दरबार से उनका वर्चस्व समाप्त कर दिया गया। इस बारे में **लॉर्ड एलनबरो** ने कहा था, ''मैं इस विश्वास से आँखें नहीं मूँद सकता कि यह कौम (मुसलमान) मूलत: हमारी दुश्मन है और इसलिए हमारी सच्ची नीति हिन्दुओं से मित्रता की है।'' इस प्रकार अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति का पालन कर दोनों जातियों में वैमनस्य पैदा कर दिया, जो राष्ट्रीय आन्दोलन में घातक सिद्ध हुई और जिसके अन्तिम परिणाम स्वरूप देश का विभाजन हुआ।

(iv) **भारतीय रियासतों के प्रति पुरस्कार और दण्ड नीति–** 1857 ई० के विद्रोह में ग्वालियर, हैदराबाद, नाभा और जींद के शासकों ने पूरी तरह से अंग्रेजों की मदद की थी। जिसे ब्रिटिश सरकार कायम रखना चाहती थी। विक्टोरिया के घोषणा-पत्र में वफादार राजाओं, नवाबों, जमींदारों को पुरष्कृत करने और विद्रोहियों को सजा देने की नीति अपनाई गई। 1876 ई० में ब्रिटिश संसद ने एक 'रॉयल टाइटल्स' अधिनियम पास कर महारानी विक्टोरिया को भारत में समस्त ब्रिटिश प्रदेश और भारतीय रियासतों सहित भारत की 'साम्राज्ञी' की उपाधि से विभूषित किया।

(v) **आर्थिक प्रभाव–** विद्रोह के पश्चात अंग्रेजों द्वारा नियन्त्रित चाय, कपास, कॉफी, तम्बाकू आदि के व्यापार को तो बढ़ावा दिया गया किन्तु भारतीय कुटीर उद्योगों को संरक्षण नहीं दिया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत सरकार पर 3 करोड़ 60 लाख पौण्ड का कर्ज छोड़ गई, जिसकी पूर्ति सरकार ने भारतीयों का शोषण करके ही की। इस शोषण से देश निरन्तर गरीब होता गया।

(vi) **भारतीय राष्ट्रवाद का उदय–** 1857 ई० के विद्रोह की विफलता ने भारतीयों को यह दिखा दिया कि सिर्फ सेना और शक्ति के बल पर ही अंग्रेजों से मुक्ति नहीं मिल सकती थी, बल्कि इसके लिए सभी वर्गों का सहयोग, समर्थन और राष्ट्रीय

भावना आवश्यक थी। इसलिए 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इस दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिए गए। 1855 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से इस विरोध को एक निश्चित दिशा भी मिल गई।

2. 1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम के स्वरूप का विवेचन कीजिए। इसकी असफलता के क्या कारण थे?

उ०– 1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम का स्वरूप– उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जब शिक्षित भारतीयों को फ्रांस की क्रान्ति, यूनान के स्वाधीनता संग्राम, इटली तथा जर्मनी के एकीकरण आदि बातों की जानकारी मिली, तो उनमें भी अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाने की भावना उत्पन्न हो गई। अंग्रेजों की दमन व शोषण-नीति से तो भारतीय जनता पहले से ही रुष्ट थी। जनता ने अनेक छोटी-छोटी क्रान्तियों द्वारा अपने असन्तोष का प्रदर्शन भी किया था। लेकिन अंग्रेज सरकार सैनिक बल से इन क्रान्तियों पर काबू पाने में सफल रही। परन्तु 1806 ई० वेल्लौर (कर्नाटक) में हुई सैनिक क्रान्ति ब्रिटिश शासन के विरुद्ध की गई पहली गम्भीर क्रान्ति थी। 1796 ई० में अंग्रेज अधिकारियों ने भारतीय सैनिकों को आदेश दिया कि वे दाढ़ी न रखें, तिलक न लगाएँ, कानों में बालियाँ न पहने और पगड़ी के स्थान पर टोप पहनें। इस आदेश से रुष्ट होकर भारतीय सैनिकों ने क्रान्ति कर दी। 10 जुलाई, 1806 ई० को हुई इस क्रान्ति का दमन करने में अंग्रेजों को सफलता अवश्य मिल गई, परन्तु यह क्रान्ति उस महाक्रान्ति की शुरुआत थी, जो 1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम के रूप में प्रकट हुई।

सन् 1857 ई० में अंग्रेजी शासकों की अत्याचारपूर्ण तथा दमनकारी नीति के विरुद्ध भारतीयों ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए सशस्त्र क्रान्ति की, जिसे भारतीय इतिहास में 1857 ई० की महाक्रान्ति, 1857 ई० की क्रान्ति, प्रथम स्वाधीनता संग्राम तथा सैनिक क्रान्ति आदि नामों से पुकारा जाता है।

सर जॉन लॉरेंस के अनुसार, यह एक सैनिक क्रान्ति थी। दूसरी ओर भारतीय विद्वानों वीर सावरकर, अशोक मेहता, डा० सरकार व दत्ता आदि ने इसे भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम और प्रथम राष्ट्रीय आन्दोलन बताया है। अत: स्वाधीनता संग्राम के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ प्रख्यात विद्वानों के विभिन्न मतों का अध्ययन करना आवश्यक है—

(i) *'सैनिक क्रान्ति' थी–* जो विद्वान इसे सैनिक क्रान्ति स्वीकार करते हैं, उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(क) इस क्रान्ति को राजाओं और आम जनता का सहयोग नहीं मिला था, क्योंकि यह केवल असन्तुष्ट सैनिकों द्वारा की गई क्रान्ति थी।

(ख) यह क्रान्ति किसी संगठित योजना का परिणाम नहीं थी।

(ग) इस क्रान्ति को ब्रिटिश सरकार ने सफलतापूर्वक दबा दिया था। यदि यह राष्ट्रीय क्रान्ति होती तो इसे दबाना सरल कार्य न होता।

(घ) भारतीय सैनिक अंग्रेज अफसरों के व्यवहार से बहुत असन्तुष्ट थे इसलिए उन्होंने सशस्त्र क्रान्ति की थी।

पी०ई० रॉबर्ट्स ने लिखा है— ''यह केवल एक सैनिक क्रान्ति थी, जिसका तत्कालीन कारण कारतूस वाली घटना थी। इसका किसी पूर्वगामी षड्यन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं था।''

सर जॉन सीले के अनुसार— ''यह पूर्णतया आन्तरिक क्रान्ति थी, इसका न कोई देशीय नेता था और न इसे सम्पूर्ण जनता का समर्थन ही प्राप्त था।''

विंसेण्ट स्मिथ ने लिखा है— ''यह क्रान्ति मुख्य रूप से बंगाल की सेना द्वारा की गई क्रान्ति थी, किन्तु यह सैनिकों तक ही सीमित न रही और शीघ्र ही इसका प्रसार जनता तक हो गया। जनता में असन्तोष और बैचेनी फैली ही थी अत: जनसाधारण ने क्रान्तिकारियों का साथ दिया।''

इस प्रकार, इसे राष्ट्रीय क्रान्ति न मानकर कुछ वर्गों के असन्तोष का परिणाम माना जाता है।

(ii) प्रथम राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम था– कुछ भारतीय विद्वानों का मत है कि इस क्रान्ति का प्रारम्भ तो सैनिकों ने किया, किन्तु शीघ्र ही इसने जन-क्रान्ति का रूप धारण कर लिया था। इस क्रान्ति में हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही समान रूप से भाग लिया था। वास्तव में, आम जनता में अंग्रेजों के विरुद्ध व्यापक असन्तोष पहले ही विद्यमान था, केवल किसी अनुकूल अवसर की आवश्यकता थी, जिसको 1857 ई० की सैनिक क्रान्ति ने पूर्ण कर दिया।

(क) **डा० एस०एन० सेन** का कहना है— ''यद्यपि इसका प्रारम्भ धार्मिक मनोभावनाओं के संग्रह के रूप में हुआ था, तथापि इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि क्रान्तिकारी विदेशी सरकार से मुक्त होना चाहते थे और पुरानी व्यवस्था लाना चाहते थे, जिसका नेतृत्व दिल्ली के बादशाह ने किया था।''

(ख) **जवाहरलाल नेहरू** ने लिखा है— ''यह केवल एक सैनिक क्रान्ति ही नहीं थी। यह भारत में शीघ्र ही फैल गई तथा इसने जनजीवन और स्वाधीनता संग्राम का रूप धारण किया।''

(ग) **अशोक मेहता** व **वृन्दावनलाल वर्मा** ने इसे मात्र सैनिक क्रान्ति ही नहीं माना है। उनके मतानुसार यह राष्ट्रीय क्रान्ति ही थी।

1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के कारण– 1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के कारणों के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम 1857 ई० के कारणों एवं परिणामों की विवेचना कीजिए।

उ०– ऐंग्लो-इण्डियन इतिहासकारों ने सैनिक असन्तोषों तथा चर्बी वाले कारतूसों को ही 1857 ई० के महान् विद्रोह का मुख्य तथा महत्वपूर्ण कारण बताया है, परन्तु आधुनिक भारतीय इतिहासकारों ने यह सिद्ध कर दिया कि चर्बी वाले कारतूस ही इस विद्रोह का एकमात्र कारण अथवा सबसे प्रमुख कारण नहीं था। विद्रोह के कारण अधिक गूढ़ थे और वे सब जून, 1757 के प्लासी के युद्ध से 29 मार्च, 1857 ई० को मंगल पाण्डे द्वारा अंग्रेज अधिकारी की हत्या तक के अंग्रेजी प्रशासन के 100 वर्ष के इतिहास में निहित हैं। चर्बी वाले कारतूस और सैनिकों का विद्रोह तो केवल एक चिंगारी थी, जिसने उन समस्त विस्फोटक पदार्थों को जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक कारणों से एकत्रित हुए थे, आग लगा दी और उसने दावानल का रूप धारण कर लिया।

भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के व्यवहार ने भारतीयों में असन्तोष भर दिया था। यह असन्तोष काफी समय से चला आ रहा था व समय-समय पर छोटे-छोटे विद्रोहों के रूप में परिलक्षित भी हुआ। वास्तव में 1857 ई० की क्रान्ति केवल सैनिक क्रान्ति नहीं थी। इस क्रान्ति के कारणों को छह प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) राजनीतिक कारण
(ii) सामाजिक कारण
(iii) धार्मिक कारण
(iv) आर्थिक कारण
(v) सैनिक कारण
(vi) तात्कालिक कारण

(i) राजनीतिक कारण– विद्रोह के अधिकांश राजनीतिक कारण डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति से उत्पन्न हुए थे। डलहौजी के गोद-निषेध सिद्धान्त से भारतीय जनता उत्तेजित हो उठी थी। इस नीति के आधार पर सतारा, नागपुर, झाँसी, सम्भलपुर, जैतपुर, उदयपुर इत्यादि राज्यों को जबरदस्ती अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया। अवध अंग्रेजों का सर्वाधिक घनिष्ठ मित्र राज्य था, परन्तु उसका भी अपहरण कर लिया गया। **जी०बी० मालेसन** ने लिखा है कि ''अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाए जाने और वहाँ पर नई पद्धति आरम्भ किए जाने से मुस्लिम कुलीनतन्त्र, सैनिक वर्ग, सिपाही और किसान सब अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए और अवध असन्तोष का बड़ा भारी केन्द्र बन गया।'' तन्जौर के राजा और कर्नाटक के नवाब के मरने के बाद उनकी उपाधियाँ समाप्त कर दी गईं। 1831 ई० के बाद मैसूर के राजा को भी पेंशन दे दी गई थी और पेशवा बाजीराव द्वितीय को उसके उत्तराधिकार से वंचित कर दिया। इससे भारतीय राजाओं में असन्तोष और आतंक फैल गया। इतना ही नहीं अनेक राज्यों; जैसे नागपुर में शाही सामान की खुली नीलामी की गई, वहाँ की रानियों को अपमानित किया गया। राजाओं की पेंशन बन्द कर दी गईं। पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब व झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई को उनके राज्यों से वंचित कर दिया गया। इससे लोगों को लगा कि जब राजा-महाराजाओं का यह हाल है, तो सामान्य जनता का क्या होगा?

अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह द्वितीय को भी कम्पनी की सरकार ने नहीं बख्शा। लॉर्ड एलनबरो ने बहादुरशाह को भेंट देनी बन्द कर दी थी। सिक्कों पर से उसका नाम हटा दिया गया। डलहौजी ने बहादुरशाह को दिल्ली का लाल किला खाली करने और दिल्ली के बाहर कुतुब (महरौली) में रहने के लिए भी कहा। लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीतियों से क्रान्ति की भावना और उग्र हुई। अपनी नीतियों के कारण लॉर्ड डलहौजी ने जिन राज्यों का अपहरण किया, वहाँ के उच्च पदाधिकारियों को बर्खास्त करके अंग्रेजों को नियुक्त कर दिया। अंग्रेजों की नीति यह थी कि उच्च पदों पर भारतीयों को न बैठाया जाए, इस नीति के कारण लगभग 60,000 सैनिक व राज्य के कर्मचारी बेकार हो गए थे, जो अंग्रेजों के घोर शत्रु बन गए।

इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने कभी-भी भारतीयता को नहीं अपनाया, यद्यपि प्रारम्भ में मुस्लिमों को विदेशी समझा जाता था परन्तु यह भेद धीरे-धीरे खत्म हो गया था व हिन्दू तथा मुस्लिम केवल भारतीय होने की भावना से परस्पर कार्य करते थे। अंग्रेजों ने हमेशा शासक वर्ग की भाँति कार्य किया, वे केवल अपने राष्ट्र (इंग्लैण्ड) के कल्याण के विषय में सोचते थे। भारतीय शासित वर्ग शनैः शनैः निर्धन होता जा रहा था। भारतीय शासित वर्ग, जैसे— जमींदारों आदि ने विद्रोह के समय क्रान्तिकारियों की धन से सहायता की।

(ii) सामाजिक कारण– अंग्रेजों ने भारतीय रीति-रिवाजों की अवहेलना करके अपनी सभ्यता को जबरन भारतीयों पर थोपने का प्रयास किया। भारत के लोगों में अंग्रेजी शिक्षा को लेकर बहुत अविश्वास था। उन्हें लगता था कि अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से सम्भवत: उन्हें ईसाई बनाने के प्रयास कर रहे हैं। अंग्रेजों ने भारतीय धार्मिक शिक्षा का बहिष्कार किया तथा जाति के नियमों का भी उल्लंघन किया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार द्वारा अंग्रेजों ने एक ऐसा वर्ग निर्मित कर दिया, जो भारतीय होते हुए भी भारतीय रीति-रिवाजों को हेय दृष्टि से देखने लगा। अंग्रेजों ने भारतीय रीति-रिवाजों का अपमान व अवहेलना की।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन भारत में अनेक कुप्रथाएँ विद्यमान थीं। अंग्रेजों ने भारतीय समाज को सुधारने के लिए सती-प्रथा, बाल-विवाह, बाल हत्या आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध नियम बनाने प्रारम्भ किए। यद्यपि अंग्रेजों ने इन कुप्रथाओं को हटाकर भारत का कल्याण ही किया तथापि रूढ़िवादी भारतीय अंग्रेजों के प्रत्येक कार्य को संदिग्ध दृष्टि से देखते थे। इन सुधारों ने भारतीयों के असन्तोष में वृद्धि की।

(iii) धार्मिक कारण– अंग्रेज व्यापारियों के साथ ईसाई धर्म प्रचारक भी भारत में आ बसे, यद्यपि अंग्रेजों ने मुस्लिम शासकों की भाँति अपना धर्म किसी पर थोपा नहीं परन्तु सन् 1850 ई० में पास किए गए धार्मिक अयोग्यता अधिनियम द्वारा लार्ड डलहौजी ने हिन्दुओं के उत्तराधिकार नियमों में परिवर्तन किए। अभी तक नियम यह था कि धर्म परिवर्तन करने की दशा में

व्यक्ति अपनी पैतृक सम्पत्ति से वंचित हो जाता था परन्तु ईसाई धर्म को अपनाने पर वह व्यक्ति अपनी पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी बना रह सकता था। सन् 1813 ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा ईसाई मिशनरियों को भारत में धर्म प्रचार की आज्ञा मिल गई थी, जिससे वे खुले रूप में हिन्दू देवी-देवताओं व मुस्लिम पैगम्बरों को बुरा-भला कहने लगे। ईसाई धर्म अपनाने वाले व्यक्तियों को उच्च पदों पर प्राथमिकता मिलती थी। अनेक बार ये धर्म प्रचारक उद्दण्डता का व्यवहार भी करते थे। इसलिए भारतीयों को इन धर्म प्रचारकों से घृणा होने लगी थी। बेरोजगारों, अनाथों, वृद्धों व विधवाओं को प्रलोभन देकर व बलपूर्वक ईसाई बना लिया जाता था।

(iv) **आर्थिक कारण–** भारत प्रारम्भ से ही धन सम्पन्न देश था। भारत में समय-समय पर अनेक आक्रमणकारी आए, जिन्होंने भारत की धन-सम्पदा को लूटा तब भी भारत में कभी धन का अभाव नहीं रहा। मुगलों के बादशाहों ने भारत का धन अपनी शानो-शौकत पर लुटाया तथा भारत के अपार धन को अपनी विलासिता पर खर्च किया तब भी भारत एक धनी देश बना रहा क्योंकि विदेशियों व मुगलों ने भारत के आय के स्रोतों पर कभी प्रहार नहीं किया।

अंग्रेजों ने भारत में 'मुक्त व्यापार नीति' लागू की, जो भारतीय व्यापार व उद्योगों के विरुद्ध थी। इंग्लैण्ड में बना कपड़ा भारत में सस्ते दामों पर बेचा जाने लगा तथा भारत के कच्चे माल काफी कम कीमत पर इंग्लैण्ड भेजे जाने लगे, जिससे भारतीय वस्त्र उद्योग नष्ट हो गया।

देशी रियासतों के अंग्रेजी राज्यों में मिल जाने से भी बेरोजगारी में वृद्धि हुई क्योंकि अंग्रेज उच्च प्रशासनिक पदों पर भारतीयों की नियुक्ति नहीं करते थे। भारत में बढ़ती बेरोजगारी की समस्या का निदान करना अंग्रेज अपना कर्त्तव्य नहीं समझते थे। इस प्रकार अंग्रेजों ने भारतीय समाज के आर्थिक ढाँचे को अस्त-व्यस्त कर दिया।

(v) **सैनिक कारण–** अंग्रेजों ने भारतीय सैनिकों के सहारे से ही भारत में अपनी स्थिति मजबूत की थी। भारतीय सैनिकों की संख्या अंग्रेजी सेना में लगभग 2,50,000 थी जबकि अंग्रेज 90,000 से भी कम थे, परन्तु समस्त उच्च पद केवल अंग्रेजों को ही प्राप्त थे। अंग्रेजी सैनिकों को भारतीयों से अधिक वेतन व अन्य सुविधाएँ मिलती थीं।

एक साधारण सैनिक का वेतन सात या आठ रुपए मासिक होता था और इस वेतन में से ही उनके खाने का खर्च व वर्दी के पैसे काटकर उन्हें मात्र डेढ़ या दो रुपए दिए जाते थे, जिससे उनको पेट पालना भी मुश्किल होता था। इसी प्रकार एक भारतीय सूबेदार का वेतन 35 रुपए मासिक था, जबकि अंग्रेज सूबेदार को 195 रुपए मासिक वेतन मिलता था।

युद्ध आदि के अवसरों पर भारतीय सैनिकों को भारत से बाहर भी भेजा जाता था, जिससे उनकी सामाजिक व धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँचती थी, क्योंकि उस समय विदेश जाना सामाजिक दृष्टि से खराब माना जाता था तथा उस व्यक्ति को बिरादरी से निष्कासित कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त भारतीय सैनिक उच्च जाति के थे, किन्तु अंग्रेज उनके साथ अत्यन्त अभद्र व्यवहार करते थे। अंग्रेज अधिकारी भारतीय सैनिकों को भद्दी-भद्दी गालियाँ देते थे तथा उन्हें निग्गर या काला आदमी कहकर मजाक उड़ाते थे। यही कारण था कि भारतीय सैनिकों ने समय-समय पर विद्रोह कर अपनी भावनाओं को स्पष्ट किया। यद्यपि सरकार ने इनका कठोरतापूर्वक दमन तो कर दिया, किन्तु भारतीय सैनिकों के हृदयों में आक्रोश निरन्तर बढ़ता रहा जो चर्बी वाले कारतूसों की घटना के रूप में प्रस्फुटित हुआ। इन कारतूसों ने कोई नवीन कारण प्रस्तुत नहीं किया अपितु एक ऐसा अवसर प्रदान किया, जिससे उनके भूमिगत असन्तोष प्रकट हो गए। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने अनेक धर्म विरुद्ध नियम बना दिए थे। उस समय समुद्री यात्रा को धर्म विरोधी माना जाता था। 1856 ई० के General Service Enlistment Act के अनुसार जो सैनिक समुद्र पार के स्थलों पर जाने के लिए मना करेगा उसका सेना से निष्कासन कर दिया जाएगा। सैनिकों ने समझा इन कानूनों से अंग्रेजी सरकार उन्हें धर्मविहीन करना चाहती है।

(vi) **तात्कालिक कारण–** सैनिकों के असन्तोष का तात्कालिक कारण नए कारतूसों का प्रयोग था। कम्पनी सरकार ने पुरानी ब्राउन बैस बन्दूक की जगह जनवरी, 1857 से नई एनफील्ड राइफल का प्रयोग आरम्भ किया। इस राइफल में जो कारतूस भरी जाती थी, उसे दाँत से काटना पड़ता था। बंगाल सेना में यह अफवाह फैल गई कि इस कारतूस में गाय और सूअर की चर्बी मिली हुई है। इससे हिन्दू-मुसलमान सैनिकों में भयंकर रोष उत्पन्न हो गया। उनके मन में यह बात बैठ गई कि सरकार उनका धर्म भ्रष्ट करने पर तुली हुई है और उन्हें ईसाई बनाना चाहती है। इस घटना ने उस आग को जलाया जिसके लिए लकड़ियाँ पहले से ही इकट्टठा हो चुकी थीं। लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया कि ''कम्पनी औरंगजेब की भूमिका में है और सैनिकों को शिवाजी बनना ही है।'' अत: सेना अपने धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गई।

1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम के परिणाम– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

4. 1857 ई० की क्रान्ति के आरम्भ तथा दमन का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उ०– **1857 ई० की क्रान्ति का आरम्भ व दमन–** कुछ विद्वान 1857 ई० की क्रान्ति को अनियोजित मानते हैं। परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार यह पूर्वनियोजित क्रान्ति थी, जिसका नेतृत्व अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नेताओं ने किया। क्रान्ति का दिन 31 मई, 1857 निर्धारित किया गया था किन्तु कुछ अप्रत्यक्ष कारणों से इसकी शुरुआत 29 मार्च, 1857 को बैरकपुर में सैनिकों द्वारा हो गई थी। क्रान्ति के प्रचार का माध्यम कमल का फूल व चपाती थी। क्रान्तिकारियों ने यह निर्णय भी किया था कि क्रान्ति के शुरू होते ही मुगल बादशाह बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित करके उनके नाम पर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध किया जाएगा।

योजनानुसार 31 मई को अंग्रेज कर्मचारियों की हत्या करके जेलों को तोड़ दिया जाएगा तथा कैदियों को आजाद करा लिया जाएगा। रेल व तार की लाइनें काट दी जाएँगी। सरकारी कोष व तोपखानों पर अधिकार करके प्रमुख दुर्गों को अपने अधीन कर लिया जाएगा। परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ और क्रान्ति का आरम्भ समय से पहले हो गया। जिनमें प्रमुख क्रान्तियों का विवरण निम्नलिखित है—

(i) **बैरकपुर में क्रान्ति–** सर्वप्रथम बैरकपुर छावनी के सिपाहियों ने 6 अप्रैल, 1857 ई० को चर्बी वाले कारतूस का प्रयोग करने से इनकार कर दिया। **लॉर्ड रॉबर्ट** ने अपनी पुस्तक 'भारत में 40 वर्ष' में लिखा है— ''मिस्टर फोरस्ट की आधुनिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि कारतूसों में चर्बी मिली हुई थी, जिसके कारण सिपाहियों को आपत्ति थी। इन कारतूसों के कारण सिपाहियों की धार्मिक भावना भड़की।'' इस पर क्रुद्ध होकर अंग्रेज अफसरों ने उनको पदच्युत करने की धमकी दी तथा उनको नि:शस्त्र कर दिया गया। कुछ सैनिकों ने तो चुपचाप अस्त्र वापस कर दिए किन्तु मंगल पाण्डे के नेतृत्व में कुछ सैनिकों ने क्रान्ति कर दी। मंगल पाण्डे को बन्दी बनाने की आज्ञा मिली। किन्तु जो व्यक्ति उसको बन्दी बनाने के लिए आगे बढ़ रहा था, उसको मंगल पाण्डे की गोली का शिकार बनना पड़ा। एक अन्य अफसर की भी मंगल पाण्डे ने हत्या कर डाली, किन्तु अन्त में वह घायल हो गया तथा उसे बन्दी बनाकर उस पर अभियोग चलाया गया और उसे 8 अप्रैल, 1857 ई० को प्राणदण्ड मिला। जिन सैनिकों ने क्रान्ति की थी, उन्हें सार्वजनिक रूप से पदच्युत किया गया, उनकी संगीनें छीन ली गईं तथा उन्हें जेल में कैद कर दिया गया। इस प्रकार क्रान्ति की ज्वाला अप्रैल में ही भड़कनी प्रारम्भ हो गई।

(ii) **मेरठ में क्रान्ति–** बैरकपुर के बाद यह विद्रोह मेरठ में हुआ। 24 अप्रैल, 1857 ई० को मेरठ छावनी के नब्बे सैनिकों ने चर्बी वाले कारतूसों के प्रयोग से मना कर दिया। परिणामस्वरूप मई की परेड में 85 सैनिकों को सेना से हटा दिया गया और मेरठ जेल में बन्द कर दिया गया था। 10 मई को सैनिकों ने खुला विद्रोह कर दिया और अपने अधिकारियों पर गोलियाँ चलाईं। अपने साथियों को मुक्त करवाकर वे लोग दिल्ली की ओर चल पड़े। जनरल हेविट के पास 2,200 यूरोपीय सैनिक थे, परन्तु उसने इस तूफान को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया।

(iii) **दिल्ली में क्रान्ति–** दिल्ली में क्रान्तिकारियों ने 11 मई, 1857 ई० को प्रवेश किया। वहाँ के भारतीय सैनिकों ने क्रान्तिकारियों का स्वागत किया तथा उनसे जा मिले। उन्होंने अंग्रेज अफसरों की हत्या कर डाली तथा दिल्ली पर सफलतापूर्वक क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। 16 मई तक अंग्रेजों का हत्याकाण्ड चलता रहा। क्रान्तिकारियों के अनुरोध पर मुगल बादशाह बहादुरशाह द्वितीय ने क्रान्तिकारियों द्वारा दिल्ली विजय की घोषणा की। यह समाचार कुछ ही दिनों में समस्त उत्तरी भारत में फैल गया। अनेक स्थानों पर बहादुरशाह का हरा झण्डा फहराने लगा और विभिन्न स्थानों से भारतीय सैनिक खजाने सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान करने लगे। 24 मई तक अलीगढ़, इटावा, मैनपुरी और दिल्ली का निकटवर्ती पड़ोसी प्रदेश स्वतन्त्र हो गया। जहाँ क्रान्तिकारियों के प्रमुख गढ़ थे, वहाँ पर क्रान्ति का भयंकर रूप प्रारम्भ हो गया। उदाहरण के लिए मध्य भारत में ताँत्या टोपे, बिहार में कुँवरसिंह साहब, झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई तथा कानपुर में नाना साहब आदि ने क्रान्ति कर दी। क्रान्तिकारियों ने पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार बन्दीगृह तोड़कर बन्दियों के मुक्त किया, अंग्रेजों की हत्या की तथा उनके कोष एवं शास्त्रागारों पर अधिकार करने का प्रयास किया। दिल्ली के आस-पास के नगरों से क्रान्तिकारी दिल्ली में एकत्रित होने लगे। भारतीय सैनिकों ने दिल्ली की ओर बख्त खाँ के नेतृत्व में प्रस्थान किया। इस समय नाना साहब कानपुर में थे। उन्होंने वहीं अपने को स्वतन्त्र पेशवा घोषित करके क्रान्तिकारियों का नेतृत्व आरम्भ कर दिया। मध्य भारत में क्रान्ति का नेता मराठा सरदार ताँत्या टोपे था तथा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने बुन्देलखण्ड में क्रान्ति का बिगुल बजा दिया। परन्तु अन्य स्थानों पर जनता का रुख उदासीन रहा। ग्वालियर, हैदराबाद, कश्मीर के शासकों तथा सिक्खों की सहायता से अंग्रेजों ने क्रान्ति का दमन कर दिया।

इस क्रान्ति का दमन सर्वप्रथम दिल्ली से प्रारम्भ हुआ। सेनापति एंसन ने एक सेना लेकर दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। एंसन को मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु पंजाब के कमिश्नर सर जॉन लॉरेंस की सहायता से उसने दिल्ली पर आक्रमण किया। पंजाब के सिक्खों ने क्रान्ति में बिलकुल भी भाग नहीं लिया तथा पंजाब की सेना ने दिल्ली पर पुन: अधिकार करने में अंग्रेजों की सहायता की। इस समय तक एंसन तथा उसके पश्चात् बनने वाले सेनापति कर्नाड क्रान्तिकारियों द्वारा समाप्त किए जा चुके थे। विल्सन ने सेनापति का पद ग्रहण करके दिल्ली पर आक्रमण किया किन्तु उसे कई बार भारतीय सेनाओं से बुरी तरह पराजित होना पड़ा। प्रारम्भ में अंग्रेजी सेना की संख्या कम थी, इसलिए इसने केवल रक्षात्मक नीति ही अपनाई और दिल्ली को घेरे हुए पड़ी रही। दो-तीन महीने के घेरे के बाद सितम्बर 1857 ई० में जनरल निकल्सन के नेतृत्व में पंजाब से एक नई सेना आ जाने पर कम्पनी की सेनाओं में आशा का संचार हुआ और अंग्रेजों ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। कश्मीरी गेट को अंग्रेजी सेना ने बारूद से उड़ा दिया तथा 6 दिनों के भयंकर युद्ध के पश्चात् उन्होंने दिल्ली नगर एवं लाल किले पर अधिकार कर लिया।

(iv) **कानपुर तथा झाँसी में क्रान्ति–** 4 मार्च, 1857 को कानपुर में भी विद्रोह प्रारम्भ हो गया। कानपुर अंग्रेजों के हाथ से 5 जून को निकल गया। नाना साहब को पेशवा घोषित कर दिया गया। जनरल सर ह्यू व्हीलर ने 27 जून को आत्मसमर्पण कर दिया। कुछ यूरोपीय पुरुष, महिलाओं तथा बालकों की हत्या कर दी गई। वहाँ पेशवा नाना साहब को अपने दक्ष तात्याँ टोपे

की सहायता भी प्राप्त हो गई। सर कैम्बल ने कानपुर पर 6 दिसम्बर को पुन: अधिकार कर लिया। तात्याँ टोपे भाग निकले और झाँसी की रानी से जा मिले।

जून 1857 के आरम्भ में सैनिकों ने झाँसी में भी विद्रोह कर दिया। गंगाधर राव की विधवा रानी की रियासत की शासिका घोषित कर दिया गया। कानपुर के पतन के पश्चात् तात्याँ टोपे भी झाँसी पहुँच गए थे। सर ह्यूरोज ने झाँसी पर आक्रमण करके 3 मार्च, 1858 को पुन: उस पर अधिकार कर लिया।

झाँसी की रानी तथा तात्याँ टोपे ने ग्वालियर की ओर अभियान किया, जहाँ भारतीय सैनिकों ने उनका स्वागत किया, परन्तु ग्वालियर का राजा सिन्धिया राजभक्त बना रहा और उसने आगरा में शरण ली। लेकिन 17 जून, 1858 को रानी लक्ष्मीबाई बड़ी वीरता से सैनिक वेश में संघर्ष करती हुई वीरगति को प्राप्त हुई।

अंग्रेजों ने सर्वत्र क्रान्ति को दबा दिया था तथा क्रान्ति के प्रमुख नेता समाप्त कर दिए गए थे। केवल ताँत्या टोपे बचा था। उसके पास धन और सेना दोनों का अभाव था। उसने दक्षिण में जाकर वहाँ के राज्यों में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार प्रारम्भ किया, किन्तु अंग्रेज उसका निरन्तर पीछा करते रहे। दस महीने तक वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागता रहा और सेना का संगठन करता रहा। अंग्रेज लोग अथक प्रयास करके भी उसको पकड़ने में असमर्थ रहे, किन्तु अन्त में ताँत्या टोपे के पुराने एवं विश्वासी मित्र ने उसके साथ विश्वासघात किया और उसे अलवर में अंग्रेजों द्वारा पकड़वा दिया। उस पर अभियोग चलाया गया। अन्तत: भारतमाता के वीर सपूत तथा 1857 की क्रान्ति के इस महान् अन्तिम नेता को 18 अप्रैल, 1859 ई० में मृत्युदण्ड दे दिया गया।

इस प्रकार समय से पहले आरम्भ हुई यह नेतृत्वहीन क्रान्ति अंग्रेजों द्वारा दबा दी गई। परन्तु इसके दूरगामी परिमाण हुए।

5. ''1857 ई० का विद्रोह भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रथम चरण था।'' इस कथन से अपनी सहमति का विवरण दीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

12

राष्ट्रीय जनजागरण व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (National Renaissance and Foundation of Indian National Congress)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1829 ई०
2. 1877 ई०
3. 1885-1905 ई०
4. 1906-1919 ई०
5. 1920-1947 ई०
6. 1885 ई०
7. 28 दिसम्बर 1885 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 199 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 200 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 200 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 200 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना किसने की थी? उसके प्रारम्भिक उद्देश्य क्या थे?

उ०– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ऐलेन ऑक्ट्रेनियन ह्यूम (ए०ओ० ह्यूम) ने सन् 1885 ई० में की थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रारम्भिक उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(i) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्ठता तथा मित्रता बढ़ाना।
(ii) राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़ाना और जाति, धर्म या प्रादेशिकता के आधार पर उपजे भेदभाव को दूर करना।
(iii) महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में चर्चा करने के बाद परिपक्व समितियाँ तथा प्रामाणिक तथ्य स्वीकार करना।
(iv) उन उपायों और दिशाओं का निर्णय करना, जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के लिए कार्य करें।

कांग्रेस का अपने प्रथम काल में प्रमुख उद्देश्य प्रशासनिक सुधारों की मांग करना था, जिसकी प्राप्ति वे संवैधानिक साधनों से करना चाहते थे।

2. कांग्रेस के संघर्ष के इतिहास को कितने कालों में विभक्त किया जाता है?

उ०– कांग्रेस के संघर्ष के इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया जाता है—

(i) प्रथम काल (उदारवादी काल) सन् 1885 से 1905 ई० तक।

(ii) द्वितीय काल (गरम विचारधारावादी तथा क्रान्तिकारी काल) सन् 1906 से 1919 तक।

(iii) तृतीय काल (राष्ट्रीयता का गाँधीवादी युग) सन् 1920 से 1947 तक।

3. शिक्षा के प्रसार ने राष्ट्रीय जनजागरण में क्या भूमिका निभाई?

उ०– भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में अंग्रेजी शिक्षा ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने तथा अंग्रेजों का शासन होने के कारण भारत के प्रत्येक कोने में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार हुआ। इससे देश में भाषा की एकता स्थापित हो गई तथा इसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रान्तों के प्रबुद्ध लोगों को आपस में (अंग्रेजी भाषा के माध्यम से) विचार-विमर्श करने में सहायता मिली। इस प्रकार अनजाने में अंग्रेजी शासन की शिक्षा नीति से भारतीयों को भाषायी बन्धनों से मुक्त होकर एकता की भावना को प्रचारित व प्रसारित करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्हें इस कटु सत्य का आभास हुआ कि उनके आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक शोषण का जिम्मेदार ब्रिटिश शासन ही है। इस राष्ट्रीय चेतना के फलस्वरूप 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का जन्म हुआ।

अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार ने राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजा राममोहन राय, विपिनचन्द्र पाल, चितरंजन दास, लाला लाजपतराय आदि ने पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण कर उनकी सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान अर्जित किया और राष्ट्रीय आन्दोलन में अहम योगदान दिया।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में राष्ट्रीय जनजागरण व उसके कारणों को सविस्तार उल्लेख कीजिए।

उ०– **भारत में राष्ट्रीय जनजागरण–** भारत में अंग्रेजी राज्य के दौरान देशी शिक्षा, संस्कृति पर हुए प्रहार के कारण अनेक धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलन हुए। परम्परागत रूढ़िवादी संकीर्ण विचारों वाले वर्ग के अतिरिक्त अंग्रेजी शिक्षक के फलस्वरूप एक नए प्रबुद्ध वर्ग का भी उदय हुआ, जिसने सदियों से चलती आ रही रूढ़िवादी विचारधारा को बदलने का प्रयास किया। नए शिक्षित समाज और उसके पश्चिमी प्रभाव वाले विचारों के फलस्वरूप भारत में राष्ट्रीय जागरण का सूत्रपात हुआ और भारतीयों में एक नवचेतना ने जन्म ले लिया। इस राष्ट्रीय जागरण ने राष्ट्र में एकता का संचार किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हुए धार्मिक व सामाजिक आन्दोलन ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नई राजनीतिक चेतना का प्रसार कर दिया। पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीयों में एक नई चेतना को पल्लवित कर दिया। अत: भारतीय अंग्रेजी शासन से मुक्ति पाने हेतु संघर्षरत हो गए। भारत में राष्ट्रीय जागरण की शुरूआत कुछ हद तक उपनिवेशवादी नीतियों के कारण ही हुई। अंग्रेजी गवर्नर जनरलों के राष्ट्र में सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक सुधारों ने भारतीयों में एक बौद्धिक चेतना की नींव रख दी। उन्होंने अंग्रेजों के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण न अपनाते हुए उन्हें देश से बाहर करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। इन सब गतिविधियों के कारण भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त हुआ। 1885 ई० तक यह राष्ट्रीय आन्दोलन उग्र हो गया और भारतीयों ने अपनी माँगों को स्वीकृत कराने हेतु ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अपनी गतिविधियों को तीव्र कर दिया। दिन-प्रतिदिन इस आन्दोलन ने एक नया रूप लेना आरम्भ कर दिया और एक राजनीतिक संगठन की उत्पत्ति हुई।

इस राष्ट्रीय जागरण का प्रथम श्रेय राजा राममोहन राय को जाता है, जिन्होंने युवा पीढ़ी को एकत्र किया तथा उन्हें एक नवीन भावना से भर दिया। उन्होंने उन्हें बताया कि हम पाश्चात्य शिक्षा का अनुसरण करके भी अपने देश, धर्म व समाज की रक्षा कर सकते हैं। राजा राममोहन राय के बाद तो अनेक समाज सुधारकों ने देश में नवीन विचारधाराओं की बाढ़-सी ला दी। भारतीयों का पुनरुत्थान हुआ तथा राष्ट्रीयता की भावना जागृत हो गई। उन्होंने समाज में फैली रूढ़िवादी परम्पराओं को विनष्ट कर दिया तथा व्याप्त कुरीतियों को काफी हद तक दूर करने का प्रयास किया। उनका अनुगमन करके नई पीढ़ी उत्साह से परिपूर्ण हो गई और उन्होंने स्वाधीनता के आन्दोलनों में अपना महत्वपूर्ण योगदान देना आरम्भ कर दिया।

राष्ट्रीय जनजागरण के कारण– भारतीय राष्ट्रीय जागरण एक ऐतिहासिक परम्परा का पुनरागमन तथा जनता की आत्मा की जागृति का प्रतिबिम्ब था। भारतीयों में यह नवीन चेतना अनेक कारणों से उत्पन्न हुई। इनमें से प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) धार्मिक व सामाजिक पुनर्जागरण– 19वीं शताब्दी में हुए धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलनों ने राष्ट्रीय जागरण के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सुधार आन्दोलन के प्रणेताओं में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द आदि ने भारतीयों के हृदय में देशभक्ति तथा स्वतन्त्रता की भावना का संचार किया। राजा राममोहन राय ने भारतीयों को तत्कालीन समाज में फैली कुरीतियों से अवगत कराया तथा उन्हें त्यागने के लिए प्रेरित किया। राजा राममोहन राय ने विलियम बैंटिंक के सहयोग से 1829 ई० में सती प्रथा के विरुद्ध कानून पारित करवाया। दयानन्द सरस्वती ने कहा है कि

'जो स्वदेशी राज्य होता है यह सर्वोपरि उत्तम होता है', 'भारत भारतीयों के लिए है'। विवेकानन्द के अनुसार, ''हमारे देश को दृढ़ इच्छा वाले ऐसे लौह-पुरुषों की आवश्यकता है, जिनका प्रतिरोध नहीं किया जा सके।'' एनी बेसेण्ट ने ''स्वतन्त्र व्यक्ति द्वारा ही स्वतन्त्र देश का निर्माण किया जा सकता है'' आदि नारों का उद्घोष कर लोगों में राष्ट्रीय जागरण की भावना का विकास किया।

(ii) **राजनीतिक एकता की स्थापना–** ब्रिटिश शासन की स्थापना के पूर्व भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। अत: भारतीयों में राष्ट्रीय एकता का अभाव था। अंग्रेजों ने साम्राज्यवाद की नीति का अनुसरण कर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया। इस नीति से सम्पूर्ण भारत एक शासन-सूत्र में आबद्ध हो गया। एक राज्य की जनता दूसरे राज्य की जनता के निकट आई व उनमें राष्ट्रीयता का भाव जागृत हुआ। अंग्रेजों को जब तक यह ज्ञात हुआ कि उनकी साम्राज्यवादी नीति उनका ही अहित कर रही है तब तक भारतीय संगठित हो चुके थे तथा उनमें राष्ट्रीय जागरण की भावना का संचार हो चुका था।

(iii) **साहित्यिक प्रभाव–** साहित्य व समाचार-पत्रों ने भी राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रारम्भ में सभी समाचार-पत्र अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होते थे परन्तु कुछ तत्कालीन बुद्धिजीवियों के कठिन प्रयत्न से समाचार-पत्रों का प्रकाशन हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में भी होना प्रारम्भ हो गया। इन समाचार-पत्रों में पायनिर, पेट्रीयाट, इंडियन मिरर, बंगदूत, दि पंजाबी, दि केसरी व अमृत बाजार पत्रिका आदि प्रमुख थे। इन समाचार-पत्रों में राष्ट्रीय प्रेम, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना से ओत-प्रोत लेख, कविताएँ और भावोत्पादक भाषण व उपदेश प्रकाशित होते थे। इन समाचार-पत्रों का मूल्य बहुत कम रखा जाता था, जिससे अधिक से अधिक लोग उसे पढ़ सकें। इन समाचार-पत्रों ने साधारण जनता को जागृत करने में विशेष सहयोग किया।

(iv) **लॉर्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ–** लॉर्ड लिटन की तात्कालिक नीतियों ने भी राष्ट्रभावना जगाने का कार्य किया। भारतीय नागरिक सेवा की उम्र घटाने का कार्य भारतीय युवाओं को ठेस पहुँचाने का कार्य था। 1877 ई० में भीषण अकाल के समय दिल्ली में एक भव्यशाली दरबार लगाकर लाखों रुपया नष्ट करना एक ऐसा कार्य था जिस पर एक कलकत्ता (कोलकाता) के समाचार-पत्र ने कहा था, ''नीरों बंशी बजा रहा था।'' उसने दो अन्य अधिनियम, भारतीय भाषा समाचार-पत्र अधिनियम तथा भारतीय शस्त्र अधिनियम भी पारित किए जिससे कटुता और भी बढ़ गई। फलस्वरूप भारत में अनेक राजनीतिक संस्थाएँ बनीं ताकि सरकार विरोधी आन्दोलन चला सकें।

(v) **आर्थिक असन्तोष–** अंग्रेजों ने भारतीयों के प्रति आर्थिक शोषण की नीति का अनुसरण किया। उन्होंने भारतीयों के उद्योग-धन्धों को प्राय: नष्ट कर दिया। लॉर्ड लिटन के शासनकाल में आयात कर समाप्त कर मुक्त व्यापार की नीति अपनाई गई। इस नीति के पीछे अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य ब्रिटिश आयात को बढ़ावा देना तथा भारतीय व्यापार को नष्ट करना था। अंग्रेजों को अपने इस उद्देश्य में सफलता मिली तथा भारतीय व्यापार नष्ट होने लगा। अनेक उद्योग-धन्धे नष्ट हो गए। ऐसी स्थिति में बेरोजगार व्यक्तियों ने कृषि को उद्योगों के रूप में अपनाना चाहा लेकिन अंग्रेजों ने कृषि की उन्नति की ओर भी ध्यान नहीं दिया, जिससे भारतीय कृषक और कृषि, दोनों की दशा शोचनीय हो गई। भारतीय जनता में दरिद्रता बढ़ने लगी। भारतीयों में फैले इस आर्थिक असन्तोष ने उनमें राष्ट्रीय जागरण की भावना का संचार किया।

(vi) **विभिन्न देशों से प्रेरणा–** भारतीय शिक्षित वर्ग पर विश्व के अन्य देशों में हुए स्वतन्त्रता आन्दोलनों का भी व्यापक प्रभाव हुआ। भारतीयों ने देखा व पढ़ा कि किस प्रकार जर्मनी व इटली जैसे देशों की जनता ने अथक प्रयत्नों से अपने-अपने देश का एकीकरण किया। इसके साथ ही अमेरिका ने जिन परिस्थितियों में स्वतन्त्रता प्राप्त की थी, उससे भारतीयों को भी अपने अधिकारों व देश के प्रति जागृत होने की प्रेरणा मिली। फ्रांस की क्रान्तियों ने भी भारतीयों को प्रभावित किया तथा धीरे-धीरे भारत में भी राष्ट्रवाद की भावना पनपने लगी। इस सम्बन्ध में **डॉ० मजूमदार** ने ठीक ही लिखा है, ''विदेशों में स्वतन्त्रता प्राप्ति की घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रवादी धारा को स्वाभाविक रूप से प्रभावित किया।''

(vii) **शिक्षित भारतीयों में असन्तोष की भावना–** अंग्रेजों की विभिन्न पक्षपाती एवं दोषयुक्त नीतियों के कारण शिक्षित भारतीयों में असन्तोष की भावना व्याप्त हो गई थी। भारतीय नागरिक सेवा की परीक्षा केवल इंग्लैण्ड में ही आयोजित की जाती थी। बिना किसी ठोस कारण के भारतीयों को भारतीय नागरिक सेवा की नौकरी से निकाल दिया जाता था। अंग्रेजों ने भारतीय नागरिक सेवा में प्रवेश की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी थी। अंग्रेजों की इन नीतियों से भारतीयों में असन्तोष की भावना फैल गई। क्योंकि इसका स्पष्ट उद्देश्य भारतीयों को नागरिक सेवा से दूर रखना था। इस सम्बन्ध में **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** का कथन है कि ''अंग्रेजों का यह कार्य भारतीय विद्यार्थियों को भारतीय नागरिक सेवा से वंचित रखने की एक चाल है।'' सुरेन्द्रनाथ के इस वक्तव्य का भारतीयों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अत: जब 1877 ई० में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भारत के विभिन्न स्थानों-आगरा, दिल्ली, अलीगढ़, मेरठ, कानपुर, लखनऊ, लाहौर, इलाहाबाद, वाराणसी, अमृतसर, पूना, मद्रास (चेन्नई) आदि का भ्रमण किया और शिक्षित भारतीयों को अंग्रेजों के षड्यन्त्रकारी उद्देश्य से अवगत कराया तो विभिन्न जाति एवं धर्म के लोग अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित होने लगे। अब शिक्षित भारतीयों में राष्ट्रीय जागरण की भावना का व्यापक संचार हुआ।

(viii) **तीव्र परिवहन तथा संचार साधनों का विकास–** अंग्रेजों ने परिवहन एवं संचार साधनों का व्यापक पैमाने पर विकास किया। भारत के विशाल भाग में रेल लाइनें बिछाई गईं। यद्यपि अंग्रेजों ने यह सब अपने लाभ के लिए किया था, किन्तु इन साधनों ने भारतीयों को एक-दूसरे के काफी नजदीक ला दिया, परिणामस्वरूप राष्ट्रीय जागरण की भावना में द्रुतगति से विकास हुआ।

(ix) **अंग्रेजों की जाति-सम्बन्धी भेदभाव की नीति–** अंग्रेजों ने जाति के सम्बन्ध में भेदभाव की नीति अपनाई। उन्होंने महत्वपूर्ण पदों पर अंग्रेजों की नियुक्ति की तथा भारतीयों को इन पदों से दूर रखा। रेल में प्रथम श्रेणी के डिब्बों में भारतीयों की यात्रा करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। प्रथम श्रेणी के डिब्बे में केवल अंग्रेज ही यात्रा कर सकते थे। अगर प्रथम श्रेणी के डिब्बे में कोई भारतीय चढ़ भी जाता था, तो अंग्रेज यात्रियों द्वारा उसके साथ बेहद अपमानजनक व्यवहार किया जाता था। साथ ही उसे रेल के डिब्बे से उतार दिया जाता था। दरबार तथा उत्सवों में एक निश्चित सीमा तक ही भारतीय जूते पहन सकते थे, जबकि अंग्रेज जूते पहनकर कहीं भी आ-जा सकते थे। अंग्रेजों की इस भेदभावपूर्ण नीति से भारतीयों के आत्मसम्मान को काफी ठेस पहुँची थी। अत: वे अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए और उनमें राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई जिसने एक राष्ट्रीय जनजागरण को जन्म दिया।

(x) **धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलन–** उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के फलस्वरूप भारत में नवजागरण हुआ। इस नवजागरण के अग्रदूतों राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि ने भारतीय समाज व हिन्दू धर्म की कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों को दूर करने के लिए आन्दोलन चलाया। भारतीय समाज और हिन्दू धर्म के दोष (जाति प्रथा, छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा, अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा, रूढ़िवादिता आदि), ब्रिटिश शासन का प्रभाव (लॉर्ड विलियम बैंटिंक द्वारा सती प्रथा का उन्मूलन), अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव, ईसाई धर्म के प्रचार का प्रभाव, वैज्ञानिक तथा परिवहन के साधनों के आविष्कारों (रेल, तार, टेलीफोन, डाक आदि का प्रभाव) तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास ने देश में धर्म व सुधार आन्दोलनों का वातावरण तैयार कर दिया।

(xi) **पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार–** ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित होने के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत में अपनी शिक्षा का प्रसार करना प्रारम्भ कर दिया। लॉर्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के पीछे यह तर्क दिया था कि पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति के प्रचार से भारतीयों को गुलाम बनाया जा सकता है, शारीरिक बल प्रयोग से नहीं। मैकाले ने इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया। उसे अपने उद्देश्य में सफलता भी मिली, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार ने राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राजा राममोहन राय, विपिनचन्द्र पाल, चितरंजन दास, लाला लाजपतराय आदि ने पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण कर उनकी सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान अर्जित किया और राष्ट्रीय आन्दोलन में अहम योगदान दिया।

भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में अंग्रेजी शिक्षा ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने तथा अंग्रेजों का शासन होने के कारण भारत के प्रत्येक कोने में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार हुआ। इससे देश में भाषा की एकता स्थापित हो गई तथा इसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रान्तों के प्रबुद्ध लोगों को आपस में (अंग्रेजी भाषा के माध्यम से) विचार-विमर्श करने में सहायता मिली। इस प्रकार अनजाने में अंग्रेजी शासन की शिक्षा नीति से भारतीयों को भाषायी बन्धनों से मुक्त होकर एकता की भावना को प्रचारित व प्रसारित करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्हें इस कटु सत्य का आभास हुआ कि उनके आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक शोषण का जिम्मेदार ब्रिटिश शासन ही है। इस राष्ट्रीय चेतना के फलस्वरूप 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का जन्म हुआ।

2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

उ०– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 ई० में हुई थी। इसने 1885 ई० से 1947 ई० तक भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। समय और परिस्थितियों के अनुसार इसके लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों तथा साधनों में अन्तर होता चला गया। इसी के आधार पर कांग्रेस के इतिहास को निम्नलिखित तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) प्रथम काल (उदारवादी काल) सन् 1885 से 1905 ई० तक।
(ii) द्वितीय काल (गरम विचारधारावादी तथा क्रान्तिकारी काल) सन् 1906 से 1919 ई० तक।
(iii) तृतीय काल (राष्ट्रीयता का गाँधीवादी युग) सन् 1920 से 1947 ई० तक।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन 28 दिसम्बर, 1885 ई० के दिन 11 बजे 'गोकुलदास तेजपाल संस्कृत पाठशाला' बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन में 72 प्रतिनिधि थे। इस प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर व्योमेशचन्द्र बनर्जी थे। इन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कांग्रेस के निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया था—

(i) साम्राज्य के विभिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वालों में आपस में घनिष्ठता एवं मित्रता को बढ़ाना।

(ii) सभी देश-प्रेमियों के हृदय में प्रत्यक्ष मैत्रीपूर्ण व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी सभी पहले के संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय एकता की सभी भावनाओं का पोषण एवं परिवर्द्धन करना।

(iii) महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक सामाजिक प्रश्नों के सम्बन्ध में भारत में शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा के पश्चात् परिपक्व सम्मतियों का प्रामाणिक संग्रह करना।

(iv) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना, जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देशहित में कार्य करें।

कांग्रेस का अपने प्रथम काल में प्रमुख प्रशासनिक सुधारों की माँग करना था तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति वे संवैधानिक साधनों द्वारा करना चाहते थे। इस काल में कांग्रेस के सभी नेताओं का विश्वास ब्रिटिश सरकार की ईमानदारी तथा न्यायप्रियता में था।

3. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रारम्भिक स्वरूप कैसा था?

उ०– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सरकार के अवकाश प्राप्त अधिकारी ए०ओ० ह्यूम ने की थी। ह्यूम ने इसकी स्थापना का स्पष्टीकरण देते हुए बताया था कि पश्चिमी विचारों, शिक्षा, आविष्कारों और यन्त्रों से उत्पन्न हुई उत्तेजना को यहाँ-वहाँ फैलने की बजाय संवैधानिक ढंग से प्रचार करने के लिए यह कदम आवश्यक था। ह्यूम महोदय जानते थे कि भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध घोर असन्तोष है और इस असन्तोष का भयंकर विस्फोट हो सकता है। अत: ह्यूम भारतीयों की क्रान्तिकारी भावनाओं को वैधानिक प्रवाह में परिणित करने के लिए अखिल भारतीय संगठन की स्थापना करना चाहता था। किन्तु लाला लाजपतराय ने कांग्रेस की स्थापना के बारे में लिखा है, ''कांग्रेस की स्थापना का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य को खतरे से बचाना था, भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयास करना नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य का हित प्रमुख था और भारत का गौण।''

आधुनिक अनुसन्धानों ने यह सिद्ध कर दिया कि ह्यूम एक जागरूक साम्राज्यवादी था। वह शासक और शासित वर्ग के बीच बढ़ती हुई खाई से चिन्तित था। कांग्रेस की स्थापना का दूसरा पहलू यह भी है कि उस समय की राष्ट्रव्यापी हलचलें, देशभक्ति की भावना, विभिन्न वर्गों में व्याप्त बेचैनी, ब्रिटेन की लिबरल पार्टी से भारतीयों को निराशा और विभिन्न राजनीतिक संगठनों ने इसकी भूमिका तैयार करने में योगदान दिया। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य गुप्त योजना था, किन्तु कांग्रेस की पृष्ठभूमि के आधार पर यह तर्कपूर्ण मत नहीं है।

कांग्रेस की स्थापना में ह्यूम को लॉर्ड रिपन और लॉर्ड डफरिन का भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त था। डफरिन अथवा रिपन के उद्देश्य जो भी कुछ रहे हों, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ह्यूम महोदय एक सच्चे उदारवादी थे और वे एक राजनीतिक संगठन की आवश्यकता तथा वांछनीयता अनुभव करते थे। उन्होंने एक खुला पत्र कलकत्ता (कोलकाता) विश्वविद्यालय के स्नातकों को लिखा। इसमें उन्होंने लिखा था, ''बिखरे हुए व्यक्ति कितने ही बुद्धिमान तथा अच्छे आशय वाले क्यों न हों, अकेले तो शक्तिहीन ही होते हैं। आवश्यकता है संघ की, संगठन की और कार्यवाही के लिए एक निश्चित और स्पष्ट प्रणाली की।'' ह्यूम ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी व्यक्तियों की सहानुभूति तथा सहायता प्राप्त कर ली। इस प्रकार यह इंग्लैण्ड तथा भारत के सम्मिलित मस्तिष्क की उपज थी।

प्रथम अधिवेशन में देश के विभिन्न भागों से आए हुए 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया, जिसमें सभी जातियों, सम्प्रदायों और वर्गों का प्रतिनिधित्व था। कुछ समय पश्चात् ही सरकार से कांग्रेस का टकराव हो गया और लॉर्ड डफरिन ने कांग्रेस को 'पागलों की सभा', 'बाबुओं की संसद', 'बचकाना' कहना प्रारम्भ किया। कर्जन (1899-1905 ई०) ने कांग्रेस की आलोचना करते हुए लिखा है कि ''मेरा यह अपना विश्वास है कि कांग्रेस लड़खड़ाती हुई पतन की ओर जा रही है और एक महान् आकांक्षा यह है कि भारत में रहते समय उसकी शान्तिमय मौत में मैं सहायता दे सकूँ।'' हालाँकि कांग्रेस की स्थापना साम्राज्य के लिए रक्षा नली (Safety valve) के रूप में हुई थी, किन्तु जल्दी ही इसकी राजभक्ति राजद्रोह में बदल गई। समाज सुधार के नाम पर यह राजनीति माँगों को लेकर आगे बढ़ी और इसका परिणाम देश की आजादी के रूप में हुआ।

इकाई-2

13

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन (1885-1919 ई०)

Indian National Movement (1885-1919 AD)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1885-1905 ई०
2. 1905-1919 ई०
3. 1892 ई०
4. 1899 ई०
5. 1905 ई०
6. 1906 ई०
7. 1907 ई०
8. 1909 ई०
9. 1913 ई०
10. 1916 ई०
11. 1917 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 211 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 211 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 211 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 211 व 212 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में गोपालकृष्ण गोखले की भूमिका का वर्णन कीजिए।

उ०– गोपालकृष्ण गोखले कांग्रेस के उदारवादी नेता थे। जब से वे कांग्रेस में आये, मृत्युपर्यन्त अपनी विद्वता, नीतिमत्ता, ज्ञान और सात्विक स्वभाव के कारण उस पर छाए रहे।

गाँधी जी के राजनीतिक गुरु गोखले ने 1905 ई० में बनारस अधिवेशन की अध्यक्षता की। बंगाल विभाजन तथा इसके परिणामों के बारे में ब्रिटिश जनता को अवगत कराने के लिए वे 1906 ई० में इंग्लैण्ड गए। वहाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1905 ई० में इन्होंने 'सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी' नामक संस्था स्थापित की, जिसका मुख्य उद्देश्य भारत के राष्ट्रीय हितों का संवर्धन करना, भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करना तथा इनमें पारस्परिक सौहार्द बढ़ाना था। गोखले ने सरकार से इस बात का अनुरोध किया कि नमक पर टैक्स कम किया जाए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इण्डियन सिविल सर्विस का भारतीयकरण हो। गोखले यह भी चाहते थे कि सेना पर होने वाले व्यय को घटाया जाए। भारतीय मामलों से सम्बन्धित प्रश्नों पर बातचीत के लिए गोखले कई बार इंग्लैण्ड गए। 'अनिवार्य शिक्षा विधेयक' को व्यवस्थापिका परिषद् में उन्हीं के द्वारा प्रस्तुत किया गया था। गोखले ने भारतीय समाज में व्याप्त कई बुराइयों का भी विरोध किया। 1915 ई० में 49 वर्ष की आयु में गोखले का निधन हो गया।

2. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में बाल गंगाधर तिलक के योगदान का वर्णन कीजिए।

उ०– बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस के उग्रवादी दल के प्रतिभासम्पन्न नेता थे। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादी विचारधारा के जन्मदाता वे ही थे। उन्होंने ही सबसे पहला नारा लगाया ''स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे प्राप्त करके ही रहूँगा।'' वास्तव में, उन्होंने देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान की थी तथा कांग्रेस के आन्दोलन को जन-आन्दोलन में परिवर्तित करने का सराहनीय कार्य किया था।

3. बाल गंगाधर तिलक व गोपालकृष्ण गोखले के विचारों की भिन्नता पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– तिलक और गोखले दोनों ऊँचे दर्जे के देशभक्त थे। दोनों ने जीवन में भारी त्याग किया था, परन्तु उनके स्वभाव एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे। यदि हम उस समय की भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते है कि गोखले नरम विचारों के थे और तिलक गरम विचारों के। गोखले मौजूदा संविधान को मात्र सुधारना चाहते थे लेकिन तिलक उसे नए सिरे से बनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ मिलकर कार्य करना था, तिलक को उससे अनिर्वायत: संघर्ष करना था। गोखले जहाँ सम्भव हो, सहयोग करने तथा जहाँ जरूरी हो, विरोध करने की नीति के पक्षपाती थे। तिलक का झुकाव रुकावट तथा अड़ंगा डालने की नीति की ओर था। गोखले को प्रशासन तथा उनके सुधार की मुख्य चिन्ता थी, तिलक के लिए राष्ट्र तथा उसका निर्णय मुख्य था। गोखले का आदर्श था—

प्रेम और सेवा, तिलक का आदर्श था— सेवा और कष्ट सहना। गोखले विदेशियों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते थे, तिलक का तरीका विदेशियों को देश से हटाना था। गोखले दूसरों की सहायता पर निर्भर करते थे, तिलक अपनी सहायता स्वयं करना चाहते थे। गोखले उच्च वर्ग और शिक्षित लोगों की ओर देखते थे, तिलक सर्वसाधारण या आम जनता की ओर। गोखले का अखाड़ा था— कौंसिल भवन, तिलक का मंच था—गाँव की चौपाल। गोखले अंग्रेजी में लिखते थे, तिलक मराठी में। गोखले का उद्देश्य था— स्वशासन, जिसके लिए लोगों को अंग्रेजों द्वारा पेश की गई कसौटी पर खरा उतरकर अपने को योग्य साबित करना था, तिलक का उद्देश्य था— स्वराज्य, जो प्रत्येक भारतवासी का जन्मसिद्ध अधिकार था और जिसे वे बिना किसी बाधा की परवाह किए लेकर ही रहेंगे। गोखले अपने समय के साथ थे, जबकि तिलक अपने समय के बहुत आगे।

4. होमरूल आन्दोलन का विवरण दीजिए।

उ०– होमरूल आन्दोलन स्वशासन प्राप्त करने का वैधानिक संगठन था। सन् 1916 ई० में आयरिश महिला श्रीमति एनी बेसेण्ट ने मद्रास (चेन्नई) और लोकमान्य गंगाधर तिलक ने बम्बई में होमरूल लीग की स्थापना की। लीग का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत वैधानिक तरीकों से स्वशासन प्राप्त करना और इस दशा में जनमत तैयार करना था। तिलक ने अपने 'मराठा' तथा 'केसरी' व एनी बेसेन्ट ने 'कॉमलवील' तथा 'न्यू इण्डिया' समाचार-पत्रों द्वारा गृह-शासन का जोरदार प्रचार किया। शीघ्र ही यह आन्दोलन सम्पूर्ण भारत में फैल गया। इसी आन्दोलन के दौरान तिलक ने ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'' का नारा दिया। इंग्लैण्ड में भी होमरूल लीग की स्थापना हुई। मजदूर दल के नेता 'होराल्ड लास्की' ने इसे प्रोत्साहन दिया।

5. मार्ले-मिण्टो सुधार पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– **मार्ले-मिण्टो सुधार (1909 ई०)–** मार्ले-मिण्टो सुधार वस्तुतः मुसलमानों को खुश करने, नरमपंथियों को उलझन में डालने और अतिवादियों को शान्त करने का प्रयास था। संक्षेप में इस सुधार का उद्देश्य अधिकार देने के स्थान पर 'फूट डालो और राज करो' की नीति का अनुसरण करना था। इस अधिनियम की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(i) इसके द्वारा केन्द्रीय लेजिस्टलेटिव के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर अब 69 कर दी गई, किन्तु न उनके अधिकार बढ़े और न ही उनकी शक्तियाँ।

(ii) अधिनियम के अनुसार वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् तथा प्रान्तीय कार्यकारिणी परिषदों में एक भारतीय सदस्य की नियुक्ति का प्रावधान किया गया।

(iii) इस अधिनियम का सबसे बड़ा दोष मुसलमानों के लिए पृथक् चुनाव मण्डल प्रदान करना था। इसका आशय यह था कि मुसलमान सम्प्रदाय को भारतीय राष्ट्र से पूर्णतया पृथक् वर्ग के रूप में स्वीकार किया गया।

(iv) इस अधिनियम की उल्लेखनीय उपलब्धि यह भी रही कि इसके द्वारा भारत सचिव की परिषद् तथा भारत के गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद् में भारतीय सदस्यों का समावेश किया गया।

इस प्रकार इस अधिनियम में सुधारों के नाम पर चुनाव पद्धति में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया ताकि भारतीय राष्ट्रवादियों की एकता को तोड़कर उन्हें विभिन्न भागों में बाँट दिया जाए। यह अधिनियम एक कूटनीतिक चाल साबित हुआ। इसके माध्यम से मुसलमान युवकों को कांग्रेस में जाने से रोका गया और उग्र राष्ट्रवादियों के भारतीय कांग्रेस में आने पर नियन्त्रण किया गया। महान् उदारवादी मदनमोहन मालवीय और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इन सुधारों की तीव्र आलोचना की। वहीं मुस्लिम लीग इन सुधारों से बहुत प्रसन्न थी।

6. उदारवादियों की दो उपलब्धियों की व्याख्या कीजिए।

उ०– उदारवादियों की दो उपलब्धियाँ निम्नवत् हैं—

(i) भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का आधार तैयार करना– यद्यपि उदारवादियों को प्रत्यक्ष रूप से कोई सफलता प्राप्त न हो सकी। तथापि अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने भविष्य में होने वाले आन्दोलनों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। यदि वे प्रारम्भिक काल में ही पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग करने लगते अथवा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध की नीति को अपनाते तो सम्भवतया उनके आन्दोलन को शैशवकाल में ही कुचल दिया जाता और स्वतन्त्रता की दिशा में आगामी रणनीति इच्छित रूप में सफल न हो पाती। **के०एम० मुंशी** के शब्दों में— ''यदि पिछले 30 वर्षों में कांग्रेस के रूप में एक अखिल भारतीय संस्था देश के राजनीति क्षेत्र में कार्यरत न होती तो ऐसी अवस्था में गाँधी जी का कोई विस्तृत आन्दोलन सफल न होता।''

(ii) भारतीय परिषद् अधिनियम, 1892 ई०– उदारवादियों की सफलता को 1892 ई० के भारतीय परिषद् अधिनियम के सन्दर्भ में भी लिया जा सकता है। यद्यपि यह भारतीयों को सन्तुष्ट न कर सका, लेकिन फिर भी देश के संवैधानिक विकास की दिशा में यह एक निश्चित प्रगतिशील कदम था।

7. बंगाल के विभाजन के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

उ०– सन् 1905 ई० में लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा कर दी जिसके परिणाम स्वरूप बंगाल में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण देश में विद्रोह का तूफान उठ खड़ा हुआ। इससे भारत में गरम आन्दोलन की जो विचारधारा उत्पन्न हुई उसे स्वदेशी आन्दोलन की संज्ञा दी गई। बंगाल विभाजन से देश में समस्त राष्ट्रवादी विचारों को भयंकर आघात पहुँचा तथा इस नीति ने साम्प्रदायिक समस्या को कई गुणा बढ़ा दिया। इसके विरोध में सम्पूर्ण देश में जन-सभाओं का आयोजन किया गया।

8. नरम दल के प्रतिष्ठाता कौन थे?

उ०– नरम दल के प्रतिष्ठाता गोपालकृष्ण गोखले थे। सन् 1905 ई० में उन्होंने 'सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी' नामक संस्था की स्थापना की, जिसका प्रमुख उद्देश्य भारत के राष्ट्रीय हितों का संवर्धन करना, भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करना तथा पारस्परिक सौहार्द बढ़ाना था।

9. आप एनी बेसेण्ट और उनके होमरूल संघ के विषय में क्या जानते हैं?
या होमरूल आन्दोलन से आप क्या समझते हैं?

उ०– **श्रीमति ऐनी बेसेण्ट–** ये एक आयरिश महिला थीं। सन् 1893 ई० में श्रीमति ऐनी बेसेण्ट भारत आईं और अडयार (मद्रास) स्थित थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष बनीं। श्रीमति ऐनी बेसेण्ट ने हिन्दू धर्म की बड़ी प्रशंसा की और बालगंगाधर तिलक के साथ मिलकर भारत की स्वाधीनता के लिए होमरूल आन्दोलन चलाया। ये एक बार कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्ष भी बनीं। इन्होंने शिक्षा के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

होमरूल आन्दोलन के लिए लघुउत्तरीय प्रश्न संख्या— 4 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

10. अतिवादी दल के प्रतिष्ठाता कौन थे?

उ०– अतिवादी दल के प्रतिष्ठाता बाल गंगाधर तिलक थे। उन्होंने अंग्रेजी शासन का विरोध करने के लिए स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग

एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर जोर दिया। अखाड़ा, लाठी, गणपति व शिवाजी महोत्सवों के द्वारा तिलक ने महाराष्ट्र में नवजागृति का संचार किया। इनका नारा था— ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूँगा।''

11. नरम दल के नेताओं के नाम बताओ।

उ०– नरम दल के प्रमुख नेता गोपालकृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, रास बिहारी घोष, पंडित मदन मोहन मालवीय आदि थे।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण की विवेचना कीजिए।

उ०– **राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रथम चरण (1885-1919 ई०)–** प्रारम्भ में कांग्रेस के आन्दोलन की गति बहुत धीमी थी। इसका मुख्य कारण कांग्रेस का शैशवकाल था। यह समय सुधारवादी तथा वैधानिक युग के नाम से भी विख्यात है। इस समय कांग्रेस पर उदारवादियों का प्रभाव रहा। इन उदारवादियों ने विनय-अनुनय की नीति अपनाई, परन्तु उनकी इस नीति ने 19वीं शताब्दी के अन्तिम एवं 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरणों में अतिवादी विचारधारा को जन्म दिया। 1885-1905 ई० के दौरान कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य संवैधानिक, आर्थिक, प्रशासनिक सुधार एवं नागरिक अधिकारों की सुरक्षा की माँग करना था। इस समय तक कांग्रेस को जनसमर्थन भी प्राप्त नहीं हो सका था। मुख्य रूप से शिक्षित मध्य वर्ग तक ही इसका प्रभाव रहा। प्रारम्भ में कांग्रेस ने उदारवादी रुख अपनाया।

उदारवादी आन्दोलन का युग– प्रारम्भिक बीस वर्षों में कांग्रेस आम जनता के कष्ट निवारण हेतु ब्रिटिश सरकार को प्रार्थना पत्र ही भेजती रही। इस चरण के प्रमुख कांग्रेसी नेता गोपालकृष्ण गोखले, पंडित मदन मोहन मालवीय, दादाभाई नौरोजी आदि थे। ये सभी नेता शान्तिपूर्वक अंग्रेजी सरकार से अपनी माँगें मनवाने के पक्ष में थे परन्तु इनकी उदारवादी प्रवृत्ति का कांग्रेस को कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि स्वार्थी व कुटिल अंग्रेजों पर प्रार्थना-पत्र व याचना-पत्र कोई प्रभाव नहीं डाल पाए और न ही उदारवादी नेता अंग्रेजों पर किसी भी प्रकार का दबाव बनाने में सफल हो पाए।

1885-1905 ई० के काल को उदारवादियों का काल अथवा उदार राष्ट्रवाद का काल भी कहा जाता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रारम्भ में अत्यन्त नरम थी। आरम्भ से ही कांग्रेस का दृष्टिकोण विशुद्ध राष्ट्रीय रहा। इसने किसी वर्ग विशेष के हित का समर्थन नहीं किया वरन् सभी प्रश्नों पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाया। प्रारम्भिक दौर में कांग्रेस की पूरी बागडोर नरम राष्ट्रवादियों के हाथ में थी। इस समय भारतीय-राजनीति में ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव था, जो उन अंग्रेजों के प्रति श्रद्धा रखते थे, जिनका उदारवादी विचारधारा में विश्वास था। दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, रासबिहारी घोष, गोपालकृष्ण गोखले इत्यादि नेता नरमपंथी विचारों के प्रमुख स्तम्भ थे। कुछ अंग्रेज भी उदारवादी विचारधारा के समर्थक थे, जिनमें ह्यूम, विलियम वेडरवर्न, जॉर्ज यूल, स्मिथ प्रमुख थे। इन्हीं उदारवादी नेताओं ने कांग्रेस का दो दशकों (1885-1905 ई०) तक मार्गदर्शन किया। ये उदारवादी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को अभिशाप नहीं वरन् वरदान समझते थे। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** का यह कथन उदारवादियों की मनोवृत्ति को स्पष्ट करता है, ''अंग्रेजों के न्याय, बुद्धि और दयाभाव में हमारी दृढ़ आस्था है। विश्व की महानतम प्रतिनिधि संस्था, संसदों की जननी ब्रिटिश कॉमन सदन के प्रति हमारे हृदय में असीम श्रद्धा है।'' कांग्रेस की प्रसिद्धी बढ़ती गई। उसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1885 ई० में इसके 72 सदस्य थे, जो 1890 ई० में 2,000 तक पहुँच गए।

कांग्रेस के उदारवादी नेताओं की यह धारणा थी कि अंग्रेज सच्चे और न्यायप्रिय हैं। कांग्रेस के आरम्भिक नेताओं का मानना था कि ब्रिटिश सरकार के समक्ष सार्वजनिक मुद्दों से सम्बन्धित माँगों को रखकर देश के प्रबुद्ध देशवासियों, नेताओं व कार्यकर्ताओं के मध्य राष्ट्रीय एकता की भावना जाग्रत की जा सकती है। कांग्रेस के 12वें अधिवेशन पर मुहम्मद रहीमतुल्ला ने कहा था कि, ''संसार में सूर्य के नीचे शायद ही कोई इतनी ईमानदार जाति हो, जितना की अंग्रेज।''

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में संवैधानिक सुधारों की माँग की गई, जिसमें 1885 ई० के अधिनियम द्वारा निर्मित भारत सचिव व इण्डियन कौंसिल को समाप्त करने को कहा गया, क्योंकि उसमें कोई भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं था। प्रान्तों में भी विधान परिषदों के पुनर्गठन की माँग रखी गई। इन माँगों के फलस्वरूप 1892 ई० का इण्डियन कौंसिल ऐक्ट पास हुआ, जिसके अनुसार केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधायिकाओं की सदस्य संख्या में वृद्धि की गई।

इस समय कांग्रेस ने देश की स्वतन्त्रता की माँग नहीं की, केवल भारतीयों के लिए रियायतें ही माँगी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में बाल गंगाधर तिलक ने **स्वराज्य** शब्द का प्रयोग किया। किन्तु न तो यह शब्द लोकप्रिय हुआ और न ही इसका कांग्रेस के प्रस्तावों में उल्लेख था। न्यायपालिका के क्षेत्र में कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष माँग रखी कि शासन और न्याय कार्यों को अलग रखा जाए। अपने चौथे अधिवेशन में कांग्रेस ने माँग रखी कि भूमि कर को स्थायी, कम व निश्चित किया जाए और किसानों को शोषण से बचाने के लिए कानूनों में सुधार किए जाएँ। नागरिकों के सम्बन्ध में राजद्रोह सम्बन्धी कानून को वापस लिए जाने की माँग की। भारतीय सेना का देश से बाहर प्रयोग न किया जाए तथा सैनिक सेवा में भारतीयों को उच्च स्थान दिए जाएँ। कांग्रेस ने प्रशासन सुधार, प्रेस की स्वतन्त्रता आदि माँगों को भी सरकार के सम्मुख रखा। हालाँकि उदारवादियों का

दृष्टिकोण देशहित में था परन्तु वे सरकार के समक्ष अपनी माँगें याचनापूर्वक व हीन शब्दों में रखते थे। जबकि सरकार का रुख प्रतिरोधात्मक था। अत: उनकी माँगों की उपेक्षा की गई। अन्तत: सरकार कांग्रेस को नापसन्द करने लगी।

2. ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रारम्भिक चरण में उदारवादियों का आधिपत्य था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरी प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. राष्ट्रीय आन्दोलन में अतिवादियों के उदय की समीक्षा कीजिए।

उ०– **अतिवादियों अथवा गरम दल का उदय (1905-1919 ई०)–** उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक कांग्रेस की नरमपंथी नीतियों के विरुद्ध असन्तोष बढ़ता जा रहा था। कांग्रेस के पुराने नेताओं और उनकी भिक्षा-याचना की नीति के फलस्वरूप कांग्रेस में एक नए तरुण दल का उदय हुआ, जो पुराने नेताओं के ढोंग एवं आदर्शों का कड़ा आलोचक बन गया। फलत: कांग्रेस दो गुटों में बँटने लगी— नरमपंथी और गरमपंथी। नरमपंथी नेताओं ने देश में राजनीतिक ढाँचे का तो निर्माण कर लिया था, परन्तु उसे वैचारिक स्थायित्व न मिला। वे अपनी विद्वता, देशभक्ति और समर्पण भावना में किसी से पीछे न थे, परन्तु उन्हें न तो अंग्रेजों की ईमानदारी और न्यायप्रियता पर सन्देह था और न ही उनका अपना कोई जनाधार। उन्होंने अपने भाषणों, विचारों और लेखों द्वारा शिक्षित समाज को राजनीतिक शिक्षा के सिद्धान्तों से परिचित कराया था, परन्तु अब आवश्यकता उसके व्यावहारिक प्रयोग की थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को स्थापित हुए 20 वर्ष हो चुके थे, परन्तु उसके फायदे समाज के सम्मुख दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। नरमपंथियों का सम्पर्क मुख्यत: कुछ पढ़े-लिखे प्रबुद्ध लोगों तक ही सीमित था। उनकी पहुँच सामान्य जनता, कृषक, मजदूर, मध्यम वर्ग तक न थी।

भारतीय जनमानस के बढ़ते हुए असन्तोष, सरकार की अकर्मण्यता और कांग्रेस की उदासीनता की अभिव्यक्ति राष्ट्रीय चेतना के रूप में हुई। इसके उन्नायक लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचन्द्र पाल थे। उन्होंने भारतीय जनमानस में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, देशभक्ति और साहस की भावना का संचार किया। अतिवादियों ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाए—

(i) निष्क्रिय विरोध अर्थात् सरकारी सेवाओं, न्यायालयों, स्कूलों तथा कॉलेजों का बहिष्कार कर ब्रिटिश सरकार का विरोध।

(ii) स्वदेशी को बढ़ावा तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।

(iii) राष्ट्रीय शिक्षा के द्वारा नए राष्ट्र का निर्माण।

राष्ट्रवादियों के अतिवादी विचार 1857 ई० के विद्रोह के बाद धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। बदलती हुई परिस्थितियों में सरकार के द्वारा दमन किए जाने के बावजूद अतिवादी विचार तेजी से बढ़े। शताब्दी के अन्त तक असन्तोष की लहर ग्रामीण समाज, किसानों तथा मजदूरों तक फैल गई। इन परिस्थितियों ने कई नेताओं को अपनी माँगों और कार्यवाही को लेकर वाकपटु बना दिया। ये नेता अतिसुधारवादी या अतिवादी के नाम से जाने गए।

क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता के बढ़ने के अनेक कारण थे। राजनीतिक रूप से जागरूक लोगों का नरमपंथी नेतृत्व के सिद्धान्तों तथा उनके कार्य के तरीकों से मोहभंग हो चुका था। 1892 ई० के भारतीय कौंसिल अधिनियम से लोगों को बहुत निराशा हुई तथा प्लेग और अकाल जैसी आपदाओं में ब्रिटिश सरकार द्वारा ठीक से प्रबंधन न किए जाने पर उनके प्रति कड़वाहट बढ़ती गई। दमनकारी ब्रिटिश नीतियों; जैसे-1898 ई० के राजद्रोह के विरुद्ध कानून और 1899 ई० के राजकीय गोपनीयता अधिनियम ने आग में घी का काम किया। इसके अन्य कारणों में आयरलैण्ड और रूस का क्रान्तिकारी आन्दोलन जैसी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ, निवेशों में भारतीयों का अपमान, अरविन्द घोष, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचन्द्र पाल जैसे नेताओं के नेतृत्व में एक क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी विचारों की शाखा का अस्तित्व में आना, शिक्षा प्रसार के बावजूद बेरोजगारी का बढ़ना आदि थे। अन्तत: लॉर्ड कर्जन की नीतियों के कारण हुए 1905 ई० के बंगाल विभाजन से जन-विरोध भड़क उठा।

4. गरम राष्ट्रवाद के उदय के क्या कारण थे?

उ०– भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गरमवादी विचारधारा के उदय के निम्नलिखित कारण थे—

(i) शासन द्वारा कांग्रेस की माँगों की उपेक्षा तथा 1892 ई० के सुधार कानून की अपर्याप्तता– उदारवादी नेताओं की अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा ईमानदारी में गहन आस्था थी। अत: उन्हें पूरी आशा थी कि ब्रिटिश सरकार उनके द्वारा प्रस्तावित सुधार प्रस्तावों को अवश्य ही अपनाएगी। उदारवादियों की प्रार्थनाओं और माँगों की पूर्ति के सन्दर्भ में ब्रिटिश शासन ने जो कुछ दिया, वह 1892 ई० का **कौंसिल एक्ट** था। यह सुधार कानून निराशाजनक और अपर्याप्त था। इस अधिनियम द्वारा भारतीयों को वास्तविक अधिकार नहीं दिए गए थे। निर्वाचन की प्रणाली भी अप्रत्यक्ष ही रखी गई थी। कांग्रेस इन सुधारों से अप्रसन्न थी। कांग्रेस निरन्तर विधानपरिषदों के विस्तार, निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि, परिषदों के अधिकारों के विस्तार, न्याय-सुधार तथा सिविल सर्विस परीक्षा भारत में कराए जाने की माँग करती रही, परन्तु सरकार ने उन्हें पूरा नहीं किया। **एस०एन० बनर्जी** का मत है— ''विधानपरिषदों में निर्मित विधियाँ पूर्व-निश्चित होती थीं एवं वाद-विवाद औपचारिकता मात्र होता था, जिसे कुछ व्यक्ति धोखा कह सकते हैं।'' **लाला लाजपत राय** ने कहा था—''भारतीयों को अब भिखारी बने रहने में सन्तोष नहीं करना चाहिए और उन्हें अंग्रेजों की कृपा पाने के लिए गिड़गिड़ाना नहीं चाहिए।''

(ii) **हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान–** कांग्रेस के उदारवादी नेता– गोपालकृष्ण गोखले, मदनमोहन मालवीय, रासबिहारी घोष आदि भारत और इंग्लैण्ड के सम्बन्धों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे और ब्रिटिश संस्कृति की श्रेष्ठता में विश्वास रखते थे, जबकि गरम विचारधारा वाले नेता— बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, अरविन्द घोष और विपिनचन्द्र पाल इन विचारों से अप्रसन्न थे। उनके विचारों पर स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती ऐनी बेसेण्ट के इस विचार का प्रभाव पड़ा कि भारत की वैदिक संस्कृति पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। धार्मिक पुनर्जागरण के प्रभाव से भारतीयों के मन तथा मस्तिष्क में पाश्चात्य वेशभूषा, शिक्षा, विचारधारा और जीवन पद्धति के विरुद्ध गहन प्रतिक्रिया थी। **अरविन्द घोष** का मत था— ''स्वतन्त्रता हमारे जीवन का एक उद्देश्य है और हिन्दू धर्म हमारे उद्देश्य की पूर्ति करेगा। ...... राष्ट्रीयता एक धर्म है और ईश्वर की देन है।'' इस नवजागरण के प्रभाव के कारण ही उदारवाद ने अति राष्ट्रवाद का स्वरूप ग्रहण कर लिया। **ऐनी बेसेण्ट** ने कहा था कि 'सम्पूर्ण हिन्दू प्रणाली पश्चिमी सभ्यता से बढ़कर है।' स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द के दिव्य विचारों से प्रभावित होकर अमेरिका के '*दि न्यूयॉर्क हैराल्ड*' ने सम्पादकीय टिप्पणी की थी कि हमें अनुभव हो रहा है कि उन सरीखे धर्म के विद्वत्जनों के देश में ईसाई पादरी भेजना कितनी बड़ी मूर्खता है।

(iii) **आर्थिक शोषण–** ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों से भी युवा वर्ग में तीव्र आक्रोश व्याप्त था। सरकार की आर्थिक नीति का मूल लक्ष्य अंग्रेज व्यापारियों तथा उद्योगपतियों का हित करना था, न कि भारतीयों का। भारत सरकार ने भारतीय आर्थिक हितों को निःसंकोच ब्रिटिश व्यापारिक हितों के रक्षार्थ बलिदान कर दिया था। ब्रिटिश सरकार निरन्तर भारत विरोधी आर्थिक नीतियों का अनुसरण कर रही थी। पहले सूती माल पर आयात कर 5% था, सरकार ने इसे घटाकर 3.5% कर दिया और सरकार ने भारतीय मिलों पर 3.5% उत्पादन कर लगा दिया। इससे भारतीय मिलों का काम-काज ठप हो गया। इस स्थिति ने भारतीयों के लिए बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न कर दी। सरकार की आर्थिक नीति के विरुद्ध भारतीयों में घोर असन्तोष व्याप्त हो गया। वे सरकारी नीति का विरोध करने लगे और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाने लगा। शिक्षित भारतीयों को भी अपनी योग्यतानुसार सरकारी पदों की प्राप्ति नहीं हुई, इसलिए उनमें भी असन्तोष की भावनाएँ तीव्र हो गईं। **ए०आर० देसाई** के शब्दों में— ''शिक्षित भारतीयों में बेकारी से उत्पन्न राजनीतिक असन्तोष भारत में गरम राष्ट्रवाद के उदय का एक प्रमुख कारण रहा।'' ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति के कारण भारतीय वस्तुएँ महँगी हो गईं व विदेशी वस्तुएँ सस्ती हो गईं, जिसके कारण प्रतिस्पर्द्धा में भारतीय वस्तुएँ पीछे छूट गईं।

(iv) **अकाल और प्लेग का प्रकोप–** उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में देश में अकाल के भीषण बादल मँडराने लगे। 1876 ई० से 1900 ई० तक 25 वर्षों में देश में 18 बार अकाल पड़ा। 1896-97 ई० में बम्बई में सबसे भयंकर अकाल पड़ा। इस अकाल का प्रभाव 70 हजार वर्ग मील के क्षेत्र पर पड़ा तथा लगभग दो करोड़ लोग इसके शिकार हुए। यदि सरकार ने अपनी पूर्ण क्षमता और उत्साह से सहायता कार्य का बीड़ा उठाया होता तो अकाल इतना भीषण रूप धारण नहीं करता।

अभी अकाल का घाव भरा भी न था कि बम्बई प्रेसीडेंसी में 1897-98 ई० में प्लेग का प्रकोप व्याप्त हो गया। पूना के आस-पास भयंकर प्लेग फैल गया, जिसमें सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार 1 लाख 73 हजार व्यक्तियों की मृत्यु हुई। प्लेग कमिश्नर रैंड ने सैनिकों को सेवा-कार्य सौंपा और उन्हें घरों में घुसने, निरीक्षण करने और रोगग्रस्त व्यक्तियों को अस्पताल पहुँचाने का दायित्व सौंपा। सैनिकों के अनैतिक कृत्यों से हिन्दुओं की धार्मिक भावनाएँ आहत हुईं। अनेक स्थानों पर दंगे प्रारम्भ हो गए। एक नवयुवक दामोदर हरि चापेकर ने रैंड तथा उनके सहयोगी लेफ्टिनेन्ट ऐर्स्ट को अपनी गोली का शिकार बनाया। सरकार इन क्रान्तिकारी गतिविधियों से तिलमिला उठी और उसने कठोर कदम उठाए। महाराष्ट्र में अत्याचार का ताण्डव शुरू हो गया। '*केसरी*' के सम्पादक तिलक को सरकार विरोधी भावनाएँ उभारने के लिए 18 मास के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इससे देश में विद्रोह का तूफान उमड़ पड़ा। दामोदर हरि चापेकर द्वारा रैंड की हत्या यह सूचना दे रही थी कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रता का प्रवेश हो चुका है।

(v) **अंग्रेजों की जाति विभेद की नीति–** भारत तथा अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार का एक प्रमुख कारण अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई जाति विभेद की नीति थी। भारतीयों को निम्न जाति का समझा जाता था। आंग्ल-भारतीय समाचार-पत्र खुले रूप में अंग्रेजों को भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार करने की भावना को प्रोत्साहन देते थे। **लॉर्ड कर्जन** की नीतियों ने जाति विभेद की नीति को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। उन्होंने अपने एक भाषण में स्पष्ट कहा था— ''पश्चिमी लोगों में सभ्यता और पूर्वी लोगों में मक्कारी पाई जाती है।'' इन जाति विभेद की नीतियों ने भारतीयों में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आक्रोश की भावना को उत्तेजित किया और उन्हें अति राष्ट्रवादी बना दिया।

(vi) **अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव–** इस काल में विदेशों में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं, जिनका भारतीयों पर विशेष प्रभाव पड़ा। इन घटनाओं के प्रभाव के कारण भारतीयों में दीनता और निराशा के स्थान पर राष्ट्रीय उत्साह और साहस की भावना का उदय हुआ। ऐसी प्रथम घटना 1897 ई० में अफ्रीका के एक छोटे से राष्ट्र अबीसीनिया द्वारा इटली को पराजित किया जाना था। **गैरेट** के शब्दों में— ''इटली की हार ने 1897 ई० में तिलक के आन्दोलन को बल प्रदान किया।'' इसी प्रकार 1905 ई० में जापान द्वारा इटली को पराजित किए जाने की घटना से भारतीयों में यह भावना सुदृढ़ हुई कि अनन्य देशभक्ति, बलिदान और राष्ट्रीयता की भावना को अपने जीवन में उतारकर ही भारतीय स्वतन्त्रता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता

है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में घटित इन घटनाओं का भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त इसी समय मिस्त्र, फारस व टर्की में स्वाधीनता संघर्ष चल रहा था। आयरलैण्ड में स्वशासन के लिए व रूस में जारशाही के विरुद्ध आन्दोलन तीव्र गति से चल रहा था। इन सब घटनाओं ने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का व्यापक संचार किया। इन सब घटनाओं के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि मैजिनी, गैरीबाल्डी और कावूर के प्रेरक नेतृत्व में इटलीवासियों की राष्ट्रीय एकता एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयासों का भारतीयों पर विशेष प्रभाव पड़ा। **गुरुमुख निहाल सिंह** के शब्दों में– ''···· भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने अपने देशवासियों में स्वदेश प्रेम जाग्रत करने के लिए इटली के उदाहरण से काम लिया।''

(vii) **लॉर्ड कर्जन की दमनकारी नीतियाँ–** लॉर्ड लैन्सडाउन और एल्गिन के दमनकारी शासन के बाद 1898 ई० में लॉर्ड कर्जन भारत के वायसराय बनकर आए। कर्जन साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के पक्षपाती थे और राजनीतिक आन्दोलनों को पूर्णत: कुचल देने के पक्षधर थे। उन्होंने शासन-सत्ता सँभालते ही ऐसे कार्य करने प्रारम्भ कर दिए कि जनता में विद्रोह की चिंगारी भड़क उठी। उन्होंने केन्द्रीकरण की नीति अपनाई, जिससे साम्राज्यवाद की जड़ें गहराई तक पहुँचाई जा सकें। कलकत्ता कॉर्पोरेशन ऐक्ट (1904 ई०) पारित करके स्वायत्तशासी संस्थाओं पर सरकार का नियन्त्रण करने के लिए 25 निर्वाचित प्रतिनिधियों की संस्था कम कर दी। भारतीय विश्वविद्यालय ऐक्ट (1904 ई०) के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में भी सरकार के हस्तक्षेप को बढ़ाया गया। शिक्षित वर्ग में इन परिवर्तनों से बहुत अधिक असन्तोष व्याप्त हो गया और उसने इस विश्वविद्यालय ऐक्ट की कटु आलोचना की। ऑफीशियल सीक्रेट ऐक्ट (1904 ई०) के द्वारा सरकारी सूचनाओं का भेद देना व सरकार के विरोध में समाचार-पत्रों की आलोचना भी अपराध घोषित कर दिया गया। उनकी सैन्य नीति भी बहुत विवादास्पद थी। उन्होंने अधिक मात्रा में सैनिक व्यय किया। उनकी सैन्य नीति का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना था।

इससे भी भारतीयों में असन्तोष बढ़ा। कर्जन का भारतीयों के प्रति बड़ा अभद्र और अन्यायपूर्ण व्यवहार था। 1905 ई० में एक दीक्षान्त भाषण में उन्होंने कहा था– ''भारतीयों में सत्य के प्रति आस्था नहीं है और वास्तव में भारतवर्ष में सत्य को कभी आदर्श ही नहीं माना गया है।'' एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा था– ''भारत राष्ट्र नाम की चीज नहीं है।'' अत: लॉर्ड कर्जन की इन नीतियों ने गरम राष्ट्रवादी विचारधारा को पनपने का अवसर प्रदान किया। **गोपालकृष्ण गोखले** के अनुसार– ''कर्जन ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए वही कार्य किया, जो मुगल शासन के लिए औरंगजेब ने किया था।''

(viii) **बंगाल का विभाजन–** बंगाल विभाजन ने गरम राष्ट्रवाद को कार्य-रूप में परिणत होने का अवसर प्रदान किया। 1905 ई० में लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा की। इसके परिणामस्वरूप केवल बंगाल में ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण देश में विद्रोह का तूफान उठ खड़ा हुआ। बंगाल के विभाजन के द्वारा कर्जन बंगाल की बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना को नष्ट करना चाहते थे। बंगाल विभाजन हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालने के उद्देश्य से किया गया था। पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को भड़काया गया था कि इस विभाजन का ध्येय उनके बहुमत का प्रान्त बनाना है। पूर्वी बंगाल के गवर्नर **सर वैम्फाइल्ड फ़ूलर** ने कहा था– ''उसकी दो स्त्रियाँ हैं– एक हिन्दू व एक मुसलमान, किन्तु वह दूसरी को अधिक चाहता है।'' बंगाल विभाजन से देश में समस्त राष्ट्रवादी विचारों को भयंकर रूप से आघात पहुँचा। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** ने स्पष्ट किया था– ''बंगाल का विभाजन हमारे ऊपर बम की तरह गिरा है। हमने समझा कि हमारा घोर अपमान किया गया है।'' बंगाल विभाजन का विरोध करने के लिए गोपालकृष्ण गोखले इंग्लैण्ड तक पहुँचे, किन्तु वहाँ उनके विरोधी स्वरों पर ध्यान नहीं दिया गया और वे निराशावस्था में ही भारत लौटे। उन्होंने कहा भी था– ''नवयुवक यह पूछने लगे कि संवैधानिक उपायों का क्या लाभ है, यदि इनका परिणाम बंगाल का विभाजन ही होना था।'' बंगाल विभाजन के विषय में **डॉ० जकारिया** का कथन है– ''उद्देश्य और प्रभाव की दृष्टि से बंगाल का विभाजन-कार्य नितान्त धूर्ततापूर्ण था।'' वस्तुत: बंगाल विभाजन का उद्देश्य भारतीयों की राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना था, परन्तु व्यवहार में इसका विपरीत परिणाम निकला और गरमवादी राष्ट्रीयता की भावना सम्पूर्ण देश में फैल गई। इसके विरोध में सम्पूर्ण देश में जन-सभाओं का आयोजन किया गया। अकेले बंगाल में ही 1,000 सभाएँ की गईं।

(ix) **विदेशों में भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार–** विदेशों में भारतीयों के प्रति बहुत अधिक दुर्व्यवहार किया जा रहा था। अफ्रीका से लौटकर **डॉ० बी०सी० मुँजे** ने कहा था कि हमारे शासक यह विश्वास नहीं करते कि हम भी मनुष्य हैं। भारतीयों के साथ दक्षिण अफ्रीका में अत्यन्त अपमानजनक व्यवहार किया गया। उन्हें प्रथम श्रेणी में रेल यात्रा की अनुमति नहीं थी। वे पगडण्डी पर नहीं चल सकते थे। रात्रि में 9 बजे के बाद घर से बाहर नहीं निकल सकते थे। इन्हीं अत्याचारों को समाप्त कराने के लिए गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आन्दोलन का संचालन किया। इस आन्दोलन का प्रभाव भारतीय जनता पर भी पड़ा।

(x) **नवयुवकों का भिक्षावृत्ति वाली नीति पर से विश्वास समाप्त हो जाना–** कांग्रेस के प्रथम काल (1885-1905 ई०) में कांग्रेस की नीति उदारवादी तथा भिक्षावृत्ति वाली थी। किन्तु युवकों का एक ऐसा वर्ग बन गया था, जिसका इस नीति पर से विश्वास ही उठ गया और वे उग्र नीति का समर्थन करने लगे। इन उग्र राष्ट्रवादियों के तीन प्रमुख नेता थे– लाल, बाल तथा पाल। ये नेता अटूट देशभक्त और ब्रिटिश शासन के कट्टर विरोधी थे। **बालगंगाधर तिलक** के शब्दों में, ''हमारा आदर्श

दया की भिक्षा माँगना नहीं, अपितु आत्मनिर्भरता है।'' इसके साथ ही उनका नारा था– ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।'' गरम विचारों वाले राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम में विदेशी वस्तुओं तथा संस्थाओं का बहिष्कार करना और स्वदेशी आन्दोलन तथा राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना करना मुख्य मुद्दे थे। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** के शब्दों में– ''उनके उपदेश, संगठन-पद्धति, विदेश विरोधी प्रचार और व्यायामशालाओं ने विद्रोह के ऐसे बीज बोए, जिनके अत्यधिक व्यापक परिणाम हुए।''

(xi) **राजनीतिक कारण–** गरम राष्ट्रवाद का उदय होने तथा विकास में राजनीतिक कारणों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। सन् 1892 से 1904 ई० तक ब्रिटेन में कंजर्वेटिव पार्टी का शासन रहा, जिसने उग्र साम्राज्यवादी नीति को अपनाया। वे भारतीयों को किसी भी रूप में राजनीतिक अधिकार प्रदान करने तथा राजनीतिक संस्थाओं की संरचनाओं एवं शक्तियों में किसी भी प्रकार के परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं थे। उनके द्वारा ऐसे कानूनों का निर्माण किया गया, जो भारतीयों के हितों के विरुद्ध थे। इसलिए धीरे-धीरे भारतीयों का ब्रिटिश न्यायप्रियता पर से विश्वास उठने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि अब स्वयं उदारवादी भी खुलकर ब्रिटेन की भारत विरोधी एवं साम्राज्यवादी नीतियों की आलोचना करने लगे।

(xii) **पाश्चात्य क्रान्तिकारी आन्दोलनों तथा विचारधाराओं का प्रभाव–** भारतीय नवयुवकों पर पाश्चात्य देशों में चलाए जा रहे क्रान्तिकारी आन्दोलनों, साहित्य एवं सिद्धान्तों ने बहुत गहरा प्रभाव डाला। विभिन्न देशों में स्वतन्त्रता के लिए चलाए गए आन्दोलनों ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत में भी संवैधानिक आन्दोलनों के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करना कोई आसान कार्य नहीं है। सफलता को तो केवल शक्ति, विद्रोह एवं क्रान्ति के मार्ग के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। आयरलैण्ड का आदर्श भारतीय नवयुवकों के समक्ष था, जहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उन्हें अपने रक्त का बलिदान करना पड़ा।

इन परिस्थितियों से बाध्य होकर उदारवादियों में से ही ऐसे नवयवुकों का उदय हुआ, जिन्होंने ब्रिटिश सरकार की अनौचित्यपूर्ण नीतियों का विरोध करने का साहस किया। ऐसे ही नवयुवकों की विचारधारा को गरम राष्ट्रवाद के नाम से जाना जाता है। आगे चलकर इसी विचारधारा ने क्रान्तिकारी विचारधारा को जन्म दिया।

5. उदारवाद व गरम राष्ट्रवाद की विचारधाराओं में क्या अन्तर था?

उ०– उदारवादी और गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादी दोनों ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की दो विचारधाराएँ रही हैं। इन दोनों विचारधाराओं का अन्तर निम्नप्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

(i) यद्यपि दोनों का मूल उद्देश्य एक था– स्वशासन की प्राप्ति, लेकिन स्वशासन के सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे। उदारवादी ब्रिटिश शासन की अधीनता में प्रतिनिधित्व तथा संसदीय संस्थाओं की स्थापना करना चाहते थे तथा वे क्रमिक राजनीतिक सुधारों के पक्ष में थे। इसके विपरीत, गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादी विदेशी शासन के कट्टर विरोधी तथा किसी भी रूप में उसके अस्तित्व के विरोधी थे।

(ii) उदारवादियों को अंग्रेजों की न्यायप्रियता में पूर्ण विश्वास था, जबकि गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों को अंग्रेजों की नीयत तथा उदारता में तनिक भी विश्वास नहीं था।

(iii) उदारवादियों के विचार में ब्रिटेन तथा भारत के हितों में मूलभूत विरोध नहीं था। इसके विपरीत, गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों की धारणा यह थी कि ब्रिटेन तथा भारत के हित एक-दूसरे से नितान्त विपरीत हैं।

(iv) उदारवादी भिक्षावृत्ति जैसे साधनों के समर्थक थे, जबकि गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादी इन साधनों को अपनाना सम्मान के विरुद्ध समझते थे। गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों के प्रमुख साधन विदेशी वस्तुओं एवं संस्थाओं का बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा थे और बहिष्कार इनका सबसे प्रमुख साधन था।

(v) उदारवादी पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के पोषक थे, जबकि गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादी प्राचीन हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृति तथा उसके आधार पर विकसित हिन्दू राष्ट्रीयता के समर्थक थे।

(vi) उदारवादियों के नेता गोपालकृष्ण गोखले थे और गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों के नेता बाल गंगाधर तिलक थे।

(vii) उदारवादी नौकरशाही व्यवस्था को पसन्द करते थे, किन्तु गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादी इस व्यवस्था के विरोधी थे।

(viii) उदारवादी सरकार के साथ सहयोग करने में विश्वास रखते थे, किन्तु गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादी सरकार से असहयोग करने के पक्षपाती थे।

(ix) उदारवादियों का आदर्श प्रेम व सेवा था, जबकि गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों का आदर्श सेवा और कष्ट सहना था।

(x) उदारवादी स्वशासन में विश्वास रखते थे और गरम विचारधारा वाले राष्ट्रवादियों की स्वराज्य में आस्था थी।

6. गोपालकृष्ण गोखले व बाल गंगाधर तिलक का परिचय देते हुए दोनों की विचारधारा के अन्तर को समझाइए।

उ०– **गोपालकृष्ण गोखले–** कांग्रेस के उदारवादी नेताओं में गोपालकृष्ण गोखले का प्रमुख स्थान है। ये एक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। इनका जन्म 9 मई, 1866 ई० को महाराष्ट्र के एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सन् 1902 ई० में ये फर्ग्यूसन कॉलेज के प्रधानाध्यापक पद से सेवानिवृत्त हुए तथा अपनी बुद्धिमता और कर्त्तव्यपरायणता के कारण 'सार्वजनिक सभा' के मन्त्री बने। यह सभा बम्बई की एक प्रमुख राजनीतिक संस्था थी। सन् 1889 ई० में इन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता कांग्रेस में प्रवेश किया।

सन् 1902 ई० में ये केन्द्रीय व्यवस्थापिका के सदस्य निर्वाचित हुए। सदस्य बनने के बाद इन्होंने नमक-कर-उन्मूलन, सरकारी नौकरियों में चुनाव, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार, स्वतन्त्र भारतीय अर्थव्यवस्था आदि के पक्ष में सराहनीय प्रयत्न किए। मिण्टो-मार्ले सुधार योजना के निर्माण में उनका सक्रिय योगदान रहा था। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भी प्रयत्न किया। उनके अपने देश के प्रति नि:स्वार्थ सेवा-भाव को देखकर, लॉर्ड कर्जन जैसे व्यक्ति ने भी उनकी प्रशंसा में कहा था, ''ईश्वर ने आपको असाधारण योग्यता दी है और आपने बिना किसी शर्त के इसको देश-सेवा में लगा दिया है।''

सन् 1905-1907 ई० में उन्होंने ब्रिटिश सरकार के प्रतिक्रियावादी कार्यों का कड़ा विरोध किया। इसके साथ ही स्वतन्त्रता को संवैधानिक ढंग से प्राप्त करने में भी प्रयत्न किया। इन्होंने सन् 1905 ई० में भारत सेवक समिति नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का लक्ष्य मातृ-भाषा के प्रति आदर की भावना उत्पन्न करना और ऐसे सार्वजनिक कार्यकताओं को शिक्षित करना था, जो देश के उन्नति के लिए संवैधानिक रूप से कार्य करें। गोखले ने भारत में सुधारों की एक योजना भी तैयार की, जिसे गोखले की 'राजनीतिक वसीयत' या 'इच्छा-पत्र' कहा जाता है।

बाल गंगाधर तिलक– बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस के उग्रवादी दल के प्रतिभासम्पन्न नेता थे। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादी विचारधारा के वे ही जन्मदाता थे। उन्होंने ही सबसे पहले नारा लगाया, ''स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।'' वास्तव में, उन्होंने ही देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान की थी तथा कांग्रेस के आन्दोलन को जन-आन्दोलन में परिवर्तित करने का सराहनीय कार्य किया था।

बाल गंगाधर तिलक का जन्म 12 जुलाई, 1856 ई० में रत्नागिरि के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। अपना अध्ययन कार्य समाप्त करने के बाद वे 'दक्षिण शिक्षा समिति' द्वारा स्थापित पूना के 'न्यू इंग्लिश स्कूल' में गणित के अध्यापक नियुक्त हो गए। तिलक जी स्वभाव से निर्भीक, दृढ़-निश्चयी एवं स्वाभिमानी थे। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन देश की सेवा में समर्पित कर दिया। 1 अगस्त, 1920 ई० को ये 64 वर्ष की आयु पूरी कर स्वर्ग सिधार गए।

तिलक और गोखले की विचारधारा में अन्तर– तिलक एवं गोखले दोनों उच्चकोटि के महान् देशभक्त एवं राष्ट्रीय नेता थे किन्तु दोनों के विचारों में मौलिक अन्तर था। **डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या** ने अपने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास में तिलक और गोखले की तुलना इस प्रकार की है— तिलक और गोखले दोनों ऊँचे दर्जे के देशभक्त थे। दोनों ने जीवन में भारी त्याग किया था, परन्तु उनके स्वभाव एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे। यदि हम उस समय की भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि गोखले नरम विचारों के थे और तिलक गरम विचारों के। गोखले मौजूदा संविधान को मात्र सुधारना चाहते थे लेकिन तिलक उसे नए सिरे से बनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ मिलकर कार्य करना था, तिलक को उससे अनिवार्यत: संघर्ष करना था। गोखले जहाँ सम्भव हो, सहयोग करने तथा जहाँ जरूरी हो, विरोध करने की नीति के पक्षपाती थे। तिलक का झुकाव रुकावट तथा अडंगा डालने की नीति की ओर था। गोखले को प्रशासन तथा उनके सुधार की मुख्य चिन्ता थी, तिलक के लिए राष्ट्र तथा उसका निर्णय मुख्य था। गोखले का आदर्श था— प्रेम और सेवा, तिलक का आदर्श था— सेवा और कष्ट सहना। गोखले विदेशियों को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते थे, तिलक का तरीका विदेशियों को देश से हटाना था। गोखले दूसरों की सहायता पर निर्भर करते थे, तिलक अपनी सहायता स्वयं करना चाहते थे। गोखले उच्च वर्ग और शिक्षित लोगों की ओर देखते थे, तिलक सर्वसाधारण या आम जनता की ओर। गोखले का अखाड़ा था— कौंसिल भवन, तिलक का मंच था— गाँव की चौपाल। गोखले अंग्रेजी में लिखते थे, तिलक मराठी में। गोखले का उद्देश्य था— स्वशासन, जिसके लिए लोगों को अंग्रेजों द्वारा पेश की गई कसौटी पर खरा उतरकर अपने को योग्य साबित करना था, तिलक का उद्देश्य था— स्वराज्य, जो प्रत्येक भारतवासी का जन्मसिद्ध अधिकार था और जिसे वे बिना किसी बाधा की परवाह किए लेकर ही रहेंगे। गोखले अपने समय के साथ थे, जबकि तिलक अपने समय के बहुत आगे।

7. होमरूल तथा मार्ले मिण्टो सुधार पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– होमरूल आन्दोलन (1916 ई०)– स्वशासन प्राप्त करने का यह वैधानिक संगठन था। एनी बेसेण्ट ने 1 सितम्बर, 1916 में मद्रास (चेन्नई) में होमरूल लीग की स्थापना की। इसकी आठ स्थानों पर शाखाएँ खोली गई। मद्रास (चेन्नई) के चीफ जस्टिस सुब्रह्मण्यम् अय्यर का इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा। वस्तुत: होमरूल आन्दोलन की शुरूआत ही लोकमान्य तिलक ने की थी। मार्च, 1916 में तिलक ने पूना में होमरूल लीग की स्थापना की। लीग का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत सभी वैधानिक तरीकों से स्वशासन प्राप्त करना और इस दिशा में जनमत तैयार करना था। तिलक ने अपने मराठा तथा केसरी व एनी बेसेण्ट ने अपने 'कॉमन वील' तथा 'न्यू इण्डिया' नामक समाचार-पत्रों के माध्यम से गृह-शासन की माँग का जोरदार प्रचार किया। शीघ्र ही यह आन्दोलन समस्त भारत में फैल गया। इसी आन्दोलन के दौरान तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा दिया था। इंग्लैण्ड में भी होमरूल लीग की स्थापना हुई। मजदूर दल के नेता 'होराल्ड लास्की' ने इसे प्रोत्साहन दिया।

1917 ई० तक होमरूल आन्दोलन अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। सरकार ने तिलक और एनी बेसेण्ट के बढ़ते हुए प्रभाव को गम्भीरता से देखा एवं दमनकारी नीति अपनाई। एनी बेसेण्ट को गिरफ्तार कर लिया तथा तिलक पर भी दिल्ली और पंजाब में आने पर प्रतिबन्ध लगाए गए। एनी बेसेण्ट की गिरफ्तारी के विरोध में जगह-जगह सभाएँ हुईं। स्थान-स्थान पर प्रदर्शन किए गए। मजबूर होकर सरकार ने एनी बेसेण्ट को छोड़ दिया। इन्हीं दिनों 20 अगस्त, 1917 को भारत सचिव मॉण्टेग्यू की प्रसिद्ध

घोषणा हुई, इस घोषणा के अनुसार भारत में धीरे-धीरे उत्तरदायी सरकार देने का प्रावधान रखा गया। इस घोषणा के बाद होमरूल आन्दोलन समाप्त हो गया।

मार्ले-मिण्टो सुधार (1909 ई०)– उत्तर के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या— 5 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

8. निम्नलिखित के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

(क) मुस्लिम लीग **(ख) गदर पार्टी**

(ग) उदारवादी व अतिवादी **(घ) लखनऊ समझौता**

उ०–(क) **मुस्लिम लीग–** हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक वैमनस्य पैदा करना बंगाल विभाजन का प्रमुख उद्देश्य था। लॉर्ड कर्जन अपने इस उद्देश्य में लगभग सफल हो चुका था। अब मुसलमानों को बंगाल विभाजन के पक्ष में करने के लिए अंग्रेजों ने प्रयास करना शुरू कर दिया। अंग्रेज सरकार ने भारतीय मुसलमानों को कांग्रेस विरोधी किसी संस्था को बनाने के लिए प्रेरित किया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अंग्रेजों के समर्थक ढाका के नवाब सलीमुल्ला खाँ ने 'मोहम्मडन एजुकेशनल कॉन्फ्रेंस' के अवसर पर मुसलमानों के सामने एक अलग राजनीतिक संस्था बनाने का प्रस्ताव रखा। 30 दिसम्बर, 1906 ई० को नवाब बकर-उल-मुल्क की अध्यक्षता में 'मुस्लिम लीग' की स्थापना करने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय से ब्रिटिश सरकार को बहुत प्रसन्नता हुई। क्योंकि उनकी 'फूट डालो राज करो' की नीति सफल हो रही थी। जल्दी ही तत्कालीन अंग्रेजी वायसराय लॉर्ड मिण्टो के निजी सचिव डनलप स्मिथ ने अलीगढ़ कॉलेज के प्रधानाचार्य आर्कबोल्ड को पत्र लिखकर मुसलमानों का एक शिष्टमण्डल अपनी माँगों के साथ वायसराय से मिलने के लिए आमंत्रित किया। अत: 1 अक्टूबर, 1906 ई० को आगा खाँ के नेतृत्व में एक मुस्लिम शिष्टमण्डल लॉर्ड मिण्टो से मिला। लॉर्ड मिण्टो ने मुसलमानों की माँगों को पूरा करने का आश्वासन दिया। परिणामस्वरूप 30 दिसम्बर, 1906 ई० में इसी शिष्टाण्डल ने मुस्लिम लीग की स्थापना की। इस लीग का पहला अधिवेशन नवाब सलीमुल्ला खाँ के नेतृत्व में ढाका में हुआ। अत: मुस्लिम लीग की स्थापना अंग्रेजो की 'फूट डालो, राज करो' की नीति की सबसे बड़ी सफलता थी।

(ख) **गदर पार्टी आन्दोलन–** लाला हरदयाल ने 10 मई, 1913 को कैलिफोर्निया के यूली नामक नगर की एक सभा में गदर पार्टी की स्थापना की। पार्टी ने 'गदर समाचार-पत्र' भी निकाला। प्रथम महायुद्ध के समय गदर पार्टी ने इंग्लैण्ड के शत्रुओं से साँठगाँठ कर भारत में 21 फरवरी, 1915 को सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई। लाहौर इसकी योजना का केन्द्र था। विष्णु गणेश पिंगले और रासबिहारी इसके प्रमुख आयोजक थे। किन्तु इस योजना का पता अंग्रेज अधिकारियों को लगने से यह असफल रही। उन्होंने लगभग सभी नेताओं तथा समर्थकों को गिरफ्तार कर लिया। गदर आन्दोलनकर्ताओं में से सत्रह व्यक्तियों को फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया। कई लोगों को आजीवन कारावास मिला। इनके अतिरिक्त गदर आन्दोलन से सम्बन्धित दो दर्जन अन्य सिक्खों को भी फाँसी दे दी गई।

गदर पार्टी आन्दोलन में लाला हरदयाल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इनकी गतिविधियों का केन्द्र अमेरिका रहा। भारत में भी इसके विस्तार के प्रयत्न हुए। इस हेतु अनेक प्रतिनिधिमण्डल भारत भेजे गए। भारत सरकार को अमेरिका व कनाड़ा से सिक्खों के आगमन से गहरी चिन्ता हुई। कामा गाता मारू नामक एक जलयान तीन सौ इक्यावन यात्रियों के साथ 26 सितम्बर, 1914 को हुगली पहुँचा। भारत सरकार ने 29 अगस्त को विदेशियों के लिए एक अध्यादेश पारित किया, जिसके अन्तर्गत किसी का भी भारत आगमन अवैध माना जा सकता था। इन भारतीयों को भी उपर्युक्त नियम के अन्तर्गत रोकने की कोशिश की गई। बजबज नामक बन्दरगाह पर जहाज पहुँचने पर तलाशी हुई और संघर्ष हुआ। अठारह यात्री मार दिए गए और लगभग पच्चीस यात्री घायल हो गए। वास्तव में यह विद्रोह नहीं था, क्रूर हत्याकाण्ड था। कुछ यात्रियों को पंजाब भेज दिया गया। इसी भाँति 29 अक्टूबर, 1915 को एक-दूसरा जहाज 'एस० एस० तोशामारू' भारत पहुँचा।

(ग) **उदारवादी व अतिवादी–** सन् 1885-1905 ई० के काल को उदारवादियों का काल अथवा उदार राष्ट्रवाद का काल भी कहा जाता है। प्रारम्भिक दौर में कांग्रेस की पूरी बागडोर उदारवादियों के हाथ में थी। इस समय भारतीय-राजनीति में ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव था, जो उन अंग्रेजों में श्रद्धा रखते थे, जिनका उदारवादी विचारधारा में विश्वास था। दादा भाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, रासबिहारी घोष, पंडित मदन मोहन मालवीय, गोपालकृष्ण गोखले आदि नेता उदारवादी विचारधारा के प्रमुख नेता थे। कुछ अंग्रेज भी उदारवादी विचारधारा के समर्थक थे, जिनमें ह्यूम, विलियम वेडरवर्न, जॉर्ज यूल, स्मिथ प्रमुख थे। उदारवादी नेताओं ने कांग्रेस का दो दशकों (1885-1905 ई०) तक मार्गदर्शन किया। ये उदारवादी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को अभिशाप नहीं वरन् वरदान समझते थे।

1895-1905 ई० के काल में भारत और विदेशों में कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं और कुछ ऐसी शक्तियाँ क्रियाशील हुई, जिन्होंने भारतीय राष्ट्र के अपेक्षाकृत युवा वर्ग को पूर्ण स्वतंत्रता की माँग के लिए प्रेरित किया और कांग्रेस के पुराने नेताओं और उनकी भिक्षा-नीति के फलस्वरूप कांग्रेस में नए दल का उदय हुआ, जो पुराने नेताओं के ढोंग और आदर्शो का कड़ा आलोचक बन गया। यह दल अतिवादी कहलाया। अतिवादी विचारधारा के समर्थकों में आत्मबलिदान और स्वतंत्रता की भावना के साथ-साथ, प्रबल देश-प्रेम तथा विदेशी शासन के प्रति घृणा थी। इस विचारधारा के समर्थक उग्र नीति का प्रयोग चाहते थे। जिसके अन्तर्गत विदेशी वस्तुओं और शासन का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग एवं स्वशासन की

स्थापना आदि को सम्मिलित किया जा सकता था। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्रपाल, अरविन्द घोष आदि अतिवादी प्रमुख नेता थे।

(घ) लखनऊ समझौता– 1907 ई० में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस में फूट पड़ने से अतिवादी नेता, उदारवादी कांग्रेस से पृथक् हो गए। 1907 ई० से 1915 ई० तक कांग्रेस पर उदारवादी नेताओं का प्रभुत्व बना रहा। इस समय तक कांग्रेस अपनी भिक्षावृत्ति की नीतियों के कारण एक उत्साहहीन संस्था का रूप धारण कर चुकी थी। इसी पृष्ठभूमि में बम्बई (मुम्बई) कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस के संविधान में संशोधन कर दिया, जिसके अनुसार 1916 ई० में अतिवादी नेता कांग्रेस में प्रवेश कर सकते थे। 1916 ई० में कांग्रेस और मुस्लिम लीग का अधिवेशन लखनऊ में एक साथ ही आयोजित हुआ। यह दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण था— एक, इसमें अतिवादियों का पुन: प्रवेश और दूसरा, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य समझौता। इस समझौते के अन्तर्गत कांग्रेस ने अस्थायी रूप से मुसलमानों के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन की बात मान ली और मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की स्वशासन की माँग का समर्थन करना स्वीकार कर लिया। यह समझौता लखनऊ पैक्ट के नाम से विख्यात है। इस प्रकार अनजाने में एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हो गई जिसकी परिणति भारत विभाजन के रूप में हुई। रोचक बात यह है कि लखनऊ समझौते में एक ओर बाल गंगाधर तिलक और एनी बेसेण्ट और दूसरी ओर मुहम्मद अली जिन्ना की अग्रणी भूमिका थी।

14

राजनीति में अहिंसा का प्रयोग
(Exertion of Ahimsa in Politics)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1885 ई० **2. 1912 ई०** **3. 1916 ई०** **4. 1917 ई०**
5. 1919 ई० **6. 1920 ई०** **7. 1922 ई०** **8. 1930 ई०**
9. 1931 ई० **10. 1942 ई०** **11. 1944 ई०**

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 223 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 223 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 224 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 224 व 225 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. चोरी चौरा काण्ड कहाँ हुआ था?

उ०– असहयोग आन्दोलन के समय देशभर में किसानों के व्यापक आन्दोलन हो रहे थे। इसी दौरान उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के चोरी चौरा नामक ग्राम में 5 फरवरी 1922 ई० में लगभग 3000 सत्याग्रहियों ने एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन किया। आयोजन शान्ति पूर्ण था। अचानक भीड़ पर पुलिस ने गोलियाँ चला दी। भीड़ उत्तेजित हो गई और थाने को घेर लिया गया एवं 22 पुलिसकर्मियों को जिन्दा जला दिया गया। इस घटना को इतिहास में चोरी चौरा काण्ड के नाम से जाना जाता है।

2. भारत छोड़ो आन्दोलन पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

उ०– गाँधी जी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध किया गया अन्तिम आन्दोलन 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के नाम से जाना जाता है। 8 अगस्त, 1942 को बम्बई (मुम्बई) में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया गया। इस आन्दोलन की विशेषता थी कि यह एक अहिंसात्मक आन्दोलन नहीं था, बल्कि यह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनता के आक्रोश का प्रतीक था। महात्मा गाँधी ने इस आन्दोलन में 'करो या मरो' का नारा दिया। यही आन्दोलन भारत में ब्रिटिश शासन के सूर्यास्त का कारण बना।

3. खिलाफत आन्दोलन के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

उ०– खिलाफत आन्दोलन, भारतीय मुसलमानों ने तुर्की के खलीफा के समर्थन में ब्रिटेन के खिलाफ चलाया। इस आन्दोलन का समर्थन गाँधी जी ने भी किया। इसका उद्देश्य खलीफा की शक्ति को पुन: स्थापित करना तथा भारतीय हिन्दू और मुसलमानों को एक सूत्र में बाँधना था।

4. जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

उ०– रॉलेट ऐक्ट के विरोध में अमृतसर के जलियाँवाला बाग में 13 अप्रैल, 1919 को बैसाखी के दिन एक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में रौलेट ऐक्ट का विरोध करने के लिए लगभग 2,000 स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया। उस समय अंग्रेजी सरकार ने किसी भी सामूहिक एकत्रीकरण एवं जुलूस पर प्रतिबन्ध की घोषणा कर रखी थी। जनरल डायर ने सभा करने वाले लोगों को सबक सिखाना चाहा। उसने वहाँ पहुँचते ही गोली चलाने का आदेश दे दिया। लगभग दस मिनट तक निरन्तर गालियाँ चलती रहीं। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार वहाँ 379 लोग मारे गए। जबकि कांग्रेस समिति के अनुसार मरने वालों की संख्या लगभग 1,000 थी।

5. रॉलेट ऐक्ट पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों को अनेक सुविधाएँ देने का आश्वासन दिया था परन्तु विश्वयुद्ध के पश्चात् भी अंग्रेजों ने अपनी नीतियों को नहीं बदला और पहले से भी अधिक कठोर नियम भारतीयों पर लागू कर दिए। 19 मार्च, 1919 को अंग्रेजी सरकार ने दमनकारी कानून 'रॉलेट ऐक्ट' को पारित किया। इस ऐक्ट के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को सन्देह के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता था, परन्तु उसके विरुद्ध ''न कोई अपील, न कोई दलील और न कोई वकील'' किया जा सकता था। इसे काला कानून कहकर पुकारा गया। इस ऐक्ट के विरोध में सम्पूर्ण भारत में हड़ताल आयोजित की गई एवं जुलूस निकाले गए।

6. किन्हीं दो क्रान्तिकारियों का परिचय दीजिए।

उ०– **चन्द्रशेखर आजाद (1906-1931)–** चन्द्रशेखर आजाद का जन्म मध्य प्रदेश के झाबुआ तहसील के भावरा गाँव में हुआ। ब्राह्मण परिवार में जन्मे चन्द्रशेखर आजाद एक प्रमुख क्रान्तिकारी थे। इन्होंने 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ' की स्थापना की। इन्होंने अपने दल के सदस्यों के साथ लाला लाजपत राय की हत्या के लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या की तथा केन्द्रीय असेम्बली हॉल में बम धमाका किया। चन्द्रशेखर आजाद को 23 फरवरी, 1931 को इलाहाबाद के कम्पनी बाग में पुलिस से लड़ते हुए अपनी ही गोली से वीरगति प्राप्त हुई। वे विदेशी शासन के कभी हाथ न आए, इस प्रकार उन्होंने अपना 'आजाद' नाम सार्थक रखा।

सुखदेव (1907-1931)– सुखदेव को बाल्यकाल से ही मातृभूमि से विशेष अनुराग था। रानी लक्ष्मीबाई व अन्य वीरों की वीरगाथा उन्हें प्रभावित करती थी। वे भगत सिंह के बचपन के साथी थे तथा भगत सिंह को क्रान्तिपथ पर लाने वाले सुखदेव ही थे। वे 'नौजवान भारत सभा' के संस्थापक थे। 15 अप्रैल को लाहौर बम फैक्ट्री कांड में सुखदेव पकड़े गए तथा 23 मार्च, 1931 को सुखदेव अपने मित्र भगत सिंह व राजगुरु के साथ फाँसी पर चढ़ गए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. ''महात्मा गाँधी एक महान् राष्ट्र निर्माता थे।'' इस कथन की पुष्टि में तर्क प्रस्तुत कीजिए।

उ०– **महात्मा गाँधी का परिचय–** महात्मा गाँधी भारत की ही नहीं, वरन् विश्व की महान् विभूतियों में से एक थे। उनका जन्म 2 अक्टूबर, 1869 ई० को काठियावाड़ के एक नगर पोरबन्दर में हुआ था। उनका पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गाँधी था। उनके पिता का नाम करमचन्द गाँधी और माता का नाम पुतलीबाई था। उनके पिता और दादा काठियावाड़ की एक छोटी-सी रियासत के दीवान थे। मैट्रीकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे वकालत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड गए और तीन वर्ष पश्चात् वहाँ से सफल बैरिस्टर बनकर भारत लौटे।

गाँधी जी के विचार– महात्मा गाँधी वर्तमान युग के एक महान् चिंतक, विचारक और सुधारक थे, जिन्होंने भारतीय सामाजिक जीवन की मूल समस्याओं पर गहन चिंतन व मनन किया। गाँधी जी के राजनीतिक विचार धर्म पर आधारित थे। वे राजनीति में सत्य, अहिंसा, नैतिकता, विश्वबन्धुत्व, त्याग और आत्मविश्वास को महत्त्व देते थे। गाँधी जी ने अपने विचार 1909 ई० में 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक में लिखे। गाँधी जी ने सत्याग्रह को सर्वोपरि मानते हुए लिखा है कि ''सत्याग्रह एक ऐसा आध्यात्मिक सिद्धान्त है, जो मनुष्य-मात्र के प्रेम पर आधारित है। इसमें विरोधियों के प्रति घृणा की भावना नहीं है।'' आगे अहिंसा के बारे में लिखते हैं, ''यद्यपि अहिंसा का अर्थ क्रियात्मक रूप से जानबूझकर कष्ट उठाना है..... इस सिद्धान्त को मानने वाला व्यक्ति अपनी इज्जत, धर्म और आत्मा की रक्षा के लिए एक अन्यायपूर्ण साम्राज्य की समस्त शक्तियों को भी चुनौती दे सकता है। अपने पराक्रम द्वारा उसके पतन के बीज भी बो सकता है।'' महात्मा गाँधी का साधन और साध्य के बारे में निश्चित मत था कि केवल साध्य ही पवित्र नहीं होना चाहिए बल्कि साधन भी उतना ही पवित्र होना चाहिए। वे साधन और साध्य को बीज और पौधे की भाँति एक-दूसरे से सम्बन्धित मानते थे। उनका मत था कि हिंसा के मार्ग से प्राप्त साधन बाद में नष्ट हो जाएगा। विश्व के इतिहास में उनका यह प्रयोग अलौकिक और कल्पनातीत था।

गाँधी जी का भारतीय राजनीति में प्रवेश– भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में 1919 ई० का वर्ष एक विशिष्ट स्थान रखता है, क्योंकि इसी वर्ष महात्मा गाँधी जैसे महान् व्यक्तित्व ने देश के राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय रूप से पर्दापण किया। उन दिनों प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था। युद्ध में गाँधी जी ने ब्रिटिश सरकार की बहुत सहायता की। परन्तु युद्ध की समाप्ति पर 'रौलेट ऐक्ट' के दुष्परिणामों, जलियाँवाला बाग हत्याकांड तथा खिलाफत के प्रश्न के कारण देश में असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात किया और कुछ ही वर्षों में उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गई। 1919 ई० से लेकर 1947 ई० तक गाँधी जी ने कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन का सफल नेतृत्व किया। इसी कारण उन्हें इसी काल के राष्ट्रीय आन्दोलन का कर्णधार कहा जाता है। देश की

राजनीति पर गाँधी जी का व्यापक प्रभाव था। गाँधी जी ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए तीन महत्त्वपूर्ण आन्दोलन चलाए थे— 'असहयोग आन्दोलन', 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' और 'भारत छोड़ो आन्दोलन'। सत्याग्रह और अहिंसा की नीति से ही उन्होंने विश्व की महान् शक्ति ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध किया और अन्त में विवश होकर 15 अगस्त, 1947 ई० को अंग्रेजों ने भारत को स्वतन्त्र कर दिया।

गाँधी जी के कार्य– गाँधी जी ने अहिंसा के मार्ग पर चलकर सर्वप्रथम सत्याग्रह आन्दोलन 1917 ई० में बिहार चम्पारन में तथा दूसरा सत्याग्रह आन्दोलन 1918 ई० में गुजरात के खेड़ा में चलाया। महात्मा गाँधी द्वारा किसानों का समर्थन करने के कारण सरकार को झुकना पड़ा। सन् 1918 ई० में महात्मा गाँधी ने अहमदाबाद मिल मजदूरों की समस्या को अनशन द्वारा समाप्त कर दिया। अपने इन कार्यों के कारण महात्मा गाँधी ने भारतीय समाज के निर्बल वर्ग से अपना तादात्मय स्थापित कर लिया व भारतीय राजनीति में एक नैतिक शक्ति के रूप में सामने आए।

सामाजिक जागरण में महात्मा गाँधी का योगदान– गाँधी जी ने सामाजिक न्याय की भावना बड़ी प्रबल थी। उनके हृदय में भारत की शोषित और दलित जातियों के प्रति विशेष सहानुभूति, प्रेम और सहयोग की भावना थी। उन्होंने अछूतों के पक्ष में आवाज उठाई और उनके हितों को सुरक्षित करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया। महात्मा गाँधी ने इन्हें 'हरिजन' कहकर सम्मानित किया। उन्होंने इसी उद्देश्य से 'हरिजन' नामक पत्रिका भी प्रकाशित कराई, जिनके माध्यम से वे छुआछूत के विरुद्ध प्रभावशाली लेख प्रकाशित करते रहते थे। इसके साथ ही उन्होंने हिन्दुओं को हरिजनों के प्रति उदार होने की प्रेरणा दी और मन्दिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल देने को कहा। गाँधी जी स्वयं भी हरिजनों की बस्तियों में रहे, जिससे उच्च वर्ग के लोग हरिजनों से घृणा करना छोड़ दें। गाँधी जी महिलाओं के उत्थान के समर्थक थे तथा वे विधवा पुनर्विवाह में विश्वास रखते थे। उन्होंने मद्यपान का भी विरोध किया तथा वे समाज से शोषण का अन्त करना चाहते थे। गाँधी जी गौवंश की रक्षा को धार्मिक व आर्थिक दोनों दृष्टियों से आवश्यक मानते थे। अत: उन्होंने गौवध निषेध का समर्थन किया था। महात्मा गाँधी के इन्हीं प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हमारे राष्ट्रीय जीवन में सामाजिक आदर्शों और समानता की भावना विकसित हुई, जिसने आधुनिक भारत की आधारशिला रखने में बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उल्लेखनीय है कि भारतीय जीवन-पद्धति पर गाँधीवादी दर्शन का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि उनके कुछ सिद्धान्त भारतीय संविधान के भाग IV में राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अन्तर्गत समाहित किए गए हैं।

उपर्युक्त सुधारों के अतिरिक्त महात्मा गाँधी साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। उनकी यह पंक्ति आज भी हमारे हृदय को झंकृत कर देती है, ''ईश्वर अल्ला एक ही नाम। सब को सन्मति दे भगवान।'' वे चाहते थे कि उनके देशवासी प्रेम और शान्ति से रहें। वे मानवता के सच्चे हितैषी थे। इस दृष्टि से महात्मा गाँधी को आधुनिक भारत का युग-पुरुष एवं राष्ट्रनिर्माता कहना सर्वथा उचित है।

2. महात्मा गाँधी की विचारधारा व कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिए–

(क) असहयोग आन्दोलन **(ख) सविनय अवज्ञा आन्दोलन**

(ग) साइमन कमीशन **(घ) भारत छोड़ो आन्दोलन**

उ०–**(क) असहयोग आन्दोलन–** रॉलेट ऐक्ट, जलियाँवाला बाग काण्ड और खिलाफत आन्दोलन के उत्तर में गाँधी जी ने 1 अगस्त, 1920 ई० को असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने की घोषणा कर दी। सितम्बर, 1920 ई० में कलकत्ता (कोलकाता) के विशेष अधिवेशन में और पुन: दिसम्बर, 1920 ई० में नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में इसका समर्थन किया गया। कांग्रेस का लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन की बजाय स्वराज्य घोषित करना था। मोहम्मद अली जिन्ना, एनी बेसेण्ट और विपिन चन्द्र कांग्रेस के इस असहयोग से सहमत न थे, अत: उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी।

असहयोग आन्दोलन कार्यक्रम के दो मुख्य पक्ष थे— ध्वंसात्मक और रचनात्मक।

(i) **ध्वंसात्मक कार्यक्रम–** इसमें उपाधियों और अवैतनिक पदों का परित्याग, सरकारी और गैर सरकारी समारोहों का बहिष्कार, सरकारी नियन्त्रण वाले विद्यार्थियों तथा कॉलेजों का त्याग, वकीलों तथा मुवक्किलों द्वारा ब्रिटिश न्यायालयों का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि शामिल थे।

(ii) **रचनात्मक कार्यक्रम–** इसमें राष्ट्रीय न्यायालयों और विद्यालयों की स्थापना, स्वदेशी को बढ़ावा देना, चरखा और खादी को लोकप्रिय बनाना, स्वयं सेवक दल का गठन तथा तिलक स्मारक के लिए स्वराज कोष के रूप में एक करोड़ रुपए एकत्र करना मुख्य कार्य थे।

आन्दोलन का प्रारम्भ महात्मा गाँधी ने अपनी उपाधियाँ त्यागकर किया। देश के अन्य नेताओं और प्रभावशाली व्यक्तियों ने भी अपनी उपाधियाँ और पदवियाँ छोड़ दीं। विद्यार्थियों ने स्कूल और कॉलेज छोड़े। इस दौरान काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, जामिया मिलिया इस्लामिया, गुजरात विद्यापीठ जैसे राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना हुई। देश के सभी बड़े नेताओं ने अपनी वकालत छोड़ दी। विधानमण्डलों का बहिष्कार किया गया। कोई भी कांग्रेसी विधानमण्डल के चुनाव में खड़ा नहीं हुआ। नवम्बर, 1921 में प्रिस ऑफ वेल्स का बहिष्कार किया गया। सरकार ने

कांग्रेस और खिलाफत कमेटियों को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। स्थान-स्थान पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई और स्वदेशी का प्रचार किया गया। गाँधी जी ने लोगों को 'तिलक स्वराज्य फंड' दान देने का आग्रह किया परिणामस्वरूप एक करोड़ रुपए से भी अधिक धनराशि इकट्ठी हो गई।

(ख) सविनय अवज्ञा आन्दोलन– सविनय अवज्ञा का अर्थ अंग्रेजी शासन के कानून की शान्तिपूर्ण ढंग से अवहेलना करना था। महात्मा गाँधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कार्यक्रमों की घोषणा करने का अधिकार 1 फरवरी, 1930 ई० की कांग्रेस कार्यकारिणी से मिल चुका था, फिर भी गाँधी जी इस प्रयास में रहे कि संघर्ष का रास्ता टल जाए। इसके लिए गाँधी जी ने न्यूनतम कार्यक्रम के अनुसार 11 सूत्री माँग-पत्र लॉर्ड डरविन के सम्मुख रखा और कहा कि अगर सरकार उनकी माँगों पर ध्यान नहीं देती है, तो वह नमक कानून भंग कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर देंगे। सरकारी प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं थी। परिणामस्वरूप गाँधी जी ने यह कहते हुए प्रतिक्रिया व्यक्त की कि ''ब्रिटिश सरकार की संगठित हिंसा को रोकने का एकमात्र रास्ता संगठित अहिंसा ही हो सकती है।'' गाँधी जी ने नमक कानून तोड़कर इस आन्दोलन को शुरू करने का विचार किया।

गाँधी जी ने नमक कानून तोड़ने के लिए यादगार दाण्डी यात्रा अपने 78 अनुयायियों के साथ 12 मार्च, 1930 ई० को शुरू की। 200 मील की पदयात्रा कर 5 अप्रैल को दाण्डी पहुँचे और 6 अप्रैल को समुद्र के किनारे उन्होंने नमक कानून तोड़कर देशव्यापी आन्दोलन कर दिया। इस प्रकार नमक कानून को तोड़ना दमनकारी ब्रिटिश कानूनों के प्रति भारतीय जनता के विरोध का प्रतीक था।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कार्यक्रम–

(i) गाँव-गाँव में गैर-कानूनी नमक बनाया जाए।
(ii) महिलाओं द्वारा शराब, अफीम और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना दिया जाए।
(iii) विदेशी कपड़ों को जलाया जाए।
(iv) सरकारी कर्मचारी नौकरियों से त्यापत्र दें।
(v) छात्रों द्वारा स्कूल और कॉलेजों का बहिष्कार किया जाए।
(vi) भू-राजत्व, लगान व अन्य करों का भुगतान न किया जाए।
(vii) व्यापक हड़तालों और प्रदर्शनों का संयोजन किया जाए।

शीघ्र ही यह आन्दोलन तेजी से फैला। छात्रों, मजदूरों, किसानों और महिलाओं ने इसमें बढ़-चढ़कर भाग लिया। महिलाओं ने परम्परागत पर्दे को छोड़कर शराब की दुकानों पर धरने दिए। किसानों ने लगान देना बन्द कर दिया। विद्यार्थियों ने स्कूल और कॉलेज छोड़ें। विदेशी कपड़ों के बहिष्कार से कई अंग्रेजी मिलें बन्द हो गईं। यह एक ऐसा युग परिवर्तनकारी कदम था जो लीक से हटकर था। सरकार ने दमन की नीति अपनायी जिससे असन्तोष की आग भड़क उठी। गाँधी जी के साथ हजारों लोग गिरफ्तार हुए तथा कांग्रेस को अवैध घोषित कर दिया।

(ग) साइमन कमीशन– 1919 ई० के सुधार अधिनियम के अनुसार 10 वर्ष के बाद शासन सुधारों की समीक्षा के लिए कमीशन नियुक्त करने की व्यवस्था थी। अत: यह आयोग 1929 ई० में बैठना था, किन्तु इंग्लैण्ड की बदलती हुई परिस्थितियों के कारण वहाँ की अनुदार पार्टी ने यह कमीशन 1927 ई० में ही नियुक्त कर दिया। इसके अध्यक्ष सर जॉन साइमन के कारण यह 'साइमन कमीशन' के नाम से जाना जाता है। इसमें कुल सात सदस्य थे जिनमें कोई भी भारतीय न था। अत: इसे 'वाटर मैन कमीशन' भी कहते हैं।

कमीशन के आगमन से पूर्व ही इनका विरोध प्रारम्भ हो गया था। कांग्रेस, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग सभी ने इसका विरोध करने का निर्णय लिया। जब यह कमीशन 3 फरवरी, 1928 ई० को बम्बई (मुम्बई) पहुँचा तो इसे जबरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा। देश के सभी प्रमुख नगरों में नवयुवकों ने हड़ताल करके काली झण्डियाँ दिखाकर और 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारों से इसका स्वागत किया। लाहौर में विद्यार्थियों ने लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस निकाला। पुलिस अधिकारी साण्डर्स ने लाजपतराय पर लाठी से प्रहार किया। उनको सख्त चोटें आईं और एक महीने के बाद उनका देहान्त हो गया। मृत्यु से पूर्व उन्होंने भाषण देते हुए कहा, ''मेरे शरीर पर लगी एक-एक चोट ब्रिटिश राज्य के कफन की कील सिद्ध होगी।'' लाजपतराय की मृत्यु से युवा क्रान्तिकारी क्रोधित हो गए और साण्डर्स की हत्या कर दी। लखनऊ में भी पं० जवाहरलाल नेहरू और गोविन्द वल्लभपन्त के नेतृत्व में प्रदर्शन हुआ। कमीशन का विरोध प्राय: सभी दलों व वर्गों के बावजूद भी साइमन कमीशन ने दो बार भारत का दौरा किया। साइमन कमीशन की रिपोर्ट मई, 1930 ई० में प्रकाशित हुई, जिसमें निम्नलिखित बातें कही गईं—

(i) प्रान्तों में दोहरा शासन समाप्त करके उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाए।
(ii) भारत के लिए संघीय शासक की स्थापना की जाए।
(iii) उच्च न्यायालय को भारतीय सरकार के अधीन कर दिया जाए।
(iv) अल्पसंख्यकों के हितों के लिए गर्वनर व गर्वनर जनरल को विशेष शक्तियाँ प्रदान की जाएँ।

(v) सेना का भारतीयकरण हो।

(vi) बर्मा (म्यांमार) को भारत से पृथक् कर दिया जाए तथा सिन्ध एवं उड़ीसा (ओडिशा) को नये प्रान्त के रूप में मान्यता प्रदान की जाए।

(vii) प्रत्येक दस वर्ष पश्चात् भारत की संवैधानिक प्रगति की जाँच को समाप्त कर दिया जाए तथा ऐसा नवीन लचीला संविधान बनाया जाए, जो स्वत: विकसित होता रहे।

भारतीयों ने इस रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया क्योंकि इसमें आकाँक्षाओं के अनुरूप कहीं भी औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापना की बात नहीं कही गई। साइमन कमीशन का आगमन और बहिष्कार सम्पूर्ण देश की बिखरी हुई राजनीतिक भावना को जोड़ने में सहायक सिद्ध हुआ। लाला लाजपत राय की मृत्यु ने देश के नवयुवकों को उत्साहित किया। सर शिवस्वामी अय्यर ने इसे रद्दी की टोकरी में फेंकने लायक बताया, किन्तु फिर भी इस कमीशन की अनेक बातों को 1935 ई० के अधिनियम में अपना लिया गया।

(घ) भारत छोड़ो आन्दोलन– 'भारत छोड़ो आन्दोलन' गाँधी जी द्वारा आयोजित अन्तिम आन्दोलन था। इस आन्दोलन की विशेषता थी कि यह एक अहिंसात्मक आन्दोलन नहीं था, बल्कि भारतीय जनता के ब्रिटिश शासन के विरुद्ध चरम आक्रोश का प्रतीक था। अन्ततोगत्वा यही आन्दोलन भारत में ब्रिटिश राज्य के सूर्यास्त का कारण बना था।

वर्धा प्रस्ताव (जुलाई 1942 ई०)– अप्रैल 1942 ई० में इलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में यह निश्चित किया गया कि कांग्रेस किसी ऐसी स्थिति को किसी भी दशा में स्वीकार नहीं कर सकती, जिसमें भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के दास के रूप में कार्य करना पड़े। जुलाई 1942 ई० में कांग्रेस कार्य-समिति की वर्धा में सम्पन्न बैठक में गाँधी जी के इन विचारों का समथर्न किया गया कि भारत समस्या का समाधान अंग्रेजों के भारत छोड़ देने में ही है।

भारत छोड़ो प्रस्ताव– वर्धा प्रस्ताव के निश्चय के अनुसार 7 अगस्त, 1942 ई० को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। न केवल भारत वरन् सम्पूर्ण विश्व की निगाहें इस अधिवेशन पर लगी हुई थीं। भविष्य के इतिहास तथा घटनाओं ने इस अधिवेशन को ऐतिहासिक अधिवेशन की संज्ञा प्रदान की। इस समिति ने पर्याप्त विचार-विमर्श के उपरान्त भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया था, ''यह समिति कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के 14 जुलाई, 1942 ई० के प्रस्ताव का समर्थन करती है तथा उसका यह विश्वास है कि बाद की घटनाओं ने इसे और अधिक औचित्य प्रदान किया है और इस बात को स्पष्ट कर दिखाया है कि भारत में ब्रिटिश शासन का तत्काल ही अन्त भारत के लिए और मित्र-राष्ट्रों के आदर्शों की पूर्ति के लिए अति आवश्यक है। इसी पर युद्ध का भविष्य और स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्र की सफलता निर्भर है।''

भारत छोड़ो आन्दोलन के कारण– भारत छोड़ो आन्दोलन के अनेक कारण थे, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(i) क्रिप्स मिशन की असफलता– भारत के संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग की समस्याओं को सुलझाने के लिए मार्च 1942 ई० में सर स्टैफर्ड क्रिप्स की अध्यक्षता में क्रिप्स मिशन भारत आया। इस मिशन के प्रस्ताव व सुझाव दोषपूर्ण तथा अपर्याप्त थे।

(ii) युद्ध की भयंकरता व शरणार्थियों के प्रति कठोर व्यवहार– इधर भारत पर जापान के आक्रमण का भय लगातार बढ़ रहा था। अंग्रेजों द्वारा ऐसी स्थिति में भारतीयों को दिए जाने वाले प्रलोभन को महात्मा गाँधी ने 'विफल हो रहे बैंक का उत्तर दिनांकित चेक' कहा और प्रलोभन में न आने के लिए भारतीयों को आगाह किया। बर्मा से जो भारतीय शरणार्थी भारत आ रहे थे, वे दु:खभरी कहानियाँ सुनाते थे। बर्मा में रह रहे अंग्रेजों को बचाने का भरपूर प्रयास किया गया, लेकिन भारतीय मूल के लोगों का अपमान किया गया।

(iii) बंगाल में आतंक का राज्य– पूर्वी बंगाल में भय और आतंक का साम्राज्य था। वस्तुओं के मूल्य बढ़ते जा रहे थे, मुद्रा पर से विश्वास हटता जा रहा था। गाँधी जी को भी यह विश्वास हो गया था कि अंग्रेज भारत की सुरक्षा करने में असमर्थ है। इसलिए गाँधी जी ने अंग्रेजों को भारत से चले जाने को कहा।

(iv) दयनीय आर्थिक स्थिति– यूरोप युद्ध के कारण आर्थिक स्थिति बहुत खराब होती जा रही थी, वस्तुओं के मूल्य बढ़ते जा रहे थे और जनता को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। मध्यम वर्ग की स्थिति विशेष रूप से सोचनीय थी।

(v) जापानी आक्रमण का भय तथा असन्तोषजनक ब्रिटिश रक्षा-व्यवस्था– भारतीयों को यह विश्वास हो गया था कि ब्रिटेनवासी भारत की सुरक्षा करने में असमर्थ हैं। जापान ने सिंगापुर, मलाया तथा बर्मा पर विजय प्राप्त कर ली थी और भारत पर उसके आक्रमण का भय लगातार बढ़ता जा रहा था क्योंकि अंग्रेजों के गृह राज्य इंलैण्ड और जापान के बीच युद्ध चल रहा था और भारत में अंग्रेजी शासन होने के कारण जापान द्वारा भारत पर आक्रमण की आशंका थी। ऐसी स्थिति में भारतीय यह सोचते थे कि यदि अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएँ तो शायद जापान भारत पर आक्रमण न करे।

भारत छोड़ो आन्दोलन का कार्यक्रम– आन्दोलन से सम्बन्धित कर्णधारों के गिरफ्तार हो जाने से जनता दिशाहीन होकर असमंजस में पड़ गई। जनता के समक्ष कोई स्पष्ट निर्देश या कार्यक्रम नहीं था। गाँधी जी के केवल कुछ वाक्य थे— 'करो या मरो', 'अंग्रेजों भारत छोड़ो।' ऐसी दशा में कांग्रेस के शेष नेताओं की ओर से 12- सूत्री कार्यक्रम प्रकाशित कर दिया गया।

इस आन्दोलन के कार्यक्रम के मुख्य आधार निम्नलिखित थे—

(अ) 'करो या मरो' का नारा लगाया गया।

(ब) 12 सूत्री कार्यक्रम बनाया गया, जिसके द्वारा सार्वजनिक सभाएँ करने, नमक बनाने तथा कर न देने पर विशेष बल दिया गया।

(स) पुलिस थानों व तहसीलों को अहिंसात्मक तरीकों से अकर्मण्य बनाने पर बल दिया गया।

(द) आवागमन के साधनों को हानि पहुँचाने की मनाही की गई।

(य) अंग्रेजों से की गई अपील के बेकार हो जाने की अवस्था में कांग्रेस हिंसा का अनिच्छापूर्वक उपयोग करने के लिए बाध्य हो जाएगी।

4. कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन क्यों प्रारम्भ किया? उसके क्या परिणाम हुए?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 3 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

5. असहयोग आन्दोलन के कारण व उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए। इसके स्थगन के कारणों की व्याख्या कीजिए।

उ०– असहयोग आन्दोलन के कारण व उद्देश्य– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 3 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

असहयोग आन्दोलन का स्थगन– असहयोग आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। देशभर में किसानों द्वारा व्यापक आन्दोलन हो रहे थे। इसी दौरान उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में चौरीचौरा गाँव में 5 फरवरी 1922 ई० में लगभग 3,000 सत्याग्रहियों ने एक विशाल प्रदर्शन किया। प्रदर्शन पूरी तरह शान्त था। अचानक पुलिस ने भीड़ पर गोली चला दी। भीड़ उत्तेजित हो गई और थाने को घेर लिया गया एवं 22 पुलिसकर्मियों को जीवित जला दिया। गाँधी जी ने इसे गम्भीरता से लिया और 12 फरवरी, 1922 में इस आन्दोलन को स्थगित करने की घोषणा कर दी।

गाँधी जी की इस घोषणा से सम्पूर्ण देश स्तब्ध रह गया व लोगों का उत्साह ठण्डा पड़ गया। अंग्रेजों ने अवसर का लाभ उठाकर गाँधी जी को 10 मार्च, 1922 को बन्दी बना लिया व उन्हें छह वर्ष का कठोर दण्ड देकर जेल भेज दिया। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप कांग्रेस की स्थिति पहले से अधिक सुदृढ़ हो गई व कांग्रेस की पहुँच आम हिन्दुस्तानियों तक हो गई।

परन्तु असहयोग आन्दोलन को वापस लेना एक अविवेकपूर्ण निर्णय था। गाँधी जी के इस निर्णय की तत्कालीन नेताओं ने आलोचना की। सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार, "यह राष्ट्र के दुर्भाग्य के अलावा कुछ नहीं था।" देशबन्धु चितरंजनदास व मोतीलाल नेहरू भी इस निर्णय से दु:खी थे, क्योंकि उस समय आन्दोलन अपने चरम पर था।

ब्रिटिश शासन इस आन्दोलन से घबरा गया था। परन्तु गाँधी जी द्वारा इसे वापस लेने के निर्णय से अंग्रेजों ने चैन की साँस ली।

6. स्वाधीनता आन्दोलन में महात्मा गाँधी के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

7. सेल्यूलर जेल के विषय में लिखिए।

उ०– सेल्यूलर जेल (काले पानी की सजा)– भारत के क्रान्तिकारियों द्वारा आजादी के लिए लड़ी गई लड़ाई वास्तव में रोंगटे खड़े कर देने वाली अविस्मरणीय गौरव गाथा है। देश के असंख्य किशोर-किशोरियों, युवक और नवयौवनाओं ने अपना सर्वस्व देश की खातिर होम कर दिया था। ऐसे क्रान्तिकारियों से ब्रिटिश शासन सदैव भयग्रस्त रहता था। इनमें से अनेक राष्ट्रभक्तों को आजीवन कारावास की सजा दी जाती थी और भारत की मुख्यभूमि से सुदूर समुद्रपार अण्डमान के टापू पर निर्वासित कर दिया जाता था, इसी को काले पानी की सजा कहा जाता था। वहाँ पर विस्तृत क्षेत्र में कोठरीनुमा जेल थी, उसे कोठरीनुमा होने के कारण अंग्रेजी में Cellular Jail (सेल्यूलर जेल) कहा गया। इसमें तीन प्रकार के कैदी रखे जाते थे— राज्य के विद्रोही, जघन्य अपराधी तथा राजनीतिक बन्दी।

इस जेल का निर्माण 1906 ई० में हुआ था, यहाँ पर क्रान्तिकारियों को भयंकर यातनाएँ दी जाती थीं। यहाँ पर उनके क्रियाकलापों में शामिल था— लकड़ी काटना, पत्थर तोड़ना, एक हफ्ते तक हथकड़ियों को पहनकर खड़े रहना, तन्हाई के दिन बिताना, चार दिनों तक भूखा रहना, दस दिनों तक क्रॉस बार की स्थिति में रहना आदि। क्रान्तिकारियों की जबान सूख जाती थी, दिमाग सुन्न हो जाता था तथा कई कैदी तो जान गँवा बैठते थे। लेकिन इनका अपराध था कि ये अपनी मातृभूमि से बेहद प्यार करते थे और दु:ख सहते हुए भी हँसते-हँसते मातृभूमि के लिए शहीद हो जाते थे। कालेपानी की सजा काटने वाले कुछ देशभक्तों के नाम हैं— डॉ० दीवान सिंह कालेपानी (इनका उपनाम ही 'कालेपानी' हो गया), मौलाना हक, बटुकेश्वर दत्त, बाबाराव सावरकर, विनायक दामोदर सावरकर (वीर सावरकर— इन्हें दो आजीवन कारावास की सजा हुई थी), भाई परमानन्द, चिदम्बरम पिल्लै, सुब्रह्मण्यम शिव, सोहन सिंह, वामनराव जोशी, नन्द गोपाल। वाघा जतिन के जीवित साथीं सतीशचन्द्र पाल को यहाँ भयंकर मानसिक व शारीरिक यातनाएँ दी गई थीं। वीरेन्द्र कुमार घोष, उपेन्द्रनाथ बनर्जी, वीरेन्द्रचन्द्र सेन को यहाँ कैदी जीवन में भयानक यातनाएँ सहनी पड़ीं। लेकिन ब्रिटिश सरकार इन्हें इनके स्वदेश प्रेम से अलग नहीं कर सकीं। महात्मा गाँधी व रवीन्द्रनाथ टैगोर को अनेक मौकों पर इन वीर देशभक्तों के पक्ष में सरकार से बहस करनी पड़ी थी।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के अप्रतिम जननायक नेताजी सुभाष ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अण्डमान टापू को अंग्रेजों से जीत लिया था और इसका नामकरण किया गया 'शहीद'। अब कैदियों के लिए सुभाष मुक्तिदाता थे तथा टापू कालापानी नहीं अपितु उनका अपना 'घर' हो गया था। जेल के अनेक खण्डों को ध्वस्त कर दिया गया, शेष बचे भाग को 1969 ई० से राष्ट्रीय स्मारक में बदल दिया गया। 10 मार्च, 2006 ई० को जेल की शताब्दी मनाई गई और उस काल के उन स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों का भावभीना स्मरण किया गया, जो इस जेल में रहे थे।

8. भारतीय क्रान्तिकारियों व उनके बलिदान का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

उ०– **चन्द्रशेखर आजाद (1906-1931)–** चन्द्रशेखर आजाद का जन्म मध्य प्रदेश के झाबुआ तहसील के भावरा गाँव में हुआ। ब्राह्मण परिवार में जन्मे चन्द्रशेखर आजाद एक प्रमुख क्रान्तिकारी थे। इन्होंने 'हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र संघ' की स्थापना की। इन्होंने अपने दल के सदस्यों के साथ लाला लाजपत राय की हत्या के लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या की तथा केन्द्रीय असेम्बली हॉल में बम धमाका किया। चन्द्रशेखर आजाद को 23 फरवरी, 1931 ई० को इलाहाबाद के कम्पनी बाग में पुलिस से लड़ते हुए अपनी ही गोली से वीरगति प्राप्त हुई। वे विदेशी शासन के कभी हाथ न आए, इस प्रकार उन्होंने अपना 'आजाद' नाम सार्थक रखा।

सुखदेव (1907-1931)– सुखदेव को बाल्यकाल से ही मातृभूमि से विशेष अनुराग था। रानी लक्ष्मीबाई व अन्य वीरों की वीरगाथा उन्हें प्रभावित करती थी। वे भगत सिंह के बचपन के साथी थे तथा भगत सिंह को क्रान्तिपथ पर लाने वाले सुखदेव ही थे। वे 'नौजवान भारत सभा' के संस्थापक थे। 15 अप्रैल को लाहौर बम फैक्ट्री कांड में सुखदेव पकड़े गए तथा 23 मार्च, 1931 ई० को सुखदेव अपने मित्र भगत सिंह व राजगुरु के साथ फाँसी पर चढ़ गए।

भगत सिंह (1907-1931)– भगत सिंह का नाम स्वतन्त्रता संग्राम में सर्वोपरि है। क्रान्तिकारी विचार उन्हें विरासत में मिले। साण्डर्स को गोली मारना तथा केन्द्रीय असेम्बली में बम धमाका करना उनके शौर्य का परिचय देता है। उनका उद्घोष 'इन्कलाब जिन्दाबाद' देशभक्तों का प्रमुख नारा बन गया। 23 मार्च, 1931 ई० में यह महान् देशभक्त फाँसी पर चढ़ अमर हो गया।

राजगुरु (1909-1931)– इनका जन्म पूना के निकट खेड़ा गाँव में हुआ था। वे बनारस में शारीरिक शिक्षक के रूप में काम करने लगे। यहीं राजगुरु क्रान्तिकारियों के प्रभाव में आए। साण्डर्स को सर्वप्रथम गोली का निशाना बनाने वाले राजगुरु ही थे। 23 मार्च, 1931 को भगत सिंह तथा सुखदेव के साथ फाँसी पर चढ़े। फाँसी के तख्ते पर भगत सिंह बीच में, राजगुरु दाएँ और सुखदेव बाएँ थे। भगत सिंह कह रहे थे– ''दिल से निकलेगी न मरकर भी वतन की उल्फत, मेरी मिट्टी से भी वतन की खुशबू आएगी।''

शहीद यतीन्द्रनाथ (1904-1929 ई०)– यतीन्द्रनाथ क्रान्तिकारी विचारों और गतिविधियों के कारण 25 नवम्बर, 1925 को 'बंगाल फौजदारी कानून' के अन्तर्गत पकड़े गए थे। इन्होंने लाहौर केन्द्रीय कारागार में देशभक्तों के साथ जेल के अत्याचारों के विरोध में अनशन भी किया, जिसमें 62 दिन के निरन्तर उपवास के बाद यतीन्द्रनाथ 13 सितम्बर, 1929 ई० को शहीद हो गए।

रानी गेंडिनल्यू– पूर्वोत्तर भारत में 1930 से 1932 ई० के मध्य क्रांति की जनक रानी गेंडिनल्यू थी। पूर्वोत्तर सीमा प्रान्त के नागरिकों को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जागृत करने में गेंडिनल्यू की मुख्य भूमिका रही। नागाओं का नेतृत्व करने वाली 13 वर्ष की इस बालिका ने इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया। सत्याग्रह आन्दोलन के असफल होने पर रानी ने सशस्त्र क्रान्ति का निश्चय किया। परिणामत: सरकार ने गेंडिनल्यू को गिरफ्तार करने के लिए पुरस्कार की घोषणा की। सेना की मदद से 18 अक्टूबर, 1932 ई० को समोमा ग्राम में रानी को पकड़ लिया गया। उस समय रानी की उम्र 17 वर्ष थी। उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। रानी का पूरा यौवन जेल में व्यतीत हो गया। रानी देश की आजादी के बाद भी 21 माह तक जेल में रही और 9 अप्रैल, 1949 को रिहा की गई। नेहरू जी ने उसके बारे में सही लिखा था, ''एक दिन ऐसा आएगा कि जब भारत उसे स्नेहपूर्वक याद करेगा।'' स्वतन्त्रता की 25 वीं वर्षगाँठ पर दिल्ली के लाल किले में आयोजित समारोह में जब रानी को ताम्रपत्र प्रदान किया गया तो चारों ओर खुशी की लहर दौड़ गई। इस महान् स्वतन्त्रता सेनानी को नागालैण्ड की 'जॉन ऑफ ऑर्क' कहा गया है।

अन्य क्रान्तिकारियों में रासबिहारी बोष और सचिन सान्याल ने दूर दराज के क्षेत्रों, पंजाब, संयुक्त प्रान्त में क्रान्तिकारी गतिविधियों हेतु गुप्त समितियों का गठन किया था, हेमचन्द्र कानूनगो ने सैन्य प्रशिक्षण के लिए विदेश गमन किया था। खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर के न्यायाधीश की गाड़ी को बम से उड़ा दिया था। वासुदेव बलवंत फड़के के नेतृत्व में महाराष्ट्र के युवाओं ने सशस्त्र विद्रोह द्वारा अंग्रेजों को खदेड़ने की योजना बनाई। तिलक के शिष्यों दामोदर चापेकर व बालकृष्ण चापेकर ने लेफ्टिनेंट एर्स्ट व मिस्टर रैण्ड की हत्या कर पूना में प्लेग फैलने का बदला लिया। लाला लाजपत राय व अजित सिंह के अतिरिक्त भाई परमानन्द, आग हैदर, उर्दू कवि लालचन्द फलक ने भी पंजाब में क्रान्तिकारी गतिविधियों को नई ऊँचाइयाँ दीं। अजित सिंह को देश से निर्वासित कर दिया गया और वे फ्रांस पहुँचकर सूफी अम्बा प्रसाद, भाई परमानन्द व लाला हरदयाल के सहयोग से मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने के लिए क्रान्तिकारी गतिविधियों में लगे रहे। इंग्लैण्ड में क्रान्ति की ज्वाला को श्यामजीकृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर, मदनलाल ढींगरा ने जलाए रखा। इन क्रान्तिवीरों ने 'इण्डिया हाउस' नामक संस्था बनाई, जिसका उद्देश्य भारत में अंग्रेजी शासन को आतंकित कर स्वराज्य प्राप्त करना था। यहीं पर सावरकर ने अपनी कालजयी कृति '1857 का स्वतन्त्रता संग्राम' लिखी। उन्होंने मैजिनी की आत्मकथा का मराठी में अनुवाद किया। ढींगरा को

कर्नल विलियम कर्जन की हत्या के आरोप में गिरफ्तार कर फाँसी पर चढ़ा दिया गया तथा सावरकर को नासिक षड्यन्त्र केस में काले पानी (अंडमान में निर्वासन) की सजा दी गई। फ्रांस में क्रान्तिकारी गतिविधियों को सरदार सिंह राणा तथा श्रीमती भीकाजी रुस्तम कामा ने पेरिस से जारी रखा, 'फ्री इण्डिया सोसायटी' की स्थापना की तथा वन्दे मातरम् अखबार निकाला। भीकाजी विदेशी महिला थीं लेकिन भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में उन्होंने अतुलनीय योगदान किया। उड़ीसा के तट पर स्थित बालासोर पर बाघा जतिन पुलिस के साथ मुठभेड़ में शहीद हुए।

क्रान्तिकारियों ने विभिन्न पुस्तकें व पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं, जिनमें देश पर कुर्बान होने वाले जाँबाज किशोर-किशोरियों के त्याग को उकेरा गया। इनमें 'आत्मशक्ति', 'सारथी', 'बिजली' प्रमुख हैं। उपन्यासों में सचिन सान्याल की बन्दी जीवन तथा शरतचन्द्र चटर्जी की पाथेर दाबी उल्लेखनीय हैं। शांतिसुधा घोष ने अध्यापन कार्य जारी रखते हुए 'नारी शक्तिवाहिनी' संस्था की स्थापना की, जिसने किशोरियों को अस्त्र संचालन में इतना कुशल बना दिया कि वे साक्षात दुर्गा व चण्डी बन अंग्रेजों का काल बन गईं तथा क्रान्तिकारियों की ढाल बन उनका संबल बनीं।

9. गाँधी जी की ऐतिहासिक डांडी यात्रा के विषय में लिखिए।

उ०– सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ डांडी यात्रा की ऐतिहासिक घटना से हुआ। इसमें गाँधी जी और गुजरात विद्यापीठ तथा साबरमती आश्रम के 78 सदस्यों ने भाग लिया। 12 मार्च, 1930 ई० को गाँधी जी ने अपने इन 78 सहयोगियों के साथ साबरमती आश्रम से डांडी के लिए प्रस्थान किया। 200 मील की दूरी पैदल ही 24 दिन में तय की गई। स्थान-स्थान पर हजारों नर-नारियों ने सत्याग्रह दस्ते का जय-जयकार किया। सरदार पटेल, जो गाँव का दौरा कर जनता को सजग कर रहे थे, की गिरफ्तारी और सजा ने जनता को भड़का दिया। इस ऐतिहासिक यात्रा का उल्लेख करते हुए *'बाम्बे क्रॉनिकल'* ने लिखा था— ''इस विशद् राष्ट्रीय घटना के पूर्व, उसके साथ-साथ तथा उसके बाद भी जो दृश्य देखने में आए, वे इतने उत्साहपूर्ण, शानदार और इतने जीवन्त थे कि वर्णन नहीं किया जा सकता। ...... यह एक शानदार आन्दोलन का प्रारम्भ है और निश्चय ही भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान होगा।''

5 अप्रैल, 1930 ई० को गाँधी जी डांडी पहुँचे तथा 6 अप्रैल को आत्म-शुद्धि के उपरान्त उन्होंने समुद्र के पानी से नमक बनाकर नमक कानून को भंग किया। इस प्रकार गाँधी जी ने नमक कानून का उल्लंघन कर सत्याग्रह का प्रारम्भ किया।

10. खिलाफत आन्दोलन से आप क्या समझते हो? इसका भारत की राजनीति में क्या महत्व है?

उ०– खिलाफत आन्दोलन– खिलाफत आन्दोलन भारतीय मुसलमानों का मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध विशेषकर ब्रिटेन के खिलाफ तुर्की के खलीफा के समर्थन में आन्दोलन था। तुर्की का खलीफा समूचे विश्व में सुन्नी मुसलमानों का धर्म गुरु माना जाता था। प्रथम महायुद्ध (1914-1918 ई०) में तुर्की अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी के पक्ष में था। जर्मनी की पराजय से तुर्की की पराजय जुड़ी हुई थी। युद्ध के अन्त में तुर्की साम्राज्य को मित्र देशों ने आपस में बाँट लिया। इस तरह तुर्की साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इससे भारतीय मुसलमान बहुत क्षुब्ध हो गये। यहाँ खिलाफत आन्दोलन का मुख्य कारण था।

उद्देश्य और कार्य– खिलाफत आन्दोलन का उद्देश्य खलीफा की शक्ति को पुन: स्थापित करना था। इस समय भारत में राष्ट्रीय एकता का वातावरण था। लखनऊ समझौते में लीग और कांग्रेस बहुत निकट आ गयी थीं। लीग पर राष्ट्रवादी मुसलमानों का वर्चस्व था। जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड में हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से अत्याचार हुए थे। अत: राष्ट्रवादी मुसलमान अली बन्धु, मौलाना आजाद, हकीम अजमल खाँ तथा हजरत मोहानी के नेतृत्व में खिलाफत कमेटी बनाई गई। अखिल भारतीय खिलाफत कांग्रेस नवम्बर, 1919 ई० को दिल्ली में बुलाई गई। गाँधी जी इसमें शामिल हुए। लोकमान्य तिलक और गाँधी दोनों ही हिन्दू-मुसलमानों की एकता के लिए इस आन्दोलन को आवश्यक समझते थे। गाँधी जी के शब्दों में ''खिलाफत आन्दोलन हिन्दुओं और मुसलमानों को एकता के सूत्र में बाँधने का अवसर है, जो हमें 100 वर्षों तक नहीं मिलने वाला है।'' उन्होंने 1920 ई० में यह भी घोषणा कर दी कि ''खिलाफत का प्रश्न संवैधानिक सुधारों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है'' मार्च, 1920 ई० को विधिवत खिलाफत कमेटी ने असहयोग आन्दोलन की घोषणा कर दी। सर्वप्रथम गाँधी जी इसमें शामिल हुए और युद्धकाल की सेवा के उपलक्ष्य में मिली 'केसर-ए-हिन्द' की उपाधि लौटा दी। नवम्बर, 1919 ई० में गाँधी जी खिलाफत कमेटी के अध्यक्ष चुने गए। सर्वत्र स्कूलों तथा कॉलेजों का बहिष्कार हुआ। शान्तिपूर्ण प्रदर्शन हुए जिसमें महिलाओं और बच्चों ने भाग लिया।

असहयोग और खिलाफत आन्दोलन साथ-साथ चले परन्तु असहयोग आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव से खिलाफत आन्दोलन उसके सामने दब गया। उधर तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा द्वारा खलीफा के पद को समाप्त करने के साथ ही खिलाफत का प्रश्न भी समाप्त हो गया।

इस आन्दोलन के सम्बन्ध में आलोचकों ने खिलाफत आन्दोलन को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ने के गाँधी जी के प्रयासों को एक राजनीतिक भूल मानी है, परन्तु खिलाफत आन्दोलन ने थोड़े समय के लिए ही सही, हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को सुदृढ़ किया। खिलाफत आन्दोलन ने उदार राष्ट्रवादी मुसलमानों को राष्ट्रीय संग्राम में शरीक होने का मौका दिया तथा इसने असहयोगा आन्दोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

इकाई-3

15

1919 तथा 1935 का भारत सरकार अधिनियम
Indian Government Act of 1919 and 1935

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1914 ई० **2. 1917 ई०** **3. 1919 ई०** **4. 1935 ई०**

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या-230 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 230 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 231 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 231 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1919 ई० के अधिनियम की चार प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उ०– 1919 ई० के अधिनियम की चार प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) 1919 ई० के ऐक्ट की मुख्य विशेषता प्रान्तों में द्वैध-शासन की स्थापना थी। इसके लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को अलग किया गया।

(ii) इस अधिनियम के तहत गर्वनर जनरल व गर्वनर के अधिकारों में वृद्धि की गई जिसका उपयोग वे स्वेच्छा से कर सकते थे।

(iii) गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद में भारतीय सदस्यों की संख्या को बढ़ाया गया।

(iv) केन्द्रीय विधान मण्डल को विस्तृत अधिकार दिए गए जिनमें प्रमुख कानून बनाने, कानून परिवर्तन करने तथा बजट पर बहस आदि प्रमुख थे।

2. 1935 ई० के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की दो प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

उ०– 1935 ई० के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) केन्द्र में द्वैध-शासन प्रणाली की स्थापना– 1919 ई० के अधिनियम में प्रान्तों में द्वैध-शासन पद्धति की स्थापना लागू की गई थी, जो कि पूर्णतया असफल रही थी। इसके पश्चात् 1935 ई० के अधिनियम के द्वारा केन्द्र में द्वैध-शासन प्रणाली की स्थापना की गई। केन्द्रीय विषयों को दो भागों-आरक्षित एवं हस्तान्तरित में विभक्त किया गया। आरक्षित भाग में प्रतिरक्षा, वैदेशिक और धार्मिक मामले थे, जो गवर्नर जनरल की अधिकारिता में थे। हस्तान्तरित विषयों के अन्तर्गत शेष सभी विषय थे। मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से गवर्नर जनरल इन विषयों की प्रशासनिक व्यवस्था कर सकता था।

मन्त्रिपरिषद् व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होती थी और गवर्नर जनरल मन्त्रिपरिषद् के निर्णय को मानने के लिए बाध्य न था। अत: वास्तविक शासन गवर्नर जनरल के हाथों में केन्द्रित था।

(ii) विधायी शक्तियों का वितरण– सम्पूर्ण विधायी विषयों को केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची में विभाजित किया गया था। केन्द्रीय अथवा संघ सूची में 59 विषय, प्रान्तीय सूची में 54 और समवर्ती सूची में 36 विषय निर्धारित किए गए। समवर्ती सूची पर गवर्नर जनरल का अधिकार निहित था जो स्वविवेक से केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधानमण्डलों को हस्तगत कर सकता था।

3. 1935 ई० के अधिनियम के चार प्रमुख दोष लिखिए।

उ०– 1935 ई० के अधिनियम के चार प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं—

(i) इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता को बरकरार रखा गया। भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान नहीं किया गया।

(ii) प्रान्तों में स्थापित द्वैध-शासन प्रणाली को हटाकर अब नए रूप में केन्द्र में द्वैध-शासन प्रणाली लागू कर दी। इसका स्पष्ट मतलब था कि अंग्रेज भारतीयों को किसी प्रकार की सुविधा देने के पक्ष में न थे।

(iii) भारतीयों द्वारा साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति का विरोध करने के बावजूद इस अधिनियम में इसे समाप्त नहीं किया गया।

(iv) इस अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल व गवर्नरों के अधिकारों में वृद्धि की गई। इस प्रकार भारतीय प्रशासन पर इंग्लैण्ड का पूर्ण नियन्त्रण था।

4. 1919 ई० के अधिनियम में प्रान्तीय कार्यपालिका में क्या परिवर्तन किए गए?

उ०– 1919 ई० के अधिनियम में प्रान्त में द्वैध-शासन प्रणाली की स्थापना की गई। इसके लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को पृथक कर दिया गया। इसके पश्चात् प्रान्तीय विषयों को दो भागों में विभक्त कर दिया गया— (i) सुरक्षित विषय; जैसे— अर्थव्यवस्था, शान्ति व्यवस्था, पुलिस आदि। (ii) हस्तान्तरित विषय; जैसे— स्थानीय स्वशासन, शिक्षा आदि।

5. 1935 ई० के अधिनियम के प्रति राष्ट्रीय दलों का दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

उ०– 1935 ई० के अधिनियम के सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरू ने कहा ''यह इतना प्रतिक्रियावादी था कि इसमें स्वविकास का कोई भी बीज नहीं था।'' उन्होंने और आगे कहा कि 1935 ई० का विधान, दासता का एक नवीन राजपत्र था। वह दृढ़ आरोपों से युक्त ऐसा यंत्र था जिसमें इंजन नहीं था। मदनमोहन मालवीय ने इसे 'बाह्य रूप से जनतंत्रवादी और अंदर से खोखला कहा। चक्रवती राजगोपालचारी ने इसे 'द्वैध शासन पद्धति' से भी बुरा एवं बिलकुल अस्वीकृत बताया।

6. 1919 ई० के भारत शासन अधिनियम की क्या उल्लेखनीय विशेषता थी?

उ०– प्रान्तों में द्वैध-शासन की स्थापना 1919 ई० के ऐक्ट की मुख्य विशेषता थी। इसके लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को पृथक् किया गया था। इसके पश्चात् प्रान्तीय विषयों को दो भागों में बाँटा गया—

(i) सुरक्षित विषय; जैसे— अर्थव्यवस्था, शान्ति-व्यवस्था, पुलिस आदि और

(ii) हस्तान्तरित विषय; जैसे— स्थानीय स्वशासन, शिक्षा आदि। सुरक्षित विषयों का शासन गवर्नर अपनी परिषद् के सदस्यों की सलाह से करता था और हस्तान्तरित विषयों का शासन गवर्नर भारतीय मन्त्रियों की सलाह से करता था। इस व्यवस्था से गवर्नर की कार्यकारिणी भी दो भागों में बँट गई— गवर्नर और उसकी परिषद् तथा गवर्नर और भारत मन्त्री। इससे प्रान्तीय शासन के दो भाग हो गए— पहला शासन का वह भाग, जिसके अधिकार में सुरक्षित विषय थे अर्थात् गर्वनर और उसकी परिषद् जो शासन का उत्तरदायित्वहीन भाग था और दूसरा शासन का वह भाग, जिसके अधिकार में हस्तान्तरित विषय थे अर्थात् गवर्नर और भारत मन्त्री जो शासन का उत्तरदायित्वपूर्ण भाग माना जा सकता था। शासन के इसी विभाजन के कारण इस व्यवस्था को द्वैध-शासन कहा जाता है।

7. 1935 ई० के भारत शासन अधिनियम द्वारा देशी रियासतों के सम्बन्ध में क्या व्यवस्था थी?

उ०– 1935 ई० के भारत शासन अधिनियम द्वारा सभी रियासतों का एक संघ बनाने की व्यवस्था थी। किन्तु संघ के निर्माण की प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल बना दिया गया था। संघों में प्रान्तों को आवश्यक रूप से सम्मिलित होना था; किन्तु देशी रियासतों के लिए यह ऐच्छिक था। अधिकांश रियासतों के शासक ऐसी केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत संगठित होने को तैयार न थे।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. 1919 ई० के मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार कानून के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन करते हुए उनकी कमियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– सन् 1918 ई० में मॉण्टेग्यू और चेम्सफोर्ड ने संयुक्त हस्ताक्षरों से भारत में सुधारों के लिए एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई जिसके आधार पर 1919 ई० का भारत सरकार कानून बनाया गया। इसे भारत सरकार अधिनियम-1919 या मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम के नाम से जाना जाता है।

मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम के प्रावधान–

(i) भारत सचिव व इंग्लैण्ड की संसद द्वारा भारतीय शासन पर नियन्त्रण में कमी की गई। भारत सचिव के कार्यालयों का सम्पूर्ण खर्चा भी ब्रिटिश राजस्व से ही लिया जाना था। इससे पहले यह खर्चा भारतीय राजस्व से लिया जाता था, जिसका भारतीय विरोध कर रहे थे।

(ii) इंग्लैण्ड में भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में एक नवीन पद का सृजन किया गया। इस नए पदाधिकारी को 'भारतीय उच्चायुक्त' कहा गया। भारतीय उच्चायुक्त को भारत सचिव से अनेक अधिकार लेकर दे दिए गए। भारतीय उच्चायुक्त की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जानी थी तथा उसका खर्च भी भारत को ही वहन करना था।

(iii) गवर्नर जनरल व गवर्नरों के अधिकारों में वृद्धि की गई, जिनका उपयोग वे स्वेच्छा से कर सकते थे।

(iv) भारतीयों की यह माँग कि साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को समाप्त कर दिया जाए, को स्वीकार नहीं किया गया। इसके विपरीत इस प्रणाली को और बढ़ावा दिया गया। इस अधिनियम के अनुसार सिक्खों, ऐंग्लो-इण्डियन्स, ईसाइयों और यूरोपियनों को भी पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया।

(v) केन्द्रीय-शासन व्यवस्था में उत्तरदायी शासन लागू नहीं किया गया। अत: केन्द्रीय शासन पूर्ववत् स्वेच्छाचारी तथा नौकरशाही के नियन्त्रण में ही रहा।

(vi) गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद् में भारतीय सदस्यों की संख्या को बढ़ाया गया।

(vii) एक सदन वाले केन्द्रीय विधानमण्डल का पुनर्संगठन किया गया। अब दो सदन वाले विधानमण्डल की व्यवस्था की गई। उच्च सदन को राज्य परिषद् तथा निचले सदन को केन्द्रीय विधानसभा कहा गया।

(viii) केन्द्र में पहली बार द्विसदनात्मक व्यवस्था की गई। पहले सदन को विधानसभा कहा गया। विधानसभा में सदस्यों की कुल संख्या 145 थी, जिनमें 41 नामजद सदस्य थे और 104 चुने हुए सदस्य होते थे। दूसरे सदन को राज्यसभा कहा गया। राज्यसभा के कुल 60 सदस्य थे। उनमें 33 चुने हुए तथा 27 नामजद सदस्य होते थे।

(ix) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में 8 सदस्यों की संख्या निश्चित की गई, जिनमें से 3 सदस्यों का भारतीय होना आवश्यक था।

(x) भारत परिषद् के कार्यकारिणी सदस्यों की संख्या न्यूनतम 8 व अधिकतम 12 निश्चित कर दी गई। इनमें से आधे सदस्य वे होंगे जो दीर्घकाल से भारत में रहते आए हों। इनका कार्यकाल 5 वर्ष रखा गया।

(xi) केन्द्रीय विधान मण्डल को विस्तृत अधिकार दिए गए जिनमें कानून बनाने, कानून परिवर्तन करने तथा बजट पर बहस करने के अधिकार आदि प्रमुख थे।

(xii) इस अधिनियम के अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों का पहली बार बँटवारा किया गया। 47 विषयों को केन्द्रीय विषय बनाया गया। उदाहरणस्वरूप— प्रतिरक्षा, विदेशों से सम्बन्ध, विदेशियों को भारत की नागरिकता प्रदान करना, आवागमन के साधन, सीमा-शुल्क, नमक, आयकर, डाकखाने, सिक्के तथा नोट, सार्वजनिक ऋण, वाणिज्य जिसमें बैंक तथा बीमा इत्यादि शामिल थे, केन्द्र को दिए गए। प्रान्तीय सूची में 50 विषय रखे गए। स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, सफाई, चिकित्सा, शिक्षा, पुलिस तथा जेल, न्याय, जंगल, कृषि, भू-कर इत्यादि विषय प्रान्तीय सरकारों को दिए गए। जो विषय सूची में शामिल नहीं किए गए उन पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र को होगा।

(xiii) प्रान्तों में द्वैध-शासन की स्थापना 1919 ई० के ऐक्ट की मुख्य विशेषता थी। इसके लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को पृथक् किया गया था। इसके पश्चात् प्रान्तीय विषयों को दो भागों में बाँटा गया— (क) सुरक्षित विषय; जैसे— अर्थव्यवस्था, शान्ति-व्यवस्था, पुलिस आदि और (ख) हस्तान्तरित विषय; जैसे- स्थानीय स्वशासन, शिक्षा आदि। सुरक्षित विषयों का शासन गवर्नर अपनी परिषद् के सदस्यों की सलाह से करता था और हस्तान्तरित विषयों का शासन गवर्नर भारतीय मन्त्रियों की सलाह से करता था। इस व्यवस्था से गवर्नर की कार्यकारिणी भी दो भागों में बँट गईं— गवर्नर और उसकी परिषद् तथा गवर्नर और भारत मन्त्री। इससे प्रान्तीय शासन के दो भाग हो गए— पहला शासन का वह भाग, जिसके अधिकार में सुरक्षित विषय थे अर्थात् गर्वनर और उसकी परिषद् जो शासन का उत्तरदायित्वहीन भाग था और दूसरा शासन का वह भाग, जिसके अधिकार में हस्तान्तरित विषय थे अर्थात् गवर्नर और भारत मन्त्री जो शासन का उत्तरदायित्वपूर्ण भाग माना जा सकता था। शासन के इसी विभाजन के कारण इस व्यवस्था को द्वैध-शासन कहा जाता है।

(xiv) इस अधिनियम द्वारा एक लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई। भारत सचिव को इस आयोग की नियुक्ति का कार्य सौंपा गया।

(xv) 1919 ई० का अधिनियम भी केन्द्रीय विधानसभा को ब्रिटिश संसद से मुक्त नहीं कर सका। भारत की केन्द्रीय विधानसभा ब्रिटिश संसद के किसी कानून के विरुद्ध विधेयक पास नहीं कर सकती थी।

(xvi) इस अधिनियम के लागू होने के 10 वर्षों के अन्दर एक आयोग की नियुक्ति की जानी थी, जिसका कार्य इस अधिनियम के प्रति प्रतिक्रियाओं की रिपोर्ट इंग्लैण्ड की संसद को देना था।

अधिनियम की कमियाँ– मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड अधिनियम में निम्नलिखित कमियाँ थीं—

(क) केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं की गई थी।

(ख) द्वैध-शासन प्रणाली सिद्धान्तत: दोषपूर्ण थी। एक ही प्रान्त में दो शासन करने वाली संस्थाएँ कैसे कार्य कर सकती हैं?

(ग) द्वैध-शासन प्रणाली के अन्तर्गत विषयों का विभाजन भी अत्यन्त अतार्किक एवं अव्यवहारिक था। ऐसे विभाग जो एक-दूसरे से सम्बन्धित थे, अलग-अलग संस्थाओं के अधीन कर दिए गए थे। उदाहरण के लिए— सिंचाई व कृषि का घनिष्ठ सम्बन्ध है, किन्तु दोनों को अलग-अलग कर दिया गया था। मद्रास (चेन्नई) के तत्कालीन मन्त्री **श्री के०वी० रेड्डी** ने लिखा है, ''मैं विकास मन्त्री था, किन्तु वन विभाग हमारे अधिकार में नहीं था। मैं कृषि मन्त्री था, किन्तु सिंचाई विभाग पृथक् था।''

(घ) गवर्नर को अत्यधिक शक्ति प्रदान की गई थी। गवर्नर किसी भी मन्त्री के प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकता था।

(ङ) इस अधिनियम में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया था।

2. 1919 ई० के अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित द्वैध-शासन से आप क्या समझते हैं? यह क्यों असफल रहा?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. 1919 ई० के भारत सरकार अधिनियम की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

4. 1919 ई० के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र एवं प्रान्तीय विधान सभाओं के अधिकारों की समीक्षा कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

5. 1935 ई० के अधिनियम के अन्तर्गत स्वायत्तता, गवर्नरों के लिए स्वायत्तता थी, न कि प्रान्तीय विधान मण्डल और मन्त्रियों के लिए।'' व्याख्या कीजिए।

उ०– सर सैमुअल होर द्वारा संयुक्त समिति की रिपोर्ट के आधार पर, ब्रिटिश संसद में 19 दिसम्बर, 1934 को भारत सरकार विधेयक प्रस्तुत किया गया। ब्रिटिश संसद ने इस विधेयक को बहुमत से पारित कर 3 अगस्त, 1935 को अपनी सहमति प्रदान की। यह अधिनियम भारत शासन अधिनियम, 1935 ई० (गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट 1935 ई०) के नाम से जाना जाता है।

सर्वप्रथम प्रान्तों में द्वैध-शासन प्रणाली की स्थापना 1919 ई० के अधिनियम में की गई थी जो कि पूर्णतया असफल रही थी। इसके बाद 1935 ई० के अधिनियम द्वारा केन्द्र में जो कि पूर्णतया असफल रही थी। इसके बाद 1935 ई० के अधिनियम द्वारा केन्द्र में द्वैध-शासन प्रणाली को लागू किया गया। केन्द्रीय विषयों को आरक्षित एवं हस्तान्तरित नामक दो भागों में विभाजित किया गया। आरक्षित भाग में प्रतिरक्षा, धार्मिक एवं वैदेशिक मामले थे जो गवर्नर जनरल की अधिकारिता में थे। हस्तान्तरित विषयों के अन्तर्गत शेष सभी विषय थे। मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से गवर्नर जनरल इन विषयों की प्रशासनिक व्यवस्था कर सकता था। मन्त्रिपरिषद् व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होती थी और गवर्नर जनरल मन्त्रिपरिषद् के निर्णय को मानने के लिए बाध्य नहीं था। अत: वास्तविक शासन गवर्नर जनरल के हाथों में था।

1935 ई० के अधिनियम में 1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में स्थापित द्वैध-शासन प्रणाली को समाप्त करके स्वायत शासन प्रणाली को स्थापित कर दिया गया और प्रान्तों को नवीन संवैधानिक अधिकार दिये गये थे। प्रशासन का कार्य गवर्नर मन्त्रिपरिषद् के परामर्श पर करता था। मन्त्रिपरिषद् विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थी। गवर्नरों से मन्त्रिपरिषद् के सुझावों के आधार पर कार्य करने की अपेक्षा की गई थी। गवर्नरों को इतनी शक्ति प्रदान की गई थी कि प्रान्तीय स्वायतता के बावजूद प्रान्तीय स्वायता नाम मात्र की रह गई थी।

6. 1935 ई० के अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों की व्याख्या और उसकी संक्षिप्त आलोचना कीजिए। या ''भारत के प्रजातांत्रिकरण में 1935 ई० के अधिनियम ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।'' क्या आप इस कथन से सहमत हैं?

उ०– 1935 ई० के अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं—

(i) केन्द्र में द्वैध-शासन प्रणाली की स्थापना– 1919 ई० के अधिनियम में प्रान्तों में द्वैध-शासन पद्धति की स्थापना लागू की गई थी, जो कि पूर्णतया असफल रही थी। इसके पश्चात् 1935 ई० के अधिनियम के द्वारा केन्द्र में द्वैध-शासन प्रणाली की स्थापना की गई। केन्द्रीय विषयों को दो भागों-आरक्षित एवं हस्तान्तरित में विभक्त किया गया। आरक्षित भाग में प्रतिरक्षा, वैदेशिक और धार्मिक मामले थे, जो गवर्नर जनरल की अधिकारिता में थे। हस्तान्तरित विषयों के अन्तर्गत शेष सभी विषय थे। मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से गवर्नर जनरल इन विषयों की प्रशासनिक व्यवस्था कर सकता था।

मन्त्रिपरिषद् व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होती थी और गवर्नर जनरल मन्त्रिपरिषद् के निर्णय को मानने के लिए बाध्य न था। अत: वास्तविक शासन गवर्नर जनरल के हाथों में केन्द्रित था।

(ii) विधायी शक्तियों का वितरण– सम्पूर्ण विधायी विषयों को केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची और समवर्ती सूची में विभाजित किया गया था। केन्द्रीय अथवा संघ सूची में 59 विषय, प्रान्तीय सूची में 54 और समवर्ती सूची में 36 विषय निर्धारित किए गए। समवर्ती सूची पर गवर्नर जनरल का अधिकार निहित था जो स्वविवेक से केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधानमण्डलों को हस्तगत कर सकता था।

(iii) व्यापक विधान– भारत सरकार अधिनियम -1935 अत्यन्त लम्बा और जटिल विधान था। इसमें 451 धाराएँ और 15 अनुसूचियाँ थीं। कुछ विशेष कारणों से इसका विशाल होना स्वाभाविक भी था। एक तो यह जटिल परिसंघीय संविधान की व्यवस्था करता था जो परिसंघात्मक संविधानवाद के इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलता। दूसरे, यह भारतीय मन्त्रियों और विधायकों द्वारा कदाचार के विरुद्ध विधिक सुरक्षाओं का उल्लेख करता था।

(iv) उद्देशिका का न होना– 1935 ई० के अधिनियम की अपनी कोई उद्देशिका नहीं थी। स्मरणीय है कि, 1919 ई० के अधिनियम के अधीन सरकार की घोषित नीति, ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन का क्रमिक विकास था। 1935 ई० के अधिनियम के पश्चात् 1919 ई० के अधिनियम को उद्देशिका के अलावा निरस्त कर दिया गया।

(v) अखिल भारतीय संघ का प्रस्ताव– इस अधिनियम की सर्वप्रमुख विशेषता थी— पहली बार भारत में संघात्मक शासन-प्रणाली को लागू किया जाना। सभी भारतीय प्रान्तों व देशी रियासतों का एक संघ बनाने का प्रस्ताव था। संघ के दोनों सदनों में राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व दिया गया। संघीय असेम्बली में 375 में से 125 व कौंसिल ऑफ स्टेट में 260 में से 104 सदस्य नियुक्त करने का उन्हें अधिकार दिया गया, किन्तु संघ के निर्माण की प्रक्रिया को अत्यन्त जटिल बना दिया गया था। संघों में प्रान्तों को आवश्यक रूप से सम्मिलित होना था, किन्तु देशी रियासतों के लिए यह ऐच्छिक था। अधिकांश रियासतों के शासक ऐसी केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत संगठित होने के लिए तैयार न थे। अत: यह क्रियान्वित नहीं हो सका।

(vi) भारतीय परिषद् का विघटन– भारत में भारतीय कौंसिल के विरोध को देखते हुए भारतीय कौंसिल को समाप्त कर दिया गया। इसका स्थान भारत सचिव के सलाहकारों ने ले लिया। भारत सचिव की सलाहकार समिति में अधिकतम 6 सदस्य हो सकते थे। इनमें से आधे ऐसे होते थे जो कम-से-कम 10 वर्ष तक भारत सरकार की सेवा में ही रहे हों। इस प्रकार भारत

सचिव का नियन्त्रण उन क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया जिनमें गवर्नर जनरल संघीय मन्त्रिमण्डल की सलाह नहीं मानता था, अथवा, अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग करता था।

(vii) **विधानमण्डलों का विस्तार–** 1935 ई० के अधिनियम के अनुसार संघीय विधानमण्डल का स्वरूप दो सदन वाला था। उच्च सदन को राज्य परिषद् और निचले सदन को संघीय विधानसभा कहते थे। राज्य परिषद् के सदस्यों को चुनने का अधिकार सीमित लोगों को ही था। संघीय विधान सभा में 375 सदस्य होते थे, जिनमें से 125 भारतीय नरेशों के प्रतिनिधि और मुसलमानों के 80 सदस्य होते थे। संघीय विधान सभा के अधिकार सीमित थे।

(viii) **प्रान्तीय स्वायत्तता–** 1919 ई० के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में स्थापित द्वैध-शासन को समाप्त करके 1935 ई० के अधिनियम में स्वायत्त शासन की स्थापना की गई तथा प्रान्तों को नवीन संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए। प्रशासन का कार्य गवर्नर मन्त्रिपरिषद् के परामर्श पर करता था। मन्त्रिपरिषद् विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थी। गवर्नरों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे मन्त्रिपरिषद् के सुझावों के अनुसार ही कार्य करें, किन्तु प्रान्तीय स्वायत्तता के बावजूद भी गवर्नरों को इतनी शक्तियाँ प्रदान कर दी गई कि स्वायत्तता नाममात्र की रह गई।

1935 ई० के अधिनियम की आलोचना– इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता को बनाए रखा गया तथा भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान नहीं किया गया। प्रान्तों में से द्वैध-शासन प्रणाली को हटाना तथा केन्द्र में द्वैध-शासन प्रणाली को लागू करने का मतलब था कि अंग्रेज भारतीयों को कोई सुविधा देने के पक्ष में नहीं थे। **पं० जवाहरलाल नेहरू** के शब्दों में यह नियम इतना प्रतिक्रियावादी था कि इसमें स्वविकास का कोई भी बीज नहीं था।'' उन्होंने आगे कहा कि 1935 ई० का विधान दासता का एक नवीन राजपत्र था। वास्तव में इस अधिनियम में एक ओर भारतीयों को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया गया कि उन्हें सब कुछ दे दिया गया है कि उन्होंने कुछ भी नहीं खोया है। इस प्रकार यह अधिनियम भारतीयों की आकांक्षाओं को सन्तुष्ट नहीं कर सका। विश्व के प्रत्येक संघ में निचले सदन के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया गया था। इस प्रकार 1935 ई० के अधिनियम में जनतान्त्रिक शक्तियों की उपेक्षा की गई थी।

16

भारत विभाजन– अंग्रेजी नीति का परिणाम
(Partition of India : Result of British Policy)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 2 सितम्बर, 1946 ई०
2. 30 जून, 1948 ई०

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 235 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 235 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 235 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 235 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. क्या भारत विभाजन अनिवार्य था? अपने उत्तर के पक्ष में दो तर्क दीजिए।

उ०– भारत विभाजन की अनिवार्यता के पक्ष मे दो तर्क निम्नवत हैं—

(i) अंग्रेजों ने सदैव उपनिवेशवादी नीति के क्रियान्वयन के लिए 'विभाजन करो एवं शासन करो' का मार्ग अपनाया। इस नीति के तहत सरकार ने मुस्लिम लीग को कांग्रेस के विरुद्ध खड़ा रखा। जिन्ना की विभाजन सम्बन्धी हठधर्मिता में सरकार की नीतियों ने आग में घी का काम किया।

(ii) कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग दोनों को सत्ता का लालच होने लगा। यद्यपि गाँधी जी जैसे नेता विभाजन को टालने हेतु जिन्ना को अखण्ड भारत का प्रधानमंत्री बनाने का प्रस्ताव रखा ताकि दंगे रुकने के साथ ही जिन्ना की महत्वाकाँक्षा पूर्ण हो जाए। लेकिन नेहरू व पटेल को यह अस्वीकार्य था, जिसका परिणाम भारत विभाजन था।

2. भारत विभाजन के लिए उत्तरदायी दो कारण लिखिए।

उ०– भारत विभाजन के लिए उत्तरदायी दो कारण निम्नलिखित हैं—

(i) ब्रिटिश शासन की 'फूट डालो और राजा करो नीति' (ii) जिन्ना की हठधर्मिता।

3. मुस्लिम लीग ने भारत विभाजन में क्या भूमिका निभाई?

उ०– मुस्लिम लीग ने अपने जन्म से ही पृथकतावादी नीति को अपनाया तथा भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का विरोध किया। लीग की सीधी कार्यवाही में योजना के अन्तर्गत मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के विरुद्ध अनेक दंगे किये गये। लीग के नेताओं ने हिन्दुओं के विरुद्ध जहर उगलना शुरू कर दिया। ऐसी भयावह परिस्थिति के समाधान के लिए भारत विभाजन का जन्म हुआ।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारत विभाजन के क्या कारण थे?

उ०– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता भारत की एकता तथा अखण्डता के लिए प्रयास कर रहे थे तथा भारत के विभाजन का विरोध कर रहे थे। गाँधी जी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि पाकिस्तान का निर्माण उनकी लाश पर होगा। गाँधी जी ने पाकिस्तान के निर्माण अथवा भारत के विभाजन का सदैव विरोध किया था, परन्तु कुछ अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण भारत का विभाजन उनको भी स्वीकार करना पड़ा। भारत विभाजन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(i) ब्रिटिश शासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीति– ब्रिटिश शासन ने अपनी सुरक्षा के लिए 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई तथा इसका व्यापक प्रसार किया। ब्रिटिश शासकों ने हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्धों को बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वस्तुत: देश का विभाजन ब्रिटिश सरकार की मुस्लिम लीग को प्रोत्साहन प्रदान करने की नीति के कारण हुआ।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में— ''पाकिस्तान के निर्माता कवि इकबाल तथा मि० जिन्ना नहीं, वरन् लॉर्ड माउण्टबेटन थे।'' इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारत की नौकरशाही, मुसलमानों की पक्षधर थी।

(ii) पारस्परिक अविश्वास तथा अपमानजनक रवैया– हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के लोग एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करते थे। सल्तनतकाल तथा मुगलकाल में मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं पर घोर अत्याचार एवं अनाचार किया, अत: इन दोनों धर्मों में विद्वेष की भावना उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। इसका यह परिणाम हुआ कि मुसलमानों को अपने प्रति ईसाइयों का व्यवहार हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक अच्छा प्रतीत हुआ और इस प्रकार से दोनों समुदायों (हिन्दू एवं मुस्लिम) के बीच घृणा निरन्तर बढ़ती रही।

(iii) हिन्दुत्व को साम्प्रदायिकता के रूप में प्रस्तुत करना– हिन्दुओं की भावनाओं को शासक वर्ग तथा जनता के प्रतिनिधियों ने सदैव साम्प्रदायिकता के रूप में देखा। वीर सावरकर जैसे राष्ट्रवादी महापुरुषों को हिन्दू साम्प्रदायिकता से ओत-प्रोत बताया गया तथा मुस्लिम तुष्टीकरण को सदैव बढ़ावा दिया गया। इसी तुष्टीकरण की नीति की परिणति भारत विभाजन के रूप में हमारे सामने आई।

(iv) लीग के प्रति कांग्रेस की तुष्टीकरण की नीति– कांग्रेस ने मुस्लिम लीग के प्रति तुष्टीकरण की नीति अपनाई तथा व्यवहार में अनेक भूलें कीं, उदाहरणार्थ— (क) 1916 ई० में लखनऊ पैक्ट में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार कर लेना, (ख) सिन्ध को बम्बई से पृथक् करना, (ग) सी०आर० फार्मूले में पाकिस्तान की माँग को कुछ सीमा तक स्वीकार कर लेना, (घ) 1919 ई० के खिलाफत आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित करना तथा (ङ) 1937 ई० में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल में मुस्लिम लीग को सम्मिलित करने के प्रश्न पर कठोर रवैया अपनाना, इसी प्रकार की भूलें थीं। स्वयं गाँधी जी ने मि० जिन्ना को 'कायदेआजम' की उपाधि से विभूषित कर भयंकर भूल की।

(v) जिन्ना की हठधर्मिता– जिन्ना अपने द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त के प्रति दृढ़ रहे और पाकिस्तान की माँग के प्रति भी उनकी हठधर्मिता बढ़ती चली गई। 1940 ई० के पश्चात् संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए अनेक योजनाएँ प्रस्तुत की गईं, परन्तु जिन्ना की हठधर्मी के कारण कोई भी योजना स्वीकार न की जा सकी। यहाँ तक कि गाँधी जी ने जिन्ना के लिए अखण्ड भारत के प्रधानमन्त्री के पद का अवसर भी प्रदान किया, परन्तु जिन्ना ने इसे भी अस्वीकार कर दिया।

(vi) अन्तरिम सरकार की असफलता– 2 सितम्बर, 1946 ई० को 'अन्तरिम सरकार' का गठन हुआ। इस सरकार में भाग लेने वाले मुस्लिम लीग के मन्त्रियों ने कांग्रेस के मन्त्रियों से शासन-कार्य में सहयोग नहीं किया और इस प्रकार यह सरकार पूरी तरह असफल हो गई। लियाकत अली खाँ के पास वित्त विभाग था। उसने कांग्रेसी सरकार की प्रत्येक योजना में बाधाएँ उत्पन्न करके सरकार का कार्य करना असम्भव कर दिया। सरदार पटेल के अनुसार, '' एक वर्ष के मेरे प्रशासनिक अनुभव ने मुझे यह विश्वास दिला दिया कि हम विनाश की ओर बढ़ रहे हैं।''

(vii) कांग्रेस की भारत को शक्तिशाली बनाने की इच्छा– मुस्लिम लीग की गतिविधियों से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया था कि मुस्लिम लीग कांग्रेस से किसी भी प्रकार से सहयोग नहीं करेगी तथा प्रत्येक कार्य में व्यवधान उपस्थित करेगी। ऐसी स्थिति में विभाजन न होने पर भारत सदैव एक कमजोर राष्ट्र रहता। मुस्लिम लीग केन्द्र को कभी-भी शक्तिशाली नहीं बनने देती। इसीलिए सरदार पटेल ने कहा था, ''बँटवारे के बाद हम कम-से-कम 75 या 80 प्रतिशत भाग को शक्तिशाली बना सकते हैं, शेष को मुस्लिम लीग बना सकती है।'' इन परिस्थितियों में कांग्रेस ने विभाजन को स्वीकार कर लिया।

(viii) मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही तथा साम्प्रदायिक दंगे– जब मुस्लिम लीग को संवैधानिक साधनों से सफलता प्राप्त नहीं हुई तो उसने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रव करने के लिए प्रेरित किया तथा लीग की सीधी कार्यवाही की योजना के

अन्तर्गत नोआखाली और त्रिपुरा में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के विरुद्ध अनेक दंगे किए गए। अकेले नोआखाली में ही लगभग सात हजार व्यक्ति मारे गए थे। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के विवरण के अनुसार पहली बार इस प्रकार सुनियोजित ढंग से मुस्लिमों ने हिन्दुओं के विरुद्ध सीधी कार्यवाही की थी। मौलाना आजाद के अनुसार, ''16 अगस्त भारत में काला दिन है, क्योंकि इस दिन सामूहिक हिंसा ने कलकत्ता जैसी महानगरी को हत्या, रक्तपात और बलात्कारों की बाढ़ में डुबो दिया था।'

(ix) **बाह्य एकता का निष्फल प्रयास–** मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही के आधार पर जो जन-धन की हानि हुई, उससे कांग्रेसी नेताओं को यह एहसास हो गया कि मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ बाह्य एकता में बाँधने का अब कोई औचित्य नहीं रह गया है। नेहरू जी के शब्दों में— ''यदि उन्हें भारत में रहने के लिए बाध्य किया गया तो प्रगति व नियोजन पूरी तरह से असफल हो जाएगा।'' अंग्रेजों ने 30 जून, 1948 ई० तक भारत छोड़ने का निर्णय किया था। ऐसी स्थिति में दो विकल्प थे— भारत का विभाजन या गृह-युद्ध। गृह-युद्ध के स्थान पर भारत विभाजन को स्वीकार करने में कांग्रेसी नेताओं ने बुद्धिमत्ता समझी।

(x) **पाकिस्तान के गठन में सन्देह–** अनेक कांग्रेसी नेताओं को पाकिस्तान के गठन में सन्देह था और उनका विचार था कि भारत का विभाजन अस्थायी होगा। उनका यह भी विचार था कि पाकिस्तान राजनीतिक, भौगोलिक, आर्थिक तथा सैनिक दृष्टि से स्थायी राज्य नहीं हो सकता और यह कभी-न-कभी भारत संघ में अवश्य ही सम्मिलित हो जाएगा। अत: विभाजन को स्वीकार करने पर भी भविष्य में पाकिस्तान के भारत में विलय की आशा कांग्रेसियों में व्याप्त थी।

(xi) **सत्ता-हस्तान्तरण के सम्बन्ध में ब्रिटिश दृष्टिकोण–** भारत विभाजन के सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन का दृष्टिकोण यह था कि इससे भारत एक निर्बल देश हो जाएगा तथा भारत और पाकिस्तान सदैव ही एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ते रहेंगे। वस्तुत: ब्रिटेन की यह इच्छा विभाजन के पश्चात् पूरी हो गई, जो आज भी हमें दोनों राष्ट्रों के मध्य शत्रुतापूर्ण आचरण में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

(xii) **लॉर्ड माउण्टबेटन का प्रभाव–** भारत विभाजन में लॉर्ड माउण्टबेटन का प्रभावशाली व्यक्तित्व भी काफी सीमा तक उत्तरदायी था। उन्होंने अपने शिष्ट व्यवहार, राजनीतिक चातुर्य तथा व्यक्तित्व के प्रभाव से कांग्रेसी नेताओं को भारत-विभाजन के लिए सहमत कर लिया था।

2. भारत विभाजन कितना अनिवार्य था? समझाइए।

उ०– भारत का विभाजन आधुनिक भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास में राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। अब प्रश्न है कि क्या भारत विभाजन अपरिहार्य था? ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण यह अपरिहार्य था? आधुनिक इतिहासकारों के लिए यह वाद-विवाद का विषय है। किन्तु यह सत्य है कि भारत-विभाजन किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं था अपितु कई परिस्थितियाँ किसी-न-किसी रूप में दीर्घकाल से इसके लिए उत्तरदायी थी।

इन परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार, मुस्लिम लीग, कांग्रेस, हिन्दू महासभा तथा कम्युनिस्ट दल की स्वार्थपरक नीतियाँ सम्भवत: इस योजना में सम्मिलित थीं।

अंग्रेजों ने सदैव उपनिवेशवादी नीति के क्रियान्वयन के लिए 'विभाजन करो एवं शासन करो' का मार्ग अपनाया। अंग्रेज इस विचार का पोषण करते रहे कि भारत एक राष्ट्र नहीं है, यह विविध धर्मों एवं सम्प्रदायों का देश है। इस नीति के अन्तर्गत ब्रिटिश सरकार ने लीग को बढ़ावा दिया, जिसकी परिणति 1919 ई० के ऐक्ट के अन्तर्गत साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के अन्तर्गत देखी गई। मार्ले ने कहा था, ''हम नाग के दाँत के बीज बो रहे हैं, जिसकी फसल कड़वी होगी।'' सरकार ने लीग को सहारा देकर कांग्रेस के विरोध में खड़े रखा। जिन्ना यद्यपि एक सुसंस्कृत व्यक्ति थे किन्तु व्यक्तित्व के संकट के कारण इन्होंने विभाजन सम्बन्धी हठधर्मिता को अपना लिया। ब्रिटिश सरकार की नीतियों ने आग में घी का काम किया। 1940 ई० में पाकिस्तान प्रस्ताव पारित होने के उपरान्त लीग को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रोत्साहन दिया गया। भारत सचिव एमरी सहित कई ऐसे उच्च अधिकारी थे जो पाकिस्तान की माँग से गहरी सहानुभूति रखते थे। पं० नेहरू व मौलाना आजाद जैसे राष्ट्रवादी नेताओं का तो ख्याल था कि ब्रिटिश शासन ने कभी भी साम्प्रदायिक उपद्रवों को दबाने में तत्परता नहीं दिखाई।

दूसरी तरफ मुस्लिम लीग ने अपने जन्म से ही पृथकतावादी नीति अपनाई तथा भारत में लोकतान्त्रिक संस्थाओं के विकास का विरोध किया। साम्प्रदायिकता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दी गई। इतना ही नहीं, लीग के फिरोज खाँ जैसे नेताओं ने हिन्दुओं के विरुद्ध जहर उगलना शुरू कर दिया। ऐसी भयावह परिस्थिति का समाधान जितनी जल्दी हो सके, होना आवश्यक था।

यद्यपि कांग्रेस का स्वरूप प्रारम्भ से ही धर्मनिरपेक्ष रहा। लेकिन न चाहते हुए भी लखनऊ समझौता (1916 ई०) से शुरू हुई कांग्रेस की तुष्टिकरण की नीति ने आगे चलकर लीग के भारत-विभाजन के बढ़ते दावे को अधिक प्रोत्साहित किया। जैसे ही कांग्रेस ने 1937 ई० के चुनाव परिणाम के उपरान्त कठोर तथा वैधानिक दृष्टिकोण अपनाया, कांग्रेस एवं लीग के बीच कट्टर दुश्मनी प्रारम्भ हो गई। कांग्रेस के कुछ वरिष्ठ नेताओं की ऐसी भ्रामक धारणा थी कि पाकिस्तान कभी-भी पृथक् रूप से स्थायी देश नहीं बन सकता, अन्तत: वह भारत में सम्मिलित ही होगा। सम्भवत: इसी सन्देह के कारण उन्होंने भारतीय समस्या के अस्थायी समाधान के लिए पाकिस्तान की माँग को स्वीकार कर लिया। लेकिन इस स्वीकारोक्ति के पीछे एक ठोस तर्क यह भी दिया जाता है कि मुहम्मद अली जिन्ना की भाँति ही कांग्रेस के नेताओं में भी सत्ता के प्रति आकर्षण होने लगा था। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने 1959 ई० में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में भारत-विभाजन के लिए नेहरू तथा पटेल को अधिक उत्तरदायी

ठहराया है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार दोनों को सत्ता का लालच होने लगा था। यद्यपि कांग्रेस के गाँधी जी जैसे नेताओं ने विभाजन को टालने हेतु जिन्ना को अखण्ड भारत का प्रधानमन्त्री बनाने का प्रस्ताव रखा ताकि दंगे रुकने के साथ ही जिन्ना की महत्वाकाँक्षा भी पूर्ण हो जाती। लेकिन नेहरू तथा पटेल को यह अस्वीकार्य था। इसके विपरीत गाँधी जी पर यह आरोप लगा कि 'मुसलमानों का अधिक पक्ष ले रहे हैं'। इस प्रकार वरिष्ठ नेताओं के आपसी मतभेदों ने भी विभाजन को अपरिहार्य बना दिया।

20 वीं शताब्दी में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के साथ-साथ हिन्दू साम्प्रदायिकता का भी प्रादुर्भाव होने लगा। मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपतराय आदि नेताओं द्वारा हिन्दू महासभा को एक सशक्त दल के रूप में तैयार किया गया। उल्लेखनीय है कि हिन्दुओं का दृष्टिकोण भी मुसलमानों के प्रति अनेक बार प्रतिक्रियावादी होता था। 1937 ई० के हिन्दू महासभा के अहमदाबाद अधिवेशन में वीर सावरकर द्वारा कहा गया था, ''भारत एक सूत्र में बँधा राष्ट्र नहीं माना जा सकता अपितु यहाँ मुख्यत: हिन्दू तथा मुसलमान दो राष्ट्र हैं।'' दंगों को भड़काने में हिन्दू महासभा तथा अन्य कट्टरपंथी हिन्दू नेताओं की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण न रही। इसी प्रकार अकालियों ने भी पृथक् ''खालिस्तान'' की माँग प्रारम्भ कर दी। कम्युनिस्ट भी पीछे नहीं थे। वे भारत को 11 से अधिक भागों में बाँटना चाहते थे। इस प्रकार समूचे भारत की राजनीतिक तथा अन्य परिस्थितियाँ विकास के समय जटिल व भयावह बन चुकी थीं। यद्यपि कुछ इतिहासकारों का कहना है कि ''विभाजन टाला जा सकता था यदि ……… किन्तु इतिहास में, 'यदि' के लिए स्थान नहीं होता। परिस्थितियाँ इतनी भयावह थीं कि यदि,'यदि' से सम्बन्धित परिस्थितियों को आदर्श रूप में स्वीकार भी कर लिया जाता तब भी विभाजन को कुछ समय के लिए तो टाला जा सकता था, किन्तु स्थायी रूप से समाधान तो भारत-विभाजन ही था, क्योंकि जिन्ना व लीग की राजनीतिक आकांक्षाएँ अखण्ड स्वतन्त्र भारत में फलीभूत नहीं हो सकती थीं।''

इकाई-4

17

स्वतन्त्र भारत
(Independent India)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 15 अगस्त, 1947 ई० **2. 13 अगस्त, 1948 ई०** **3. 18 सितम्बर, 1948 ई०** **4. 1950 ई०**
5. 26 जनवरी, 1950 ई० **6. 1954 ई०** **7. 11 अगस्त, 1961 ई०**

उ०– दी गई तिथियों के ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 251 पर तिथि सार का अवलोकन कीजिए।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– सत्य-असत्य प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 252 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 252 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– अतिलघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 252 व 253 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के चार प्रमुख उद्देश्य लिखिए।

उ०– ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के चार प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं—

(i) 2012 ई० तक सभी भूमिहीनों को घर और जमीन उपलब्ध कराना।
(ii) 3 वर्ष तक के बच्चों में कुपोषण को घटाकर आधा करना।
(iii) वर्ष 2009 ई० तक सभी को पीने का पानी उपलब्ध कराना।
(iv) 5.8 करोड़ नए रोजगार के अवसर पैदा करना।

2. डॉ० भीमराव अम्बेडकर की भारत के संविधान निर्माण में क्या भूमिका थी?

उ०– डॉ० भीमराव अम्बेडकर संविधान निर्माण प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। इन्हें संविधान निर्माता कहा जाता है।

3. देशी रियासतों के विषय में सरदार पटेल के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– स्वतन्त्र भारत के प्रथम उपप्रधानमन्त्री सरदार पटेल के सुझाव पर एक 'रियासती मन्त्रालय' का गठन किया गया। सरदार पटेल

को इस मन्त्रालय का मन्त्री बनाया गया। सरदार पटेल ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ देशी रियासतों के विलय का संचालन किया। उपप्रधानमन्त्री एवं रियासती मन्त्रालय के मन्त्री की हैसियत से सरदार पटेल ने रियासतों से भारत संघ में अपना विलय करने की अपील की और उनकी मार्मिक अपील का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। देशी राजाओं ने भी राष्ट्र की आवश्यकता का अनुभव किया। 15 अगस्त, 1947 ई० को 562 देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलय हो गया। यह पटेल की एकनिष्ठ दृढ़ता का परिचय था कि उन्होंने जूनागढ़, हैदराबाद, और कश्मीर जैसी रियासतों का बुद्धिमता एवं ताकत के बल पर भारत में विलय किया।

4. राज्य नीति के पाँच निर्देशक तत्व लिखिए।

उ०– राज्य नीति के पाँच निर्देशक तत्व निम्नवत हैं—

(i) कल्याणकारी समाज की रचना
(ii) जन स्वास्थ्य का उन्नयन
(iii) एक ही आचार-संहिता
(iv) बेकारी के अन्त का प्रयास
(v) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा का प्रयत्न

5. भारतीय संविधान की चार विशेषताएँ लिखिए।

उ०– भारतीय संविधान की चार विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(i) संविधान की प्रस्तावना
(ii) लिखित, निर्मित और विस्तृत संविधान
(iii) राज्य के नीति-निर्देशक तत्व
(iv) नागरिकों के मूल अधिकार

6. भारतीय शिक्षा की चार नवीन प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– भारतीय शिक्षा की चार नवीन प्रवृत्तियाँ निम्नवत् हैं—

(i) राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली
(ii) विज्ञान की शिक्षा पर बल
(iii) सैनिक शिक्षा पर बल
(iv) भावनात्मक एवं राष्ट्रीय एकीकरण के लिए पाठ्यक्रम का नवीनीकरण

7. स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय की भारत की आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

उ०– अंग्रेजों के लगभग दो सौ साल के शोषण के बाद 15 अगस्त, 1947 ई० को भारत स्वतन्त्र हुआ। इस दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था निरन्तर उपेक्षा का शिकार रही थी। शताब्दियों से चले आ रहे आर्थिक शोषण व लूट के कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की आर्थिक स्थिति पहले से ही जर्जर अवस्था में थी, पाकिस्तान के निर्माण के कारण भारत अनेक प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो गया। भारत एक निर्धन देश बन गया और इसकी प्रति व्यक्ति आय विश्व के निम्नतम के समतुल्य हो गई।

8. स्वतन्त्र भारत की समस्याओं पर सारगर्भित लेख लिखिए।

उ०– भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही कठिनाइयों एवं कष्टों का काल भी आरम्भ हो गया था। देश के विभाजन के बाद दंगों, हत्याओं व लूटमार का भयंकर दौर आरम्भ हुआ। विभाजन की त्रासदी के कारण लाखों की संख्या में शरणार्थी, रियासतों के रूप में बिखरा हुआ अज्ञात भारत का ढाँचा, जर्जर अर्थव्यवस्था, अस्थिर राजनीति यह सब स्वतन्त्र भारत को विरासत में मिला। तत्कालीन भारत के महापुरुषों व राजनीति-वेत्ताओं के अथक परिश्रम ने इन सभी समस्याओं से लोहा लिया और उन्हें एक-एक करके सुलझाना आरम्भ किया।

9. दसवी पंचवर्षीय योजना के बारे में टिप्पणी कीजिए।

उ०– दसवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल 1 अप्रैल, 2002 ई० से 31 मार्च, 2007 ई० था। इसमें आर्थिक विकास का लक्ष्य 8% वार्षिक रखा गया, जबकि वर्तमान में विकास दर 5.5% वार्षिक थी। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दस सूत्रीय एजेण्डा तैयार किया गया। इस एजेण्डे में अन्य बातों के अतिरिक्त विनिवेशीकरण कर एवं श्रम-सुधार और वित्तीय समझदारी वाली बातों पर विशेष बल दिया। दसवीं पंचवर्षीय योजना में सर्वाधिक बल कृषि सुधार व वृद्धि दर पर दिया गया। औद्योगिक क्षेत्र के लिए प्रस्तावित औसत दर 8.5% निर्धारित की गई। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए निर्धारित कुल परिव्यय (15,92,300 करोड़ रुपए) में से उद्योग एवं खनिज के लिए 58,939 करोड़ रुपए व्यय करने का प्रावधान था।

उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा पूर्वोत्तर राज्यों के लिए औद्योगिक नीति कारगर साबित हुई। प्रसंस्करण उद्योग काफी आगे बढ़ गया।

10. डॉ० भीमराव अम्बेडकर के कार्यो का उल्लेख कीजिए।

उ०– डॉ० भीमराव अम्बेडकर 'दलीतों के मसीहा' के रूप में प्रसिद्ध हैं। आजादी से पूर्व 1942-46 ई० तक डॉ० भीमराव अम्बेडकर वायसराय के एक्जीक्यू काउंसिल के सदस्य रहे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उनको भारत सरकार का कानून मंत्री बनाया गया। भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने अविस्मरणीय कार्य किया। वे संविधान सभा के सदस्य और संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष रहे। उन्होंने अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति शास्त्र पर अनेक पुस्तकों की रचना की। 'द प्राब्लम ऑफ रुपीज' तथा 'रिडल्स ऑन हिन्दुइज्म' इनके द्वारा रचित महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

11. द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दो प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।

उ०– द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कार्यकाल अप्रैल, 1956 ई० से मार्च 1961 ई० तक था। इस योजना में विकास के ऐसे ढाँचे को बढ़ावा दिया गया जिससे देश में समाजवादी स्वरूप के समाज का निर्माण हो सके। इस योजना के दो प्रमुख प्रावधान रोजगार में वृद्धि एवं उद्योगीकरण थे।

12. स्वतन्त्र भारत की कोई तीन तात्कालिक समस्याएँ लिखिए?

उ०– स्वतन्त्र भारत की तीन तात्कालिक समस्याएँ निम्न प्रकार हैं—

(i) हिन्दू-मुस्लिम दंगे और विस्थापितों की समस्या
(ii) राजनीतिक एकीकरण की समस्या
(iii) जर्जर आर्थिक स्थिति

13. भारतीय संविधान की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

उ०– (i) लिखित, निर्मित और विस्तृत संविधान
(ii) सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य

14. भारतीय संविधान कितने समय में निर्मित किया गया?

उ०– भारतीय संविधान के निर्माण में 2 वर्ष 11 माह और 18 दिन का समय लगा।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. ''सुनियोजित अर्थतन्त्र (अर्थव्यवस्था) आधुनिक भारत का आधार है।'' टिप्पणी कीजिए।

उ०– दो सौ वर्षों तक अंग्रेजी शासन के अधीन रहने के बाद 15 अगस्त, 1947 ई० को भारत स्वतन्त्र हुआ। उस समय भारत का अर्थतन्त्र बहुत ही दयनीय स्थिति में था। जहाँ एक ओर कृषि उत्पादन, भारी और आधारभूत उद्योगों तथा शहरीकरण का निम्न स्तर था, वहीं जनसंख्या भी अत्यधिक थी। स्वतन्त्रता के समय हमारी शिक्षा और अर्थव्यवस्था इतनी पिछड़ी स्थिति में थी कि इनका विकास करना अत्यन्त दुष्कर था। परन्तु स्वतन्त्रता अपने साथ आशा की किरण भी लाई। स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू की आवश्यक प्राथमिकताओं में से पहली प्राथमिकता आर्थिक तंत्र को सुनियोजित ढंग से मजबूत बनाना था। इसके लिए उन्होंने 1950 ई० में राष्ट्रीय योजना आयोग की स्थापना कर देश के आर्थिक विकास हेतु पंचवर्षीय योजनाओं को आरम्भ किया। उत्पादन की अधिकतम सीमा बढ़ाना, पूर्ण रोजगार प्राप्त करना, आय व सम्पत्ति की असमानताओं को कम करना, तथा सामाजिक न्याय उपलब्ध कराना आदि नीति-निर्माताओं द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं को निर्धारित कर आधुनिक भारत का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक भारत को आधार प्रदान करने के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति से अब तक ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं। कुछ प्रमुख पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य निम्नवत् हैं—

(i) प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई जो अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रही।
(ii) द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगीकरण पर विशेष बल दिया गया। औद्योगिक उत्पादन में 4.5% वृद्धि हुई तथा लगभग 66 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त हुआ।
(iii) चौथी पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन बढ़ाना तथा जनसंख्या वृद्धि को रोकना निर्धारित किया।
(iv) पाँचवी एवं छठी पंचवर्षीय योजना में गरीबी उन्मूलन एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने पर बल दिया गया।
(v) सातवीं एवं आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं में क्रमश: ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि एवं आर्थिक ढाँचे को मजबूत बनाए रखने के लिए क्रियान्वित की गई।
(vi) नवीं व दसवीं पंचवर्षीय योजनाओं में सर्वाधिक जोर क्रमश: सामाजिक व बुनियादी ढाँचे और सूचना तकनीक के विकास तथा खेती में सुधार व वृद्धि दर पर दिया गया।
(vii) ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि, सिंचाई, जल संसाधनों का विकास एवं दोहन मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया।
(viii) बारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि, उद्योग एवं सेवा में वृद्धि दर पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार उपरोक्त पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा सुनियोजित अर्थतन्त्र आधुनिक भारत की आधार शिला है।

2. भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों का संक्षेप में विश्लेषण कीजिए।

उ०– भारतीय संविधान के तृतीय भाग में अनुच्छेद 12 से 35 तक मौलिक अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। मूल अधिकार वे अधिकार होते हैं जिन्हें देश के सर्वोच्च कानून में स्थान प्राप्त होता है तथा जिनका उल्लंघन कार्यपालिका तथा विधायिका भी नहीं कर सकती है। मूलत: संविधान द्वारा नागरिकों को सात मौलिक अधिकार प्रदान किए गये, परन्तु 44 वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार 'सम्पत्ति के अधिकार' को मौलिक अधिकारों की श्रेणी से निकाल दिया गया है, अब यह अधिकार एक कानूनी अधिकार रह गया है। भारतीय संविधान में निम्नलिखित छ: मौलिक अधिकारों का समावेश है—

(i) समानता का अधिकार
(ii) स्वतन्त्रता का अधिकार
(iii) शोषण के विरुद्ध अधिकार
(iv) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार
(v) संस्कृति और शिक्षा-सम्बन्धी अधिकार
(vi) संवैधानिक उपचारों का अधिकार

भारतीय संविधान में उपरोक्त मौलिक अधिकारों का समावेश कर एक प्रगतिशील कदम उठाया गया है। इससे सरकार की

निरकुंशता पर नियन्त्रण किया गया है। जहाँ तक मौलिक अधिकारों पर लगे प्रतिबन्धों या आपातकाल में उनके स्थगन का प्रश्न है, हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वे प्रतिबन्ध राष्ट्र-हित, सार्वजनिक कल्याण तथा भारतीय लोकतंत्र के स्वरूप को विकृतियों से बचाने के लिए लगाये गये हैं। परन्तु न्याय पालिका के स्वतन्त्र होने के कारण नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए इस पर विश्वास कर सकते हैं।''

मौलिक अधिकारों का संविधान में उल्लेख कर देने से उनके महत्व और सम्मान में वृद्धि होती है। इससे उन्हें साधारण कानून से अधिक उच्च स्थान और पवित्रता प्राप्त हो जाती है। इससे वे अनुल्लंघनीय होते हैं। व्यवस्थापिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका के लिए उनका पालन आवश्यक हो जाता है।

3. ''सरदार पटेल भारतीय एकीकरण के स्थापत्यकार थे।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उ०– स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में लगभग 600 से अधिक देशी रियासतें थीं। स्वतन्त्र होने के उपरान्त भारत की सरकार के सामने देशी रियासतों को भारत संघ में विलय कराने की गम्भीर चुनौती थी। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए इन सबको भारत संघ में विलय होना आवश्यक था।

ये रियासतें सम्पूर्ण भारत के क्षेत्रफल का 48 प्रतिशत और जनसंख्या का 20 प्रतिशत थीं। यद्यपि ये रियासतें अपने आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र थीं, किन्तु वास्तविक रूप में इन सभी रियासतों पर अंग्रेजी शासन का नियन्त्रण स्थापित था। भारतीय देशी रियासतों में राजकीय जागरण 1921 ई० में प्रारम्भ हुआ।

सरदार पटेल के सुझाव पर एक रियासती मन्त्रालय बनाया गया। सरदार पटेल को ही इस विभाग का मन्त्री बनाया गया। सरदार पटेल ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ देशी रियासतों के विलय के कार्य का संचालन किया।

1926 ई० में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद का जन्म हुआ, जिसका पहला अधिवेशन एलौट के प्रसिद्ध नेता दीवान बहादुर एम० रामचन्द्र राय की अध्यक्षता में 1927 ई० में हुआ। 1934 ई० में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने रियासतों में उत्तरदायी शासन की बात कही। 1935 ई० के अधिनियम में देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ बनाने की बात कही गई। 1936 ई० के बाद देशी रियासतों में जन आन्दोलन तेजी से बढ़ा। कैबिनेट मिशन, एटली की घोषणा और लॉर्ड माउण्टबेटन की योजना में देशी राजाओं के बारे में विचार रखे गए और प्राय: कहा गया कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद वे स्वतन्त्र होंगे। अपनी इच्छानुसार वे भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित हों अथवा स्वतन्त्र रहें।

उपप्रधानमन्त्री एवं रियासती मन्त्रालय के मन्त्री की हैसियत से सरदार पटेल ने रियासतों से भारत संघ में अपना विलय करने की अपील की और इस मार्मिक अपील का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। देशी राजाओं ने भी राष्ट्र की आवश्यकता का अनुभव किया। अत: 15 अगस्त, 1947 ई० को जूनागढ़, हैदराबाद तथा कश्मीर को छोड़कर छत्तीसगढ़ सहित 562 रियासतों ने भारतीय संघ में विलय की घोषणा कर दी। सरदार वल्लभ भाई पटेल की कूटनीतिज्ञता और दूरदर्शिता का ही परिणाम था कि उन्होंने इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया।

हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर का भारत में विलय प्रमुख कठिनाइयों के रूप में उभरकर सामने आया। जूनागढ़ एक छोटी सी रियासत थी और यहाँ नवाब का शासन था। यहाँ की अधिकांश जनता हिन्दू थी और वह जूनागढ़ का भारत में विलय करने के पक्ष में थी, जबकि नवाब जूनागढ़ को पाकिस्तान में मिलाना चाहता था। जब नवाब ने जूनागढ़ को पाकिस्तान में मिलाने की घोषणा की तो वहाँ की जनता ने इसका विरोध किया। इसी समय सरदार पटेल ने जूनागढ़ की जनता की सहायता के लिए सेना भेज दी। भारतीय सेना से भयभीत होकर नवाब पाकिस्तान भाग गया। फरवरी 1948 ई० में जनमत संग्रह के आधार पर जूनागढ़ का भारत में विलय कर लिया गया।

हैदराबाद की जनता भी जूनागढ़ के समान ही हैदराबाद को भारत में सम्मिलित करना चाहती थी, जबकि निजाम सीधे ब्रिटिश साम्राज्य से साँठ-गाँठ कर एक स्वतन्त्र राज्य का स्वप्न देख रहा था। उसकी पाकिस्तान से भी गुप्त वार्ताएँ चल रही थीं। अक्टूबर, 1947 में उसके साथ एक विशेष समझौता किया गया, जिसमें उसे एक वर्ष तक यथावत् स्थिति की बात कही गई, लेकिन उस पर किसी भी प्रकार की सैन्य वृद्धि या बाहरी मदद लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। निजाम की कुटिल चालें चलती रहीं। उसने पाकिस्तान से हथियार मँगवाए तथा रजाकारों की मदद से मनमानी करनी चाही। परिणामत: हैदराबाद की जनता ने निजाम के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। निजाम ने जनता पर अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिए।। इसी समय सरदार पटेल ने हैदराबाद की जनता का रुख भारत की ओर देखकर सितम्बर 1948 में निजाम को चेतावनी दी। निजाम के न मानने पर 13 सितम्बर, 1948 को हैदराबाद में कार्यवाही की गई और पाँच दिन में न केवल रजाकारों को खदेड़ दिया गया, बल्कि निजाम ने भी विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। 18 सितम्बर, 1948 को हैदराबाद का भारत में विलय हो गया।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के अनुसार सरदार पटेल ने भारतीय एकीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। मृत्यु उपरान्त उन्हें 'भारत रत्न' प्रदान किया गया।

4. ''भारत का विकास वस्तुत: पंचवर्षीय योजनाओं से प्रारम्भ हुआ था।'' टिप्पणी कीजिए।

उ०– स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त जर्जर थी। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थव्यवस्था की पुनर्निर्माण प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। इस उद्देश्य से विभिन्न नीतियाँ और योजनाएँ बनाई गईं। और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से क्रियान्वित की गई। स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की प्राथमिकताओं में से पहली प्राथमिकता भारत के

आर्थिक ढाँचे को मजबूत करना था। इसके लिए उन्होंने 1950 ई० में राष्ट्रीय योजना आयोग की स्थापना की। इस आयोग के अन्तर्गत 16 माह के गहन विचार-विमर्श के पश्चात् देश के आर्थिक विकास हेतु पंचवर्षीय योजनाकाल का जन्म हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ 1 अप्रैल, 1951 ई० को हुआ। अब तक ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं। वर्तमान में बारहवीं पंचवर्षीय योजना जारी है जिसका कार्यकाल 2012-2017 है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में रखे गए उद्देश्यों को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है— (i) विकास, (ii) आधुनिकरण, (iii) आत्मनिर्भरता, तथा (iv) सामाजिक न्याय।

पंचवर्षीय योजनाओं की विकास सम्बन्धी उपलब्धियाँ– पंचवर्षीय योजनाओं की विकास उपलब्धि को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

(i) विकास दर– आर्थिक प्रगति का महत्त्वपूर्ण मापदण्ड विकास की दर के लक्ष्य की प्राप्ति है। प्रथम योजना में आर्थिक विकास की दर 3.6% थी, जो बढ़कर आठवीं योजना में 6.5% हो गई। नवीं पंचवर्षीय योजना में यह 5.5% रही। दसवीं पंचवर्षीय योजना में विकास दर 9% रही। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 12% का लक्ष्य रखा गया तथा 12 वीं योजना (2012-2017) में 9 प्रतिशत का लक्ष्य है।

(ii) राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय– योजनाकाल में राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है। भारत में 1950-51 ई० में चालू मूल्यों के आधार पर शुद्ध राष्ट्रीय आय 8,525 करोड़ रुपए थी, जो कि 2001-02 में बढ़कर 19,51,935 करोड़ रु०, 2002-03 में 19,95,229 करोड़ रु०, 2009-10 में 51,88,361 करोड़ रु० हो गई, जबकि प्रति व्यक्ति आय 237.5 रु० से बढ़कर 2009-10 में 44,345 रु० हो गई।

(iii) कृषि उत्पाद– योजनाकाल में कृषि उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। सन् 1950-51 में खाद्यान्नों का कुल उत्पादन मात्र 50.8 मिलियन टन था, जो 2010-11 में बढ़कर 241.56 मिलियन टन हो गई।

(iv) औद्योगिक उत्पादन– योजनकाल में औद्योगिक उत्पादन में तीव्र गति से वृद्धि हुई। 1950-51 ई० में, 1993-94 ई० की कीमतों पर औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 7.9 था जो बढ़कर 167 हो गया। दसवीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति पर उद्योग उत्पादन क्षेत्र में 8.75% की वृद्धि हो गई।

(v) बचत एवं विनियोग– योजनाकाल में भारत में बचत एवं विनियोग की दरों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। चालू मूल्य पर सकल राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में 1950-51 ई० में सकल विनियोग और बचत की दरें क्रमश: 10.4% और 9.3% थीं, दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त में ये क्रमश: 7.8% और 26.62% थीं। निवेश 28.10% रहा।

(vi) यातायात एवं संचार– यातायात एवं संचार के क्षेत्र में योजनाकाल में उल्लेखनीय प्रगति हुई। रेलवे लाइनों की लम्बाई 53,596 किलोमीटर से बढ़कर 31 मार्च, 2010 को 63,974 किलोमीटर हो गई। सड़कों की लम्बाई 1,57,000 किलोमीटर से बढ़कर 32 लाख किलोमीटर हो गई। हवाई परिवहन, बन्दरगाहों की स्थिति एवं आन्तरिक जलमार्ग का भी विकास किया गया। संचार-व्यवस्था के अन्तर्गत विकास के क्षेत्रों में डाकखानों, टेलीग्राफ, रेडियो-स्टेशन एवं प्रसारण-केन्द्रों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

(vii) शिक्षा– योजनाकाल में शिक्षा का भी व्यापक प्रसार हुआ है। इस अवधि में स्कूलों की संख्या 2,30,683 से बढ़कर 8,21,988 तथा विश्वविद्यालयों और समान संस्थाओं की संख्या 27 से बढ़कर 315 हो गई।

(viii) विद्युत उत्पादन क्षमता– योजनाकाल में विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। अगस्त 2004 ई० के आँकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में विद्युत की प्रति व्यक्ति वार्षिक खपत केवल 188 यूनिट है, जो राष्ट्रीय औसत का 50 प्रतिशत है। सन् 2012 ई० की समाप्ति तक नाभकीय विद्युत उत्पादन 10 हजार मेगावाट होने की सम्भावना है।

(ix) बैंकिंग संरचना– प्रथम योजना के आरम्भ में देश में बैंकिंग क्षेत्र अपर्याप्त और असन्तुलित था, परन्तु योजनाकाल में और विशेष रूप से बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् देश की बैंकिंग संरचना में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। 30 जून, 1969 ई० को व्यापारिक बैंकों की शाखाओं की संख्या 8,262 थी, जो कि 31 मार्च, 2009 ई० में बढ़कर 80,547 हो गई।

(x) स्वास्थ्य सुविधाएँ– योजनाकाल में देश में स्वास्थ्य सुविधाओं में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। टी० बी०, कुछ महामारियों आदि के उन्मूलन तथा परिवार कल्याण कार्यक्रमों में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई।

(xi) आयात एवं निर्यात– केन्द्र सरकार ने 31 अगस्त, 2004 ई० को विदेशी नीति 2004-09 ई० की घोषणा कर दी है। वर्ष 2010-11 ई० में भारत का निर्यात 11,42,649 करोड़ रुपए तथा आयात 16,83,467 करोड़ रुपए रहा।

पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा भारत का आधुनिकीकरण– आधुनिककरण के क्षेत्र में प्रमुख उपलब्धियों को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

(i) कृषि का आधुनिकीकरण– भारत एक कृषि-प्रधान देश है; अत: कृषि-संरचना में व्यापक सुधार एवं आधुनिकीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया। योजनाकाल में भूमि-सुधार कार्यक्रमों का विस्तार किया गया है। रासायनिक खाद व उन्नत बीजों का प्रयोग भी बढ़ा है। कृषि क्षेत्र में आधुनिक कृषि-यन्त्रों एवं उपकरणों को प्रोत्साहन मिला है। इसके अतिरिक्त, सिंचाई सुविधाओं में भी पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हुई है। कृषि उपजों की विपणन व्यवस्था तथा कृषि वित्त-व्यवस्था में भी उल्लेखनीय सुधार हुए हैं।

(ii) **राष्ट्रीय आय की संरचना में परिवर्तन–** राष्ट्रीय आय की संरचना में योजनाकाल में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र का अनुपात निरन्तर घट रहा है, जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का अनुपात निरन्तर बढ़ रहा है।

(iii) **औद्योगिक संरचना में परिवर्तन–** योजनाकाल में औद्योगिक संरचना में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए है। आधारभूत एवं पूँजीगत उद्योगों की स्थापना की गई है, सार्वजनिक उपक्रमों की संख्या में वृद्धि हुई है, उद्योगों का विविधीकरण हुआ है तथा उत्पादन तकनीक में व्यापक सुधार हुआ है।

(iv) **बैंकिग संरचना में परिवर्तन–** योजनाकाल में बैंकिग व्यवस्था को सुव्यवस्थित, सुगठित एवं विस्तृत किया गया है। ग्रामीण और बैंकरहित क्षेत्रों में बैंकिग सुविधाओं का विस्तार किया गया है, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई है, बैंक साख के वितरण में व्यापक सुधार तथा बैंकिग सुविधाओं में गुणात्मक परिवर्तन किए गए हैं।

आत्मनिर्भरता– हमारा देश आर्थिक नियोजन के काल में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुआ है। पहले जिन वस्तुओं का आयात किया जाता था, आज वे वस्तुएँ हमारे ही देश में निर्मित होने लगी हैं तथा उनका निर्यात भी किया जा रहा है। देश में भारी मशीनें व विद्युत उपकरण आदि भी पर्याप्त मात्रा में तैयार होने लगे हैं। खाद्यान्नों के सम्बन्ध में देश आत्मनिर्भरता प्राप्त कर चुका है। विदेशी सहायता भी पहले की अपेक्षा कम ही ली जा रही है।

सामाजिक न्याय– योजनाकाल में सामाजिक न्याय की दृष्टि से मुख्य रूप से दो पहलुओं पर ध्यान दिया गया है— प्रथम, समाज के निर्धन वर्ग के जीवन-स्तर में सुधार किया जाए तथा द्वितीय, धन एवं सम्पत्ति के वितरण में समानता लाई जाए। इस दृष्टि से विभिन्न प्रेरणात्मक एवं संवैधानिक उपाय किए गए हैं, यद्यपि उनसे आशातीत परिणामो की प्राप्ति तो नहीं हो पाई है, परन्तु कुछ सुधार अवश्य हुए हैं।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारत का विकास वास्तविक रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा आरम्भ हुआ।

5. भारतीय संविधान की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– संविधान एक महत्वपूर्ण प्रलेख है, जिसमें ऐसे नियमों का संग्रह होता है जिसके आधार पर किसी देश का शासन संचालित होता है। संविधान किसी देश में दीपशिखा का काम करता है, जिसके प्रकाश में देश का शासन संचालित होता है। भारत के संविधान की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **संविधान की प्रस्तावना–** प्रत्येक देश के संविधान के प्रारम्भ में सामान्यतया एक प्रस्तावना होती है, जिसमें संविधान के मूल उद्देश्यों व लक्ष्यों को स्पष्ट किया जाता है। वास्तव में, प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं होता है। बल्कि इसके द्वारा संविधान के स्वरूप का आभास हो जाता है। वस्तुत: इस प्रस्तावना में भारतीय संविधान का मूल दर्शन निहित है। संविधान के 42 वें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी, पंथनिरपेक्ष तथा अखण्डता शब्द जोड़कर इसकी गरिमा को और भी अधिक बढ़ा दिया गया है।

(ii) **लिखित, निर्मित और विस्तृत संविधान–** भारतीय संविधान अनेक प्रगतिशील देशों कनाडा, फ्रांस, अमेरिका आदि की भाँति एक लिखित संविधान है। इसका निर्माण एक संविधान सभा द्वारा किया गया था। यह विश्व का सबसे बड़ा संविधान है। **डॉ० जेनिंग्स** के अनुसार, ''भारत का संविधान विश्व का सबसे बड़ा, विशाल और व्यापक संविधान है।''

(iii) **सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य–** संविधान की प्रस्तावना में भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है। सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न का अर्थ है कि भारत अब बाह्य एवं आन्तरिक क्षेत्र में सभी प्रकार से पूर्ण स्वतन्त्र है। भारतवर्ष में लोकतन्त्रात्मक शासन भी है।

(iv) **संघात्मक संविधान–** संविधान द्वारा भारत में संघात्मक शासन की स्थापना की गई है। संविधान के अनुसार, ''भारत राज्यों का एक संघ है।'' अत: इसमें संघात्मक संविधान के सभी तत्व विद्यमान हैं। यद्यपि संविधान का ढाँचा संघात्मक बनाया गया है, परन्तु उसकी आत्मा एकात्मक है, क्योंकि संविधान में अनेक ऐसे एकात्मक तत्व विद्यमान हैं जो एकात्मक शासन-व्यवस्था में ही पाए जाते हैं।

(v) **धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना–** संविधान की प्रस्तावना में 42 वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ा गया है। धर्मनिरपेक्ष का तात्पर्य है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा। जनता के लोग अपना धर्म चुनने या धर्म परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र होंगे, और किसी भी पूजा-पद्धति को अपना सकेंगे।

(vi) **संसदात्मक शासन-प्रणाली–** भारत ने संसदात्मक प्रणाली को अपनाया है। इसमें शासन करने की वास्तविक शक्ति राष्ट्रपति में नहीं अपितु उसके द्वारा नियुक्त मन्त्रिपरिषद् में हित होती है।

(vii) **राज्य के नीति-निदेशक तत्व–** ये तत्व सरकार को दिशा-निर्देश देने और उसका मार्गदर्शन करने वाले बिन्दु हैं, जिनका अनुसरण करना प्रजातान्त्रिक सरकारों का दायित्व होता है। ये नीति-निदेशक तत्व आयरलैण्ड के संविधान से ग्रहण किए गए हैं।

(viii) **नागरिकों के मूल अधिकार–** भारत के संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों की समुचित रूप से व्यवस्था की गई है। न्यायपालिका (उच्चतम न्यायालय) को इनका संरक्षक बनाया गया है, परन्तु ये अधिकार पूर्णतया असीमित तथा अनियन्त्रित नहीं हैं। संविधान द्वारा नागरिकों को सात मौलिक अधिकार प्रदान किए गए थे, परन्तु 44 वें संविधान संशोधन

द्वारा 'सम्पत्ति के अधिकार' को मौलिक अधिकार की श्रेणी से अलग कर दिया गया है और अब सम्पत्ति का अधिकार केवल एक कानूनी अधिकार रह गया है। इस प्रकार नागरिकों को अब छह मौलिक अधिकार प्राप्त हैं।

(ix) **मूल कर्त्तव्यों का वर्णन–** मूल कर्त्तव्यों की धारणा भारत के संविधान में पूर्व सोवियत संघ के संविधान से ली गई है। इनमें नागरिकों से अपील की गई है कि वे संविधान का पालन करें, देश की रक्षा करें, राष्ट्र-सेवा करें, हिंसा से दूर रहें तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें आदि।

(x) **अस्पृश्यता का अन्त–** संविधान के भाग III अनुच्छेद 17 के आधार पर अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। अत: अब छुआछूत की दूषित मनोवृत्ति पर आधारित आचरण करने वाला व्यक्ति अपराधी समझा जाएगा और दण्ड का भागीदार होगा। इस प्रकार संविधान ने देश में सामाजिक समानता स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

(xi) **महिलाओं को समान अधिकार–** भारतीय संविधान ने नारियों को पुरुषों के समान आदर व सम्मान प्रदान किया है। उन्हें वे समस्त अधिकार प्रदान किए गए हैं, जो पुरुषों को प्राप्त हैं। ऊँचे पदों पर काम करने, मतदान करने, स्वयं चुनाव लड़ने आदि कई अधिकार संविधान ने उन्हें प्रदान किए हैं।

(xii) **सार्वभौमिक अथवा वयस्क मताधिकार–** भारतीय संविधान के 61 वें संविधान संशोधन के अनुसार 18 वर्ष की आयु प्राप्त नागरिकों को बिना जाति, धर्म, लिंग, वर्ण के भेदभाव के मतदान का अधिकार प्रदान किया गया है।

(xiii) **स्वतन्त्र, निष्पक्ष एवं शक्तिसम्पन्न न्यायपालिका–** संविधान में एक सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था की गई है, जो संविधान के रक्षक के रूप में कार्य करता है। स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्याय के लिए न्यायपालिका को कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त रखा गया है।

(xiv) **संकटकालीन उपबन्ध–** भारतीय संविधान में कुछ आपातकालीन नियम भी उल्लिखित हैं, जिनके आधार पर संकटकाल में समस्त शक्तियाँ केन्द्र के पास आ जाती हैं अर्थात् संघीय शासन एकात्मक शासन में परिवर्तित हो जाता है। इससे देश की असामान्य स्थिति पर शीघ्र नियन्त्रण कर लिया जाता है।

(xv) **कठोर एवं लचीले संविधान का सम्मिश्रण–** भारतीय संविधान कठोर तथा लचीलेपन का सुन्दर समन्वय है। भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेद ऐसे हैं, जिनमें अकेले संसद साधारण कानून की भाँति ही संशोधन कर सकती है तथा कुछ अनुच्छेद ऐसे हैं, जिनमें संशोधन करने के लिए संसद के दो-तिहाई बहुमत के साथ-साथ राज्यों के कम-से-कम आधे विधानमण्डलों की सहमति भी आवश्यक है।

(xvi) **विश्व-शान्ति व सार्वभौमिक मैत्री का पोषक–** संविधान के 51 वें उपबन्ध के अन्तर्गत यह भी उल्लेख किया गया है कि भारत विश्व के अन्य राष्ट्रों के साथ सह-अस्तित्व की भावना रखते हुए विश्व-शान्ति और सुरक्षा में सकारात्मक सहयोग देगा।

(xvii) **अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की पूरी सुरक्षा–** संविधान में अल्पसंख्यकों के हितों तथा जनजातियों और आदिवासियों की उन्नति हेतु भी विशेष संवैधानिक व्यवस्थाएँ की गई हैं। भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजाति के नागरिकों को सेवाओं, विधानसभाओं तथा अन्य क्षेत्रों में विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है।

(xviii) **कानून का शासन–** भारत के संविधान में कानून के शासन की व्यवस्था की गई है। विधि के शासन की अवधारणा ग्रेट ब्रिटेन के संविधान से ली गई है। भारत में कानून के समक्ष सभी नागरिक एकसमान हैं। कानून व दण्ड विधान की पद्धति सभी के लिए एक जैसी है।

(xix) **बहुदलीय संसदीय व्यवस्था–** भारत ने द्वि-दलीय पद्धति अथवा एकल-पद्धति को न अपनाकर बहुदलीय पद्धति पर आधारित संसदीय व्यवस्था को अपनाया गया है। बहुदलीय व्यवस्था होने के कारण संसद में समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधित्व की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं तथा जनता को अपना प्रतिनिधि चुनने के लिए अनेक विकल्प भी मिलते हैं।

6. देशी रियासतों (रजवाड़ों) के एकीकरण में सरदार पटेल की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।

उ०– **देशी रियासतों का एकीकरण–** स्वतन्त्र होने के उपरान्त भारत की सरकार के सामने देशी रियासतों को भारत संघ में विलय करने की गम्भीर चुनौती थी। भारत में 600 से अधिक रियासतें विद्यमान थीं। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए इन सबका भारत संघ में विलय होना आवश्यक था। देशी रियासतों के एकीकरण में सरदार पटेल की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

(i) **रियासतों के विलय के लिए मन्त्रालय की स्थापना–** सरदार पटेल के सुझाव पर एक 'रियासती मन्त्रालय' बनाया गया। सरदार पटेल को ही इस विभाग का मन्त्री बनाया गया। सरदार पटेल बड़ी सूझ-बूझ के साथ देशी रियासतों के विलय के कार्य का संचालन किया।

(ii) **रियासतों को भारत में विलय–** उपप्रधानमंत्री एवं रियासती मन्त्रालय के मन्त्री की हैसियत से सरदार पटेल ने रियासतों से भारत संघ में अपना विलय करने की अपील की और इस मार्मिक अपील का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। देशी राजाओं ने भी राष्ट्र की आवश्यकता का अनुभव किया। अत: 15 अगस्त, 1947 ई० को जूनागढ़, हैदराबाद तथा कश्मीर को छोड़कर छत्तीसगढ़ सहित 562 रियासतों ने भारतीय संघ में विलय की घोषणा कर दी। ये रियासतें भारतीय संघ में विलीन हो गईं। जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर का भारत में विलय प्रमुख कठिनाइयों के रूप में उभरकर सामने आया। जूनागढ़ एक छोटी रियासत थी और यहाँ नवाब का शासन था। यहाँ की अधिकांश जनता हिन्दू थी और वह जूनागढ़ का भारत में विलय

करने के पक्ष में थी, जबकि नवाब जूनागढ़ को पाकिस्तान में मिलाना चाहता था। जब नवाब ने जूनागढ़ को पाकिस्तान में मिलाने की घोषणा की तो वहाँ की जनता ने इसका विरोध किया। इसी समय सरदार पटेल ने जूनागढ़ की जनता की सहायता के लिए सेना भेज दी। भारतीय सेना से भयभीत होकर नवाब पाकिस्तान भाग गया। फरवरी 1948 ई० में जनमत संग्रह के आधार पर जूनागढ़ का भारत में विलय कर लिया गया। जूनागढ़ के समान हैदराबाद की जनता भी हैदराबाद रियासत का भारत में विलय कराना चाहती थी। इसके विपरित, हैदराबाद का निजाम हैदराबाद को एक स्वतन्त्र राज्य बनाए रखना चाहता था। परिणामत: हैदराबाद की जनता ने निजाम के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। निजाम ने जनता पर अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिए। इसी समय सरदार पटेल ने हैदराबाद की जनता का रुख भारत की ओर देखकर 13 सितम्बर, 1948 ई० को वहाँ पुलिस कार्यवाही के द्वारा हैदराबाद का भारत में विलय करा लिया। कश्मीर के राजा हरिसिंह पहले सम्मिलित होने में हिचकिचाते रहे, लेकिन बाद में पाकिस्तानी आक्रमण से विचलित होकर उन्होंने भी भारतीय संघ में मिलने की घोषणा कर दी। भारतीय सेना ने उन्हें तुरन्त संरक्षण देना स्वीकार कर लिया।

7. स्वतन्त्र भारत की तात्कालिक समस्याओं पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

उ०– भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही कठिनाइयों व कष्टों का काल भी प्रारम्भ हो गया था। देश के विभाजन के बाद दंगों, हत्याओं व लूटमार का भयंकर दौर प्रारम्भ हुआ। तत्कालीन भारत में देशी रियासतों की संख्या 600 से अधिक थी। विभाजन की त्रासदी के कारण लाखों की संख्या में शरणार्थी, रियासतों के रूप में बिखरा हुआ अज्ञात भारत का ढाँचा, जर्जर अर्थव्यवस्था, अस्थिर राजनीति यह सब भारत को विरासत के रूप में मिला। परन्तु तत्कालीन भारत के महापुरूषों व राजनीति-वेत्ताओं के अथक परिश्रम ने इन सभी समस्याओं से लोहा लिया और उन्हें एक-एक करके सुलझाना आरम्भ कर दिया। स्वतन्त्र भारत की प्रमुख तात्कालिक समस्याएँ निम्नवत थीं—

(i) राजनीतिक एकीकरण– स्वतन्त्रता के पूर्व भारत में लगभग 600 से अधिक देशी रियासतें थीं। स्वतन्त्र होने के उपरान्त भारत की सरकार के सामने देशी रियासतों को भारत संघ में विलय कराने की गम्भीर चुनौती थी। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए इन सबको भारत संघ में विलय होना आवश्यक था।

ये रियासतें सम्पूर्ण भारत के क्षेत्रफल का 48 प्रतिशत और जनसंख्या का 20 प्रतिशत थीं। यद्यपि ये रियासतें अपने आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र थीं, किन्तु वास्तविक रूप में इन सभी रियासतों पर अंग्रेजी शासन का नियन्त्रण स्थापित था। भारतीय देशी रियासतों में राजकीय जागरण 1921 ई० में प्रारम्भ हुआ।

सरदार पटेल के सुझाव पर एक 'रियासती मन्त्रालय' बनाया गया। सरदार पटेल को ही इस विभाग का मन्त्री बनाया गया। सरदार पटेल ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ देशी रियासतों के विलय के कार्य का संचालन किया।

1926 ई० में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् का जन्म हुआ, जिसका पहला अधिवेशन एलौट के प्रसिद्ध नेता दीवान बहादुर एम० रामचन्द्र राय की अध्यक्षता में 1927 ई० में हुआ। 1934 ई० में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने रियासतों में उत्तरदायी शासन की बात कही। 1935 ई० के अधिनियम में देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ बनाने की बात कही गई। 1936 ई० के बाद देशी रियासतों में जन आन्दोलन तेजी से बढ़ा। कैबिनेट मिशन, एटली की घोषणा और लॉर्ड माउण्टबेटन की योजना में देशी राजाओं के बारे में विचार रखे गए और प्राय: कहा गया कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद वे स्वतन्त्र होंगे। अपनी इच्छानुसार वे भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित हों अथवा स्वतन्त्र रहें।

उपप्रधानमन्त्री एवं रियासती मन्त्रालय के मन्त्री की हैसियत से सरदार पटेल ने रियासतों से भारत संघ में अपना विलय करने की अपील की और इस मार्मिक अपील का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। देशी राजाओं ने भी राष्ट्र की आवश्यकता का अनुभव किया। अत: 15 अगस्त, 1947 ई० को जूनागढ़, हैदराबाद तथा कश्मीर को छोड़कर छत्तीसगढ़ सहित 562 रियासतों ने भारतीय संघ में विलय की घोषणा कर दी। सरदार वल्लभ भाई पटेल की कूटनीतिज्ञता और दूरदर्शिता का ही परिणाम था कि उन्होंने इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया।

हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर का भारत में विलय प्रमुख कठिनाइयों के रूप में उभरकर सामने आया। जूनागढ़ एक छोटी सी रियासत थी और यहाँ नवाब का शासन था। यहाँ की अधिकांश जनता हिन्दू थी और वह जूनागढ़ का भारत में विलय करने के पक्ष में थी, जबकि नवाब जूनागढ़ को पाकिस्तान में मिलाना चाहता था। जब नवाब ने जूनागढ़ को पाकिस्तान में मिलाने की घोषणा की तो वहाँ की जनता ने इसका विरोध किया। इसी समय सरदार पटेल ने जूनागढ़ की जनता की सहायता के लिए सेना भेज दी। भारतीय सेना से भयभीत होकर नवाब पाकिस्तान भाग गया। फरवरी 1948 ई० में जनमत संग्रह के आधार पर जूनागढ़ का भारत में विलय कर लिया गया।

हैदराबाद की जनता भी जूनागढ़ के समान ही हैदराबाद को भारत में सम्मिलित करना चाहती थी, जबकि निजाम सीधे ब्रिटिश साम्राज्य से साँठ-गाँठ कर एक स्वतन्त्र राज्य का स्वप्न देख रहा था। उसकी पाकिस्तान से भी गुप्त वार्त्ताएँ चल रही थीं। अक्टूबर, 1947 में उसके साथ एक विशेष समझौता किया गया, जिसमें उसे एक वर्ष तक यथावत् स्थिति की बात कही गई, लेकिन उस पर किसी भी प्रकार की सैन्य वृद्धि या बाहरी मदद लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। निजाम की कुटिल चालें चलती रहीं। उसने पाकिस्तान से हथियार मँगवाए तथा रजाकारों की मदद से मनमानी करनी चाही। परिणामत: हैदराबाद की जनता ने निजाम के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। निजाम ने जनता पर अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिए।। इसी समय

सरदार पटेल ने हैदराबाद की जनता का रुख भारत की ओर देखकर सितम्बर 1948 में निजाम को चेतावनी दी। निजाम के न मानने पर 13 सितम्बर, 1948 को हैदराबाद में कार्यवाही की गई और पाँच दिन में न केवल रजाकारों को खदेड़ दिया गया, बल्कि निजाम ने भी विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। 18 सितम्बर, 1948 को हैदराबाद का भारत में विलय हो गया।

कश्मीर के भारत में विलय पर भी पाकिस्तान से संघर्ष की स्थिति बनी। प्रारम्भ में कश्मीर के राजा हरिसिंह कश्मीर के भारत में सम्मिलित होने में असमंजस की स्थिति में थे। जून, 1947 में माउण्टबेटन कश्मीर गए और उन्होंने वहाँ के महाराजा हरिसिंह से विलय के बारे में शीघ्र आत्मनिर्णय पर जोर दिया और जनमत संग्रह की बात भी कही। महात्मा गाँधी भी महाराजा से मिले, परन्तु अगस्त, 1947 में पाकिस्तानियों ने कबाइलियों के वेश में जम्मू-कश्मीर में घुसपैठ करनी प्रारम्भ की। पाकिस्तान द्वारा आक्रमण किए जाने से विचलित होकर उन्होंने भी भारतीय संघ में मिलने की घोषणा कर दी। भारतीय सेना ने उन्हें तुरन्त संरक्षण देना स्वीकार कर लिया।

महाराजा हरिसिंह ने 26 अक्टूबर को अपने प्रधानमन्त्री मेहरचन्द महाजन को विलय के पत्रों पर हस्ताक्षर करने दिल्ली भेजा। ये पत्र स्वीकृत कर लिए गए, लेकिन इसी बीच 21-22 अक्टूबर, 1947 को पाकिस्तान ने पठान कबाइलियों सहित कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। 26 अक्टूबर को कश्मीर के महाराजा के कहने पर भारतीय सेनाओं ने 27 अक्टूबर को पाकिस्तान के आक्रमणकारियों को रोका और उन्हें पीछे खदेड़ते हुए जवाबी कार्यवाही की। भारत के प्रधानमन्त्री पं० नेहरू ने पाकिस्तान की इस घुसपैठ के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् में अपील की। सुरक्षा परिषद् ने सोच-विचार में लम्बा समय लिया। 13 अगस्त, 1948 को दोनों सेनाओं को युद्ध-विराम करने, अपनी-अपनी सेनाएँ हटाने और जनमत संग्रह करने को कहा। अभी तक भी कश्मीर की एक तिहाई भूमि पर पाकिस्तान का अवैध कब्जा है। अर्द्धशताब्दी से अधिक गुजर जाने के पश्चात् भी कश्मीर को लेकर आज भी दोनों में विवाद बना हुआ है।

1954 ई० तक विदेशी फ्रांसीसी उपनिवेशों पाण्डिचेरी, कराईकल, यमन, माही तथा चन्द्रनगर को भारत संघ में शामिल कर लिया गया। गोवा, दमन व दीव जिन पर पुर्तगालियों का प्रभुत्व था, सैनिक कार्यवाही द्वारा 1961 ई० में भारत संघ में सम्मिलित किए जा सके। दादर व नगर हवेली के दोनों स्थलों को जनता ने 1954 में पुर्तगालियों से स्वतन्त्र कराया, लेकिन ये भारत संघ का अंग न बन सके। 1961 तक यहाँ 'स्वतन्त्र दादर व नगर हवेली प्रशासन' ने कार्यभार सँभाला। 11 अगस्त, 1961 को ये दोनों स्थल भारत के केन्द्रशासित प्रदेश बने।

(ii) हिन्दू-मुस्लिम दंगे और विस्थापितों की समस्या– भारत के विभाजन से जनसंख्या में हुई अदला-बदली विश्व इतिहास में एक अनूठी और वीभत्स घटना थी। दुनिया के इतिहास में कभी भी जनसंख्या की इतनी बड़ी अदली-बदली पहले कभी नहीं हुई थी। इससे पूर्व 1923 ई० में लोसान की सन्धि में ग्रीक व टर्की में जनसंख्या में अदला-बदली हुई थी, जो लगभग एक लाख पच्चीस हजार की थी और जिसे बदलने में 18 महीने लगे थे, जबकि भारत-पाकिस्तान में लगभग एक करोड़ बीस लाख जनसंख्या का आवागमन हुआ और यह केवल तीन महीने में किया गया। एक अन्य आँकड़े के अनुसार 49 लाख भारतीय पश्चिमी पाकिस्तान से और 25 लाख पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) से उजड़कर भारत आए।

स्वभावत: इस जनसंख्या की अदली-बदली में भयंकर रक्तपात, खून-खराबा और साम्प्रदायिक दंगे हुए। सामूहिक हत्याएँ, लूट, अपहरण, बलात्कार की हजारों घटनाएँ हुईं। बंगाल में नोआखाली, यूनाइटेड प्रोविंसेस में गढ़मुक्तेश्वर और पंजाब में लाहौर, रावलपिण्डी, मुल्तान, अमृतसर तथा गुजरात में भयंकर लूटमार हुई, अनेक लोग मारे गए। इसके अतिरिक्त 150 करोड़ से अधिक की सम्पत्ति की हानि हुई।

(iii) जर्जर आर्थिक व्यवस्था– अंग्रेजों ने लगभग दो सौ साल बाद अगस्त, 1947 में भारत छोड़ा। इस दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था निरन्तर उपेक्षा की शिकार रही थी। शताब्दियों से चले आ रहे आर्थिक शोषण व लूट के कारण भारत की आर्थिक व्यवस्था पहले से ही जर्जर अव्यवस्था में थी, पाकिस्तान के निर्माण के कारण भारत अनेक प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो गया। भारत एक निर्धन देश बन गया और इसकी प्रति व्यक्ति आय विश्व के निम्नतम के समतुल्य हो गई। इसे 1948 ई० में 246 रुपए प्रति व्यक्ति माना गया है, जो ब्रिटेन की आय का कुल 10 प्रतिशत और अमेरिका का केवल 5 प्रतिशत थी।

पाकिस्तान के निर्माण से भारत में आर्थिक असन्तुलन उत्पन्न हो गया। भारतीय उद्योग, कृषि व व्यापार इस विभाजन के कारण अत्यधिक प्रभावित हुए। आर्थिक क्षेत्र के असन्तुलित विभाजन के कारण भारत में कच्चे माल की कमी हो गई, जिससे वस्त्र उद्योग ठप्प और अन्न की कमी हो गई। 1947-48 ई० के भारत-पाक संघर्ष ने भारतीय व्यापार को भी बुरी तरह प्रभावित किया। विस्थापितों के आर्थिक झगड़ों ने इसमें और कटुता ला दी। इस काल में उद्योगों के उत्पादन में लगभग 30 प्रतिशत की कमी हो गई। उत्पादन कम होने से बेकारी और बेरोजगारी तेजी से बढ़ी। भारत की आर्थिक नीति की घोषणा 1948 ई० में की गई थी, इस नीति में कई योजनाएँ रखी गई। श्री जय प्रकाश नारायण द्वारा जनवरी, 1950 ई० में 'सर्वोदय योजना' की घोषणा की गई, जिसका उद्देश्य अहिंसा द्वारा शोषणरहित समाज का निर्माण करना बताया गया। इस योजना आयोग के अध्यक्ष पं० जवाहरलाल नेहरू थे। 1 अप्रैल, 1951 ई० से 31 मार्च 1956 ई० तक के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना बनी। वर्तमान में बारहवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है, ऐसी 11 योजनाएँ अब तक पूर्ण हो चुकी हैं।

8. ''सरदार वल्लभभाई पटेल भारतीय गणतन्त्र के सफल निर्माता थे।'' इस कथन के आलोक में उनके द्वारा देशी राज्यों के भारतीय राष्ट्र में विलय के प्रयासों का वर्णन कीजिए।

उ०– स्वतन्त्र भारत के पहले तीन वर्ष सरदार पटेल उप-प्रधानमन्त्री, गृह मन्त्री, सूचना मन्त्री और राज्य मन्त्री रहे। इस सबसे भी बढ़कर

उनकी ख्याति भारत के रजवाड़ों को शान्तिपूर्ण तरीके से भारतीय संघ में शामिल करने तथा भारत के राजनीतिक एकीकरण के कारण है। 5 जुलाई, 1947 को सरदार पटेल ने रियासतों के प्रति नीति को स्पष्ट करते हुए कहा कि – ''धीरे-धीरे बहुत-सी देशी रियासतों के शासक भोपाल के नवाब से अलग हो गये और इस तरह नवस्थापित रियासती विभाग की योजना को सफलता मिली।

भारत के तत्कालीन गृहमन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने भारतीय संघ में उन रियासतों का विलय किया, जो स्वयं में सम्प्रभुता प्राप्त थीं। उनका अलग झंडा और अलग शासक था। सरदार पटेल ने आज़ादी के ठीक पूर्व (संक्रमण काल में) ही पी.वी.मेनन के साथ मिलकर कई देशी राज्यों को भारत में मिलाने के लिए कार्य आरम्भ कर दिया था। पटेल और मेनन ने देशी राजाओं को बहुत समझाया कि उन्हें स्वायत्तता देना सम्भव नहीं होगा। इसके परिणामस्वरूप तीन रियासतें– हैदराबाद, कश्मीर और जूनागढ़ को छोड़कर शेष सभी राजवाड़ों ने स्वेच्छा से भारत में विलय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 15 अगस्त, 1947 तक हैदराबाद, कश्मीर और जूनागढ़ को छोड़कर शेष भारतीय रियासतें 'भारत संघ' में सम्मिलित हो चुकी थीं, जो भारतीय इतिहास की एक बड़ी उपलब्धि थी। जूनागढ़ के नवाब के विरुद्ध जब बहुत विरोध हुआ तो वह भागकर पाकिस्तान चला गया और इस प्रकार जूनागढ़ भी भारत में मिला लिया गया। जब हैदराबाद के निजाम ने भारत में विलय का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तो सरदार पटेल ने वहाँ सेना भेजकर निजाम का आत्मसमर्पण करा लिया।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को वैचारिक एवं क्रियात्मक रूप में एक नई दिशा देने के कारण सरदार पटेल ने राजनीतिक इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। वास्तव में वे आधुनिक भारत के शिल्पी थे। उनके कठोर व्यक्तित्व में विस्मार्क जैसी संगठन कुशलता, कौटिल्य जैसी राजनीति सत्ता तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति अब्राहम लिंकन जैसी अटूट निष्ठा थी। जिस अदम्य उत्साह असीम शक्ति से उन्होंने नवजात गणराज्य की प्रारम्भिक कठिनाइयों का समाधान किया, उसके कारण विश्व के राजनीतिक मानचित्र में उन्होंने अमिट स्थान बना लिया। भारत के राजनीतिक इतिहास में सरदार पटेल के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। सरदार पटेल के ऐतिहासिक कार्यों और किये गये राजनीतिक योगदान निम्नवत् हैं—

द्वीपसमूह भारत के साथ मिलाने में भी पटेल की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस क्षेत्र के लोग देश की मुख्यधारा से कटे हुए थे और उन्हें भारत की आजादी की जानकारी 15 अगस्त, 1947 के कई दिनों बाद मिली। हालांकि यह क्षेत्र पाकिस्तान के नजदीक नहीं था, लेकिन पटेल को लगता था कि इस पर पाकिस्तान दावा कर सकता है। इसलिए ऐसी किसी भी स्थिति को टालने के लिए पटेल ने लक्षद्वीप में राष्ट्रीय ध्वज फहराने के लिए भारतीय नौसेना का एक जहाज भेजा। इसके कुछ घंटे बाद ही पाकिस्तान नौसेना के जहाज लक्षद्वीप के पास मंडराते देखे गए, लेकिन वहाँ भारत का झंडा लहराते देख उन्हें वापिस कराची लौटना पड़ा।

9. ''भारत प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है'' इस तथ्य की समीक्षा कीजिए।

उ०– भारतीय संविधान की प्रस्तावना से यह बात स्पष्ट रूप से घोषित की गई है कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतन्त्रात्मक, धर्मनिरपेक्ष समाजवादी गणराज्य है। इसका अर्थ यह है कि अब भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है और वह किसी भी बह्य सत्ता के अधीन नहीं है। सम्पूर्ण भारतीय जनता ही शक्ति का स्रोत है। इसका विवेचन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—

(i) सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न– हमारे संविधान में यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि भारत अपने आन्तरिक तथा बाह्य दोनों क्षेत्रों में पूर्णतया स्वतन्त्र है। वह किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि को मानने के लिए बाध्य नहीं है। भारतीय संविधान में कहीं भी ब्रिटिश शासन का उल्लेख नहीं है। यद्यपि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य है, किन्तु वह अपनी इच्छानुसार उससे पृथक भी हो सकता है। **श्री जी० एन० जोशी** के अनुसार, ''भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य इसलिए बना है, क्योंकि ऐसा करना उसके हित तथा लाभ में है।''

(ii) लोकतान्त्रिक– भारतीय संविधान के अनुसार भारतीय शासन लोकतन्त्रात्मक है। समस्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अन्तिम निर्णय जनता का होगा। शासन की वास्तविक शक्ति जनता में निहित है। भारत की स्वर्गीया प्रधानमन्त्री **श्रीमति इन्दिरा गाँधी** ने पुन: सत्ता में आने के बाद कहा था, ''लोकतन्त्र हमारे लिए केवल राजनीतिक नारा नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन है। लोकतन्त्र सिर्फ बहुमत के लिए नहीं सभी के लिए है। आज लोकतन्त्र को बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय से बढ़कर सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय तक ले जाना है।''

(iii) धर्मनिरपेक्ष– भारत में सभी व्यक्तियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गयी। राज्य किसी विशेष धर्म का संरक्षण नहीं करता, अपितु उसकी दृष्टि में सभी धर्म समान है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म को ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। संविधान संशोधन द्वारा इसे और स्पष्ट कर दिया है।

(iv) समाजवादी– कांग्रेस का उद्देश्य प्रारम्भ से ही भारत में समाजवाद की स्थापना करना रहा है। उसका उद्देश्य धर्मनिरपेक्षता पर आधारित समाजवादी समाज की रचना के लिए प्रयत्नशील रहना पड़ा है। संविधान के निर्माताओं का अभिप्राय था कि भारतीय समाज की परम्परागत विषमताओं को दूर करके आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समता के आधार पर एक प्रगतिशील समाज की स्थापना करें। विषमताओं तथा शोषण से मुक्ति का एकमात्र उपाय समाजवादी समाज की स्थापना भी हो सकता है। संविधान में प्रयुक्त समाजवादी एवं धर्मनिरपेक्ष राज्य का यही अर्थ है। भारतीय संविधान में 'समाजवाद' शब्द के साथ लोकतन्त्रात्मक शब्द को भी रखा गया है। इससे यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान एक लोकतान्त्रिक समाजवाद की परिकल्पना करता है।

(v) गणराज्य– भारतीय राज्य गणराज्य इसलिए है, क्योंकि भारत का प्रावधान वंशानुगत शासन नहीं है, अपितु वह अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति है। वह जनता के प्रतिनिधि मन्त्रिमण्डल के परामर्श से शासन करता है। जनता के प्रतिनिधियों को समस्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।